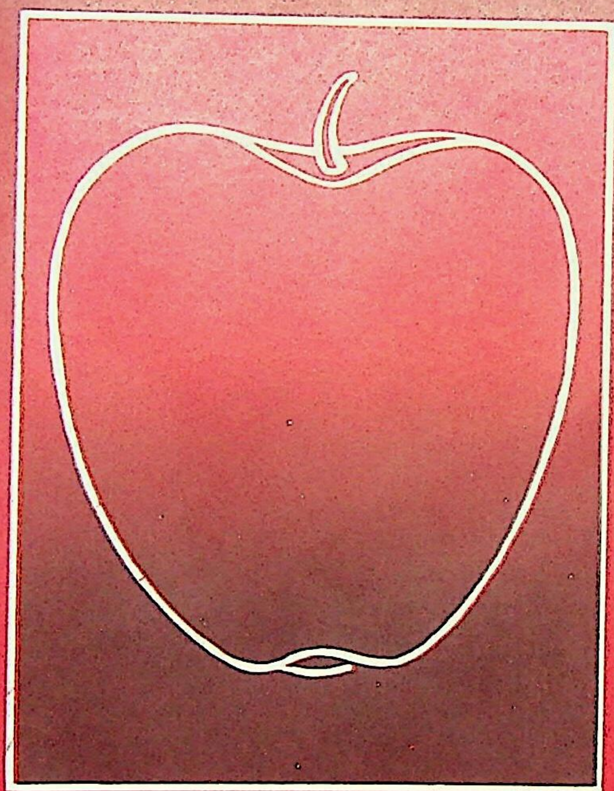
होम्योपैथी



डॉ. मुकेश बत्रा

विश्व में प्रचलित सर्वाधिक स्थायित्व-पूर्ण आधुनिक चिकित्सा विधियों में होम्योपैथी का विज्ञान है। इसके संस्थापक जनक सैम्युअल हैनामैन ने इसके बुनियादी सिद्धांतों की जबसे नींव डाली इसको विश्व में खूब सराहना भी मिली और तथाकथित विवेकी वैज्ञानिकों की ईर्ष्या भी। आज विश्व भर में फैले इसके चिकित्सा केन्द्रों के द्वारा इसकी प्रामाणिकता पहले से अधिक सिद्ध हो रही है।

'एवरीमैन्स गाइड टू होम्योपैथी' नामक अपनी पुस्तक से डॉक्टर बत्रा ने होम्योपैथी को लोकप्रिय बनाने की दिशा में महत्वपूर्ण योगदान किया है। यद्यपि यह पुस्तक केवल कुछ ही वर्ष पहले भारतीय जनता के सामने आई फिर भी इसके दो संस्करण बिक चुके हैं। अन्तरराष्ट्रीय पुस्तक क्षेत्र में भी यह पुस्तक खूब बिकी है। जब सितंबर १९८१ में इसकी एक प्रति मास्को में आयोजित अन्तरराष्ट्रीय पुस्तक मेले में प्रदर्शित की गयी तो इसे तत्काल रूसी अनुवाद के लिए चुना गया। फ्रेंकफर्त में आयोजित अन्तरराष्ट्रीय पुस्तक मेले में इसने अमेरिका के ह्यूमेनिटीज प्रेस जैसे अन्तरराष्ट्रीय ख्यातिप्राप्त प्रकाशकों का ध्यान अपनी ओर आकर्षित किया था अब पुस्तक का हिन्दी संस्करण आपके सामने है।

होम्योपैथी

होम्योपैथी

(प्राकृतिक रूप से चिकित्सा का माध्यम)

मुकेश बत्रा



संस्करण- सन् १९९८ सम्वत् २०५५

मूल्य ६० रुपये मात्र

Printed by Shri Sanjay Bajaj for M / s Khemraj Shrikrishnadass proprietors Shri Venkateshwar press Mumbai 400 004. at their Shri Venkateshwar press, 66, Hadapsar Industrial Estate, Pune-411013.

भूमिका

होम्योपैथ होने के साथ-साथ मैं आधा पत्रकार भी हूँ और कुछ वर्षों से मिरर नामक पत्रिका में नियमित रूप से एक कालम लिखता रहा हूँ, जिसमें विभिन्न रोगों से पीड़ित व्यक्तियों को सलाह देता रहा हूँ। इसके साथ ही बम्बई दूरदर्शन पर मैंने एक नियमित कार्यक्रम भी चलाया है। पाठकों और दर्शकों की प्रतिक्रिया सदा उत्साहपूर्ण रही है और उससे प्रेरणा पाकर मैंने सोचा कि होम्योपैथी के बारे में एक पुस्तक लिखूं। आज भी मुझे पत्र लिखने वाले अधिकतर वे लोग हैं जो नगरों और शहरों के निवासी हैं, जिन्हें होम्योपैथी का कुछ अनुभव है और उसके बारे में अधिक जानना चाहते हैं— कि विशेष रोगों का क्या इलाज है, क्या करना चाहिए और क्या नहीं, रोगों के बारे में बहुतसी किंवदंतियाँ और अंधविश्वास क्या-क्या हैं, किन वस्तुओं से तनिक आराम मिलता है और कौनसी औषधियां रामबाण औषधियां हैं, आदि।

कुछ डाक्टरों से भी चिट्ठियां मिलती हैं जो चिकित्सा के अन्य क्षेत्रों में विशेषज्ञ हैं। उनका भी प्रश्न यही होता है कि आधुनिक चिकित्सा शास्त्र में जिन रोगों के लिए कोई इलाज नहीं, उनका कोई उपचार होम्योपैथी में है अथवा नहीं।

इन लोगों के लिए मैंने यह सोचा कि ऐसी पुस्तक लिखी जाए जिसे साधारण पाठक समझ सके, लेकिन जिसमें इतनी ठोस सामग्री हो कि उससे चिकित्सकों का भी समाधान हो सके। इसी विचार को लेकर इस पुस्तक का लिखना प्रारम्भ किया गया।

मुख्य रूपसे पुस्तक एक मार्गदर्शक मात्र है जिससे कि पाठक को यह पता चल सके कि डाक्टर के आने तक क्या उपचार करना चाहिए। परन्तु, इसमें दिन प्रति दिन उठने वाली समस्याओं और प्रचण्ड रोगों के अतिरिक्त और जानकारी भी है। यह मानव के जीवन की विभिन्न अवस्थाओं और व्यवसायों के अनुरूप लिखी गई है और विभिन्न रोगों की चर्चा करते समय वे प्रचण्ड रूप में हों या पुराने

पड़ गए हों---गहराई से अध्ययन किया गया है। रोगों को वर्णानुक्रम में रखा गया है जिससे कि पाठक को उनका वर्णन ढूंढ़ने में कठिनाई न हो। अन्य स्थानों पर वर्गों के अनुरूप रोगों की चर्चा हैं। मेरा उद्देश्य यही रहा है कि पुस्तक ऐसे व्यक्तियों के लिए उपयोगी हो सके जो घर पर स्वयं ही औषधियों का प्रयोग करना चाहते हैं।

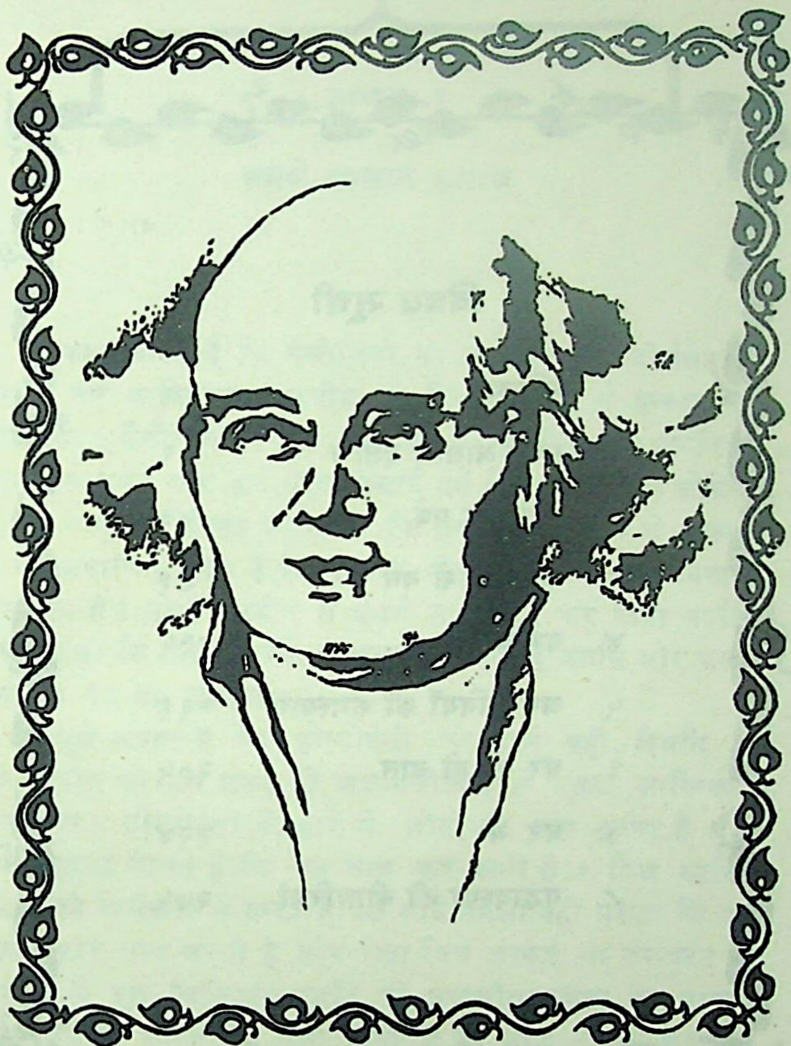
जिन औषधियों की चर्चा है वे होम्योपैथी के भण्डार और मेरे अपने अनुभव के अनुरूप हैं। उन्हें वर्णानुक्रम में मोटे अक्षरों में छापा गया है और उनके मुख्य लक्षण भी बताए गए हैं। प्रत्येक रोग का गहन और सावधानीपूर्वक अध्ययन करने के बाद औषधियों की सूची दी गई है। रोग के कारणों और उसके लक्षणों पर भी प्रकाश डाला गया है। कई बार रोग के पथ्यापथ्य और उसके लिए व्यायामों का वर्णन भी किया गया है और साथ में होम्योपैथिक औषधियों का तो है ही। इस दृष्टि से देखा जाए तो मैंने इस पुस्तक को अधिक उपयोगी बनाने की चेष्टा की है। यह सच्चे अर्थों में मार्गदर्शक का काम करेगी।

मैं पाठकों से कहूँगा कि पहला अध्याय अवश्य पढ़ें, क्योंकि इसमें होम्योपैथी के मूल सिद्धान्तों का वर्णन है। घर पर होम्योपैथी की औषधियां लेने से पहले इस चिकित्सा पद्धति के मूल सिद्धान्तों की समझ आवश्यक है।

मैं निम्नलिखित महानुभावों का आभारी हूं जिन्होंने इस पुस्तक के लेखन में मेरी सहायता की है---श्री सी० वाइ० गोपीनाथ, जिन्होंने लगातार सहायता की; डाक्टर विनोद रावल, जिन्होंने अनुसंधान में सहायता की; श्री जितेन्द्र आर्य, जिन्होंने इस पुस्तक के लिए बहुत अच्छे चित्र खींचे; श्री गुलाब वजीरानी, जिन्होंने अंगरेजी में इस पुस्तक का प्रकाशन किया और मेरी पत्नी, नलिनी, जिसने पुस्तक के लेखन के दौरान इतने धीरज का परिचय दिया।

१० मेहता हाउस,
पण्डिता रमाबाई मार्ग,
बम्बई - ४०० ००७

मुकेश बत्रा



होम्योपैथी के जनक सैम्युअल हैनामैन—
जन्म १० अप्रैल, १७५५
मृत्यु २ जुलाई, १८४२

विषय सूची

अध्याय १

सबसे आसान इलाज

कहा जाता है कि गैलीलियो का एक सहयोगी प्रोफेसर था जिसने नए आविष्कार –दूरबीन –से सितारे देखने से इन्कार कर दिया था। गैलीलियो ने उसे कहा था कि दूरबीन से बृहस्पति के आसपास घूमने वाले कई चाँद दिखाई देते हैं। लेकिन उस प्रोफेसर ने एक न सुनी। उसका कहना था कि तर्क और विज्ञान के माध्यम से यह प्रमाणित होता है कि दूरबीन जैसी कोई भी चीज बनाना असम्भव है। उसने दूरबीन से देखने से इन्कार कर दिया क्योंकि उसे डर था कि उसे बृहस्पति के चन्द्रमा दिखाई दे जाएंगे और उसके तर्क का गढ़ ढह जाएगा।

मुझे लगता है कि होम्योपैथी का आज वही स्थिति है, जो दूरबीन की उस समय थी जब गैलीलियो ने उसका आविष्कार किया था। होम्योपैथी के बारे में लोगों का ज्ञान नगण्य है। वे केवल इतना जानते हैं कि यह काम कर जाती है। जिस व्यक्ति को इसकी सार्थकता में सन्देह है उसे कोई समझा नहीं सकता कि यह किस प्रकार काम करती है और रेखा चित्र आंकड़े या कम्प्यूटर के माध्यम से इस चिकित्सा पद्धति की प्रभावोत्पादकता का प्रमाण देना और भी कठिन है। ऐसा लगता है कि आज बीसवीं शताब्दि में भी इसे स्वीकार नहीं किया जा रहा है। यही कारण है कि जिसे इसमें विश्वास है वह संशयात्मा व्यक्ति को केवल इतना कह सकता है : "काश मैं तुम्हारे प्रश्नों का उत्तर दे सकता। लेकिन मैं दे नहीं

सकता हूं मुझे केवल इतना पता है कि यह किस प्रकार काम करती है।" हां वह इतना और जोड़ सकता है : "क्या तुम केवल इस कारण जलती आग में अपना हाथ डाल दोगे कि किसी ने तुम्हें यह नहीं बताया कि आग तुम्हारी चमड़ी को किस प्रकार जला देती है?"

तो, आज होम्योपैथी की यह दशा है। **एनसाइक्लोपीडिया ब्रिटेनिका में**, जिसे बहुतसे व्यक्ति मानवीय ज्ञान का सबसे बड़ा भंडार मानते हैं, होम्योपैथी के बारे में केवल एक पैरा है और उसमें यह कहा है कि यह "कठवैद्यों का विज्ञान" है। जहां तक होम्योपैथी के संस्थापक, सेमुअल हैनामैन का सम्बन्ध है, उनके बारे में इस विश्व-कोष में आधा कालम का मैटर है। उसमें भी इस बात की अधिक चर्चा की गई है कि उस समय के रूढ़िवादी डाक्टरों ने किस प्रकार हैनामैन को इस कारण उसके नगर लीपज़िग से निकाल दिया कि वे सूक्ष्म खुराकें देने मे विश्वास रखते थे। अगर इस विश्वकोष के लेखक तनिक और अनुसंधान करते तो उन्हें पता चल जाता कि आज विश्व में बहुतसे लोग एलोपैथी से अधिक कतराते हैं, और होम्योपैथी के समर्थकों की संख्या उससे कहीं अधिक है जितनी कि लोग आमतौर पर समझते हैं। आजके वैज्ञानिक होम्योपैथी के सिद्धान्त को समझ नहीं पाते, लेकिन इतिहास में ऐसे बहुत से मनीषी हुए हैं जिन्होंने इस सीधी सादी चिकित्सा कला में निहित काव्य को भली-भांति समझा है।

मैंने इसे कला की संज्ञा दी है क्योंकि अन्य चिकित्सा पद्धतियों की तुलना में होम्योपैथी केवल ऐसे व्यक्ति का साधन बन सकती है जो संवेदनशील, दयामय, अनुभवग्राही और तीक्ष्ण बुद्धि वाला होगा। एलोपैथी में तो सीधे सादे फार्मूले होते हैं—लाल पीले इतने कैप्सूल दिन में तीन बार दो—लेकिन होम्योपैथी में प्रत्येक रोग के लिए कई दवाएं दी जा सकती हैं। उनमें से कौनसी सबसे उपयुक्त

रहेगी, यह जानने के लिए न केवल कुशलता की आवश्यकता है, बल्कि सहज ज्ञान भी चाहिए। चीन में सुइयों की सहायता से रोगों का इलाज किया जाता है जिसे एक्यूपंक्चर की संज्ञा दी जाती है और किसी नए व्यक्ति के लिए इस प्रकार की चिकित्सा पद्धति बेतुकी हो सकती है। परन्तु पश्चिमी देशों के इलेक्ट्रोन माइक्रोस्कोपों से परीक्षा के बाद यह पता चला है कि न केवल यह चिकित्सा पद्धति सफल है बल्कि इसका आधार वैज्ञानिक है। अभी तक होम्योपैथी का सुचारुरूपेण परीक्षण नहीं किया गया, लेकिन अब समय आ गया है कि इसे विज्ञान की कसौटी पर कसा जाए।

इस पुस्तक में मैंने यही प्रयत्न किया है। होम्योपैथी में बहुत प्रगति हुई है जिसका विश्व को पता ही नहीं चला। इसकी प्रगति में आणविक भार, रेडियो सक्रियता और वेव लंग्थ के कोई समीकरण नहीं हैं। यह तो सहज ज्ञान पर आधारित उन रास्तों पर चल कर आगे बढ़ी है जिनका निर्धारण अठारहवीं शताब्दि में हैनामैन ने किया था। प्रयोगों, परीक्षणों और कई बार चतुराई से निकाले गए निष्कर्षों के माध्यम से होम्योपैथी की कला आज पहले से अधिक परिष्कृत हो गई है। आज के युग में जब मानवता के सामने समस्याएं अधिक हैं और उनके समाधान कम, किसी भी वस्तु को बिना परखे फेंक देने में कोई तुक नहीं है। एक्यूपैंक्चर और अन्य प्राचीन, परन्तु बुद्धि पर आधारित, चिकित्सा पद्धतियों के समान होम्योपैंथी से भी बड़ी आशाएं हैं और बहुतसे रोगों की चिकित्सा का आश्वासन भी। यदि इन बातों को प्रमाणित करने के लिए यह आवश्यक है कि पश्चिम के वैज्ञानिक इनको परखें तो आज ही वह समय है जब यह परख होनी चाहिए। कारण यह कि होम्योपैंथी में बहुत कुछ है।

शेक्सपियर ने हैनामैन के जन्म से कई शताब्दि पहले होम्योपैथी के रहस्य को जान लिया था। उसे पता था कि प्रकृति की लीला क्या है। उसने अपने नाटक हैनरी--चतुर्थ में लिखा है:

"विष में ही औषधि है; और इस समाचार ने मुझे बल दिया है कि जिस वस्तु से मैं बीमार हुआ हूं उसी ने मुझे अच्छा भी कर दिया।

–हेनरी चतुर्थ

होम्योपैथी अत्यधिक कवितामयी है। होम्योपैथ रोगी को एक व्यक्ति के रूप में देखता है, रुग्ण शरीर के रूप में नहीं। दूसरे शब्दों में यह कह सकते हैं कि होम्योपैथ की दृष्टि में रोगी एक वाद्य वृन्द के समान है जिसमें सैकड़ों साज़ हैं। उसे संगीत की पहचान है और इसलिए जहां भी कोई साज़ बेसुरा बजता है वह तुरंत उसे पहचान लेता है। लेकिन प्रश्न यह है कि इतने साज़ों में से कौनसा बेसुरा है?

वह जानता है कि उसे बेसुरा साज़ पकड़ में आ जाए तो वह उसे कस देगा और फिर से सुरीला संगीत बजने लगेगा। इसलिए वह उस संगीत को सुनता है और उसे पता चल जाता है कि कौनसा साज़ सुर के बाहर जा रहा है। इससे पहले कि उस साज़ की ध्वनि सबसे अलग बजने लगे, वह उसे ठीक कर देता है।

यहां हम ऐसे व्यक्ति की बात कर रहे हैं जिसे सुर की पहचान है। संशयात्मा पूछेगा : "क्या प्रत्येक होम्योपैथ ऐसा विशेषज्ञ होता है?" सच तो यह है कि इसका उत्तर ना ही होगा। ईमान की बात तो यह है कि होम्योपैथी सबसे आसान चिकित्सा कला है जिसके बारे में कोई भी नौसिखिया विशेषज्ञ होने का दावा कर सकता है। मोटे मोटे ग्रन्थ मैटीरिया मेडिका के नाम से उपलब्ध हैं जिन्हें कोई भी खरीद सकता है। उनमें होम्योपैथिक दवाइयां और रोगों लक्षण दिए होते हैं। सच्चे होम्योपैथों के लिए ये ग्रन्थ बाइबल के समान हैं। लेकिन बाइबल का दुरुपयोग भी तो हो सकता है। होम्योपैथी का विज्ञान ध्वनि विज्ञान के समान है जिसमें स्वयं पढ़ कर डाक्टर बने लोगों की बहुतायत है। ये लोग एक कमरा किराए

पर ले लेते हैं और अपना साइन बोर्ड टांग कर डाक्टर कहलाते हैं।

इनमें से अधिकतर लोगों में सहज ज्ञान का अभाव होता है। और ये अपने विषय को भलीभांति नहीं समझते। इसके साथ ही ये रोग का सही सही निदान करने का कष्ट नहीं उठाते। इनके हाथों में होम्योपैथी एक छिछली और भ्रष्ट कला बन कर रह जाती है। किसी रोगी को चाहे जुकाम जैसी साधारण बीमारी ही क्यों न हो, ये लोग उस पर परीक्षण करते हैं। ऐसे डाक्टरों को सही ज्ञान तो होता नहीं और वे हर बार दवाई बदल देते हैं, रोगी से पैसा ले लेते हैं और जब जुकाम अपने आप कुछ दिनों में ठीक हो जाता है तो अपनी सफलता का बखान करते हैं। यदि मस्तिष्क के शोथ (गर्दन तोड़ बुखार) जैसा कोई भयंकर रोग हो तो ऐसे डाक्टर के पास जाना खतरे से खाली नहीं।

लेकिन चिकित्सा पद्धति कोई भी हो, उसके प्रयोग करने वालों में थोड़े बहुत कठवैद्य अवश्य होते हैं। होम्योपैथी को केवल इस कारण अस्वीकार कर देना कि कुछ लोग इसका ठीक ढंग से उपयोग नहीं कर पाते हैं, इस विज्ञान के प्रति अन्याय होगा। दुर्भाग्यवश होम्योपैथी के मौलिक सिद्धान्त का भी उपहास किया जाता है। वह सिद्धान्त यह है कि जिस दवाई से कोई रोग उत्पन्न होता है वही उसका इलाज भी करती है। लोगों का कहना है कि यह तो एक मजाक है। होम्योपैथी का उपहास करने वाले कहेंगे : "तो क्या इसका यह मतलब है कि यदि मैं थोड़ा सा चल कर थक जाता हूं तो अपनी थकावन मिटाने के लिए मुझे बहुत दूर तक चलना चाहिए ?" कोई मसखरा यह भी कह देता है : "क्या जुकाम का इलाज यही है कि मैं अत्यधिक ठण्डे पानी के फव्वारे के नीचे बैठ जाऊं ?"

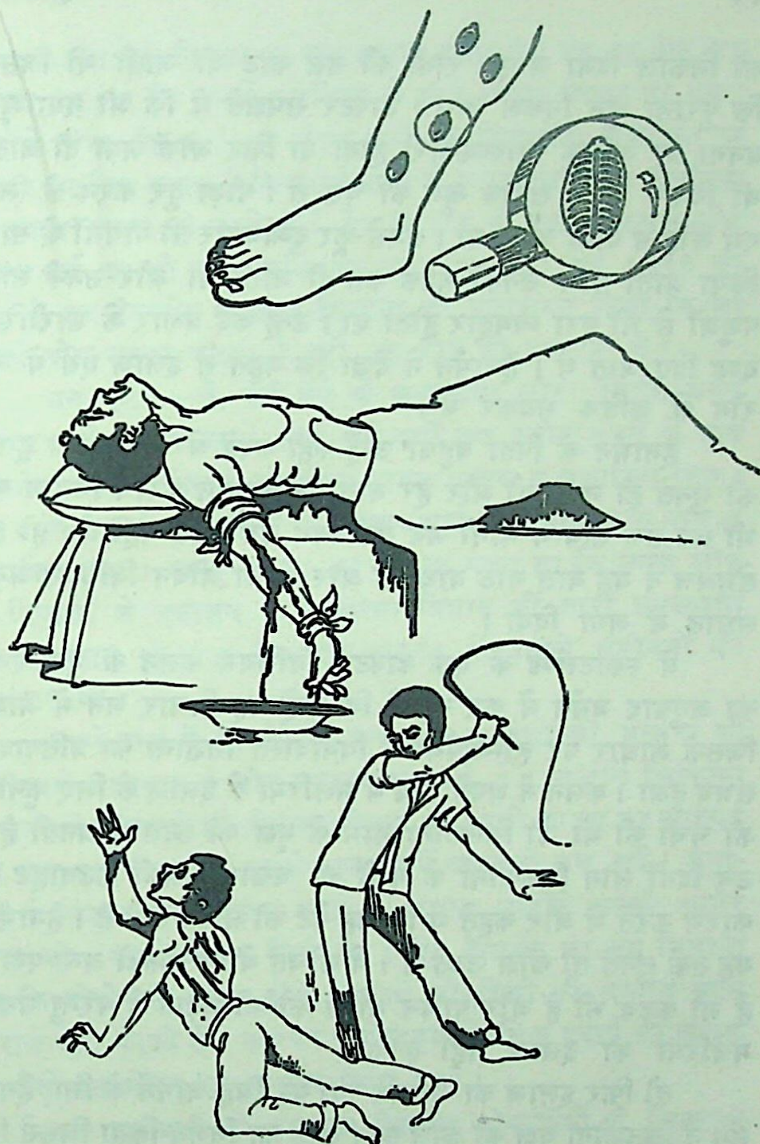
आज, बीसवीं शताब्दि के अंतिम चरण में, इस प्रकार के तर्कों का मुंहतोड़ उत्तर देना आवश्यक है। और, इसके लिए उन्हीं उप-

करणों का प्रयोग करना पड़ेगा जिनका सहारा पश्चिमी विज्ञान लेता है। आज हमारे पास ऐसे साधन हैं जिन्हें देख कर हैनामैन चकित हो जाते। यह बात भी निश्चित है कि यदि आज वे जीवित होते तो अपने सिद्धान्त को परिष्कृत करने में इन्हीं उपकरणों का प्रयोग करते दुर्भाग्यवश उन दिनों चिकित्सा का विज्ञान अपने प्रारंभिक चरण में था रोगियों का लहू निकाला जाता था और जोंक तथा सींगियों का प्रयोग किया जाता था। इस प्रकार के पागलपन में एक हैनामैन ही अक्ल की बात करते थे।

क्रिश्चियन फ्रेड्रिक सेमुअल हैनामैन का जन्म १० अप्रैल, १७५५ को हुआ। उनका जन्म स्थान, मीसेन, नाजुक किस्म की क्राकरी के लिए प्रसिद्ध था। एक उर्वरक घाटी में बसे इस नगर में केवल चार हजार व्यक्ति रहते थे। हैनामैन के पिता एक कारखाने में प्यालों आदि पर फूल बनाने का काम करते थे। उनका वेतन बहुत कम था और निर्धनता ने सेमुअल को उस शिक्षा से वंचित रखा जिसकी उनमें बड़ी ललक थी।

इसलिए उन्होंने स्वाध्याय का सहारा लिया। छोटी आयु में ही उन्होंने कई भाषाएं सीख ली। वे बच्चों को घरों में जाकर पढ़ाते थे और पुस्तकों का अनुवाद करते थे और अपनी आय का उपयोग स्वयं को शिक्षित करने में किया करते थे। उनके मन में यह डर बस गया था कि यदि उन्होंने शिक्षा प्राप्त न की तो उन्हें भी अपने पिता का ही पेशा अपनाना पड़ेगा जिसकी उन्हें बिल्कुल इच्छा न थी। इस प्रकार हैनामैन ने लीपज़िग विश्वविद्यालय से डाक्टर की उपाधि प्राप्त की और उसी नगर में प्रैक्टिस करने लगे।

उन दिनों के डाक्टरी के तौर तरीकों को देख कर हैनामैन बड़े आतंकित हो उठते थे। सभी रोगों का कारण यह बताया जाता था कि खून खराब हो गया है और उसका इलाज यही था कि उस खून



चित्र १·१—कभी जोंक लगाकर या नाड़ी काट कर रोगी का लहू निकालनेकी प्रथा थी। कोड़े मारनेका रिवाज तो था ही।

को निकाल दिया जाए। रोगी की नस काट दी जाती थी जिससे कि पुराना खून निकल जाए। डाक्टर समझते थे कि जो नया खून बनेगा वह अधिक स्वास्थ्यकारी होगा या फिर जोकें लगा दी जाती थीं जिससे कि वे खराब खून को चूस लें। पीड़ा दूर करने के लिए गर्म लोहे से दागा जाता था। सबसे क्रूर दुर्व्यवहार तो पागलों के साथ किया जाता था। उनकी मुश्कें कस दी जाती थीं और उनके साथ पशुओं से भी बुरा व्यवहार होता था। उन्हें कई प्रकार के शारीरिक दण्ड दिए जाते थे। हैनामैन ने देखा कि बहुत से इलाज ऐसे थे जो रोग से अधिक भयंकर थे।

हैनामैन के पिता बहुधा उन्हें कहा करते थे : "चुपचाप दूसरे की सुनते ही न जाओ और हर बात पर कान न धरो। विज्ञान को भी तब तक सत्य न मानो जब तक स्वयं उसे परख नहीं लेते हो।" सेमुअल ने यह बात गांठ बांध ली और अपना जीवन विधिवत अनुसंधान में लगा दिया।

वे स्काटलैण्ड के एक डाक्टर विलियम कलन के एक ग्रन्थ का अनुवाद जर्मन में कर रहे थे कि उन्हें वह विचार मन में आया जिसके आधार पर होम्योपैथी के विवादास्त सिद्धान्त का प्रतिपादन संभव हुआ। कलन ने अपने ग्रन्थ में मलेरिया के इलाज के लिए कुनीन की चर्चा की थी जो सिनकोना नाम के वृक्ष की छाल से बनती है। उन दिनों लोग सिनकोना के गुणों का बखान उसकी कड़वाहट के कारण करते थे और कहते थे कि यह पेट को शक्ति देती है। हैनामैन यह तर्क सुनते तो खीझ उठते थे। वे सोचते थे कि सैकड़ों अन्य पदार्थ हैं जो कड़वे भी हैं और पाचन शक्ति को भी बढ़ाते हैं परन्तु उनसे मलेरिया का इलाज नहीं होता।

तो फिर इलाज का आधार क्या था? यह जानने के लिए हैनामैन ने सिनकोना वृक्ष की छाल स्वयं खाने का निर्णय किया जिससे कि

यह पता चल सके कि उसका क्या प्रभाव होता है। वह यह देख कर चकित रह गए कि उनमें मलेरिया के सारे लक्षण उत्पन्न हो गए। उन्होंने सोचा कि क्या यह संभव नहीं कि सिनकोना मलेरिया का इलाज इसलिए करता है कि इसके खाने से स्वस्थ व्यक्ति में मलेरिया के लक्षण उत्पन्न हो जाते हैं ? इस विचार में बड़ा आकर्षण और स्वस्थ तर्क था जो सहज बुद्धि पर आधारित था। यह १७९६ की बात है जब हैनामैन ने अपने सिद्धान्त का प्रतिपादन किया कि जो पदार्थ रोग उत्पन्न करता है वही उस रोग की दवा भी है।

सन १८१० में, कई वर्ष के अनुसंधान और मित्रों, अपने परिवार और स्वयं अपने ऊपर कई वर्षों तक प्रयोग करने के बाद हैनामैन ने अपने निष्कर्ष **ओरगैनन** नामक पुस्तक में प्रकाशित किए। यह ग्रन्थ बाद में अंगरेजी में **दि रैशनल आर्ट आफ़ हीलिंग** के नाम से प्रकाशित हुआ। परन्तु उनका यह सोचना गलत था कि उनके शोध के निष्कर्षों के प्रकाशन से चिकित्सा विज्ञान की सारी समस्याओं का समाधान हो गया है। यह वास्तव में उनकी मुसीबतों की शुरूआत थी।

अपने ग्रन्थ में हैनामैन ने उन सभी कठवैद्यों की भर्त्सना की जो उनके आसपास थे और डाक्टर कहलाते थे। उन्होंने चिकित्सा प्रणाली के सिद्धान्तों की तीव्र आलोचना की। इसी कारण यह आश्चर्य की बात नहीं कि लीपज़िग के डाक्टरों में खलबली मच गई। हैनामैन के सिद्धान्तों की प्रशंसा करने के बजाय उन्होंने उनकी कठोर निंदा की। सबसे अधिक निंदा का विषय हैनामैन का यह सिद्धान्त था कि रोगी को स्वस्थ होने के लिए औषधियों की अत्यन्त सूक्ष्म खुराकें देना काफी है। उन पर प्रत्येक होम्योपैथिक दवाई की खुराक के पीछे दस थेलर का जुर्माना किया गया।

इन मुसीबतों के बावजूद हैनामैन होम्योपैथी के सिद्धान्तों

का विकास करने में लगे रहे। १८११ में उन्होंने ६ खण्डों में एक नया ग्रन्थ शुद्ध औषधियों की संकल्पना के विषय पर लिखा। ये औषधियां वे थीं जिनका प्रमाण उन्हें अपने प्रयोगों और शोध के माध्यम से मिल गया था। उन्होंने सूक्ष्म खुराकें देने के जिस सिद्धान्त का प्रतिपादन किया था उससे लीपज़िग के डाक्टर अत्यधिक रुष्ट थे। सन १८२१ में उन्होंनें हैनामैन को इतना तंग किया कि वे अपनी पत्नी समेत लीपज़िग छोड़ने पर विवश हो गए। हताश होकर सेमुअल ने अपनी डायरी में लिखा : "सदा अंधेरे में चलते रहने में कितना कष्ट है....."

ये वर्ष हैनामैन के लिए निराशा भरे वर्ष थे। उनके विवादग्रस्त सिद्धान्तों ने उन्हें और उनके परिवार को कंगाल बना दिया था। उनकी पत्नी और बच्चे उन्हें कटुता भरे उलाहने दिया करते थे। धन कमाने के लिए हैनामैन ने फिर से पुस्तकों का अनुवाद प्रारम्भ किया, परन्तु इस काम में गुजारे लायक पैसा नहीं मिलता था। बच्चे सदा आधा पेट खा पाते थे और हमेशा भूख से पीड़ित रहते थे। उनकी पत्नी ने ४८ साल तक उनके साथ कष्ट सहने के बाद कंगाली की अवस्था में दम तोड़ दिया।

लम्बे समय तक गुमनामी की हालत में रहने के बाद हैनामैन को प्रसिद्धि मिली। उनकी लगन के कारण बड़े बड़े लोगों का ध्यान होम्योपैथी की ओर गया। उन्हें सम्मान भी मिला और योरुप के बहुतसे डाक्टर उनकी चिकित्सा पद्धति के अनुयायी बन गए। बड़े बड़े राजा और नवाब, राज्याध्यक्ष और अन्य प्रसिद्ध व्यक्ति इलाज करवाने के लिए उनके पास आते थे।

उनके पास इलाज के लिए आने वालों में एक फ्रेंच सुन्दरी मेलानी नाम की थी जो हैनामैन के सिद्धान्तों से इतनी प्रभावित थी कि उसने हैनामैन से विवाह करके उनके ही दवाखाने में काम करने का निर्णय किया। उस समय हैनामैन की आयु ८५ वर्ष की थी। परन्तु

उनमें इतना अधिक उत्साह था कि वे विवाह के लिए राजी हो गए। परन्तु विधाता को यह बात स्वीकार नहीं थी और विवाह के दो वर्ष के भीतर ही, ८७ वर्ष की आयु में, हैनामैन का देहान्त हो गया। परन्तु तब तक उनके सिद्धान्तों ने जड़ पकड़ ली थी और उनके उन्मूलन का कोई खतरा नहीं रहा था। होम्योपैथी अन्य चिकित्सा पद्धतियों की पंक्ति में जा खड़ी हुई थी।

हैनामैन के बाद अन्य चिकित्सकों ने होम्योपैथी का विकास किया। उनमें एक जर्मन वैज्ञानिक, ओल्डनबर्ग के डाक्टर सुशलर थे जिन्होंने १८७३ में बायोकैमिक निकित्सा प्रणाली खोज निकाली। उसमें केवल बारह औषधियां हैं, जिन्हें टिशू रैमेडीज भी कहा जाता है।

होम्योपैथी की औषधियों के विशाल भण्डार की तुलना में डाक्टर सुशलर की औषधियां विटामिन की गोलियों के समान हैं। इस चिकित्सा पद्धति का आधारभूत सिद्धान्त यह है कि मानव के शरीर में बारह प्रकार का नमक होता है और उसमें से किसी भी एक नमक की कमी के कारण रोग उत्पन्न हो सकता है। बायोकैमिक औषधियां एक ही प्रकार की गोलियों के रूप में मिलती हैं। इनकी शक्ति या पोटेंसी दस या उससे अधिक होती है। ये शरीर से निकले हुए किसी एक प्रकार के नमक के अभाव की पूर्ति करके रोग का इलाज करती हैं। आज होम्योपैथी और बायोकैमिस्ट्री मौसेरी बहनों के समान हैं। यद्यपि प्रत्येक के अलग अलग समर्थक हैं, ऐसे डाक्टर भी हैं जो दोनों पद्धतियों का सहारा लेते हैं और उनका अनुभव यह है कि इन दोनों में कोई विरोधाभास नहीं।

होम्योपैथ चाहे इन दोनों में से किसी भी प्रणाली का सहारा क्यों न ले, जो बात उसे हैनामैन से थाती में मिली है वह है चिकित्सा के 'तर्क रहित' तरीकों के विरुद्ध रोष की भावना। हैनामैन के आस-पास ऐसे तर्कविहीन तरीके अपनाने वाले डाक्टरों का बाहुल्य था।

हैनामैन ने अपने ग्रन्थों में अपने रोष को व्यंग्य के माध्यम से व्यक्त किया है और दुख की बात यह है कि उनके बाद जिन व्यक्तियों ने होम्योपैथी पर ग्रन्थ लिखे हैं उन्होंने भी उसी व्यंग्य का सहारा लिया है। जब लोगों को आपकी किसी बात पर विश्वास न हो तो उनके प्रति रोष व्यक्त करना सहायक नहीं होता। साधारण होम्योपैथ उस प्रकार का प्रमाण नहीं दे पाता जैसा कि लोग चाहते हैं और इसलिए वह दम्भ का सहारा लेता है और ऐसा जाहिर करता है मानो वह सब कुछ जानता है। इस कारण लोग आकृष्ट होने की बजाय उससे विमुख हो जाते हैं। मैं समझता हूं कि आज तर्क का युग है और हमें अपने और अपने चिकित्सा के तरीकों के बारे में भावावेश में आए बिना बात करनी चाहिए। ऐसी भाषा में बात करनी चहिए जिसे सभी समझ सकें, तभी होम्योपैथी का भला हो सकता है।

सबसे अधिक यह सवाल पूछा जाता है कि इन छोटी छोटी गोलियों का इतने बड़े शरीर पर कैसे प्रभाव पड़ सकता है। प्रश्न बिल्कुल उचित है। परंतु इसका उत्तर देने से पहले हमें यह जान लेना चाहिए कि होम्योपैथिक दवाइयां कैसे तैयार की जाती हैं। रजनी-माची नाम के पौधे को ही लीजिए जिसे बैलाडोना कहते हैं। यह ऊंची झाड़ी दक्षिणी यूरेशिया के जंगलों और ऊसर भूमि में अपने आप उग आती है इसके सूखे पत्तों और जड़ से हायोस्यामिन, हायोसीन और एट्रोपीन नाम की दवाइयां तैयार की जाती हैं, जिनका प्रयोग नींद लाने, स्नायुओं को उत्तेजित करने और एंठन को दूर करने में किया जाता है।

तो यह रजनीमाची होम्योपैथिक औषधि कैसे बन जाती है? एक भाग बैलाडोना लेकर उसमें ९९ भाग अल्कोहल या दूधसे बना चीनी का चूर्ण मिलाया जाता है। जब इनको भलीभांति मिला दिया जाता है तो बैलाडोना–१ शक्ति की दवाई तैयार हो जाती है।

जब बैलाडोना–१ में ९९ गुना अल्कोहल मिला दिया जाता है तो इसकी दूसरी पोटेंसी या शक्ति तैयार होती है। यह प्रक्रिया तब तक चलती जाती है जब तक १०००; १०००० बल्कि १०००००० तक की पोटेंसी बन जाती है। यह तो स्पष्ट ही है कि इस ऊंची शक्ति की औषधि में मूल औषधि के अणु मात्र भी नहीं होते।

झगड़ा तो अब प्रारम्भ होता है। विवाद इस बात पर है कि जिस औषधि में मूल द्रव्य का लेशमात्र भी न हो उससे रोग कैसे दूर होता है।

इस प्रकार की परस्पर विरोधी बात तब कही जाती है जब आप एक चिकित्सा प्रणाली की भाषा का प्रयोग किसी दूसरी चिकित्सा प्रणाली के लिए करते हैं। होम्योपैथी में सारी बात अनुभव पर आधारित है और आधुनिक विज्ञान के पास ऐसे उपकरण नहीं हैं, जिनसे सूक्ष्म से सूक्ष्म औषधि के विशालतम प्रभावों को नापा जा सके। हम तो केवल इतना जानते हैं कि उस औषधि का प्रभाव होता है। दूसरे शब्दों में होम्योपैथ तो यह कहता है: "मैं इसका प्रमाण नहीं दे सकता परन्तु दिखा सकता हूं। यदि मैं तुम्हें एक अणु बम दिखाऊं और तुमसे पूछूं कि इसका क्या प्रभाव होगा तो क्या तुम यह अनुमान लगा सकोगे कि यह एक नगर को ध्वस्त करने की शक्ति रखता है?"

देखा जाए तो होम्योपैथिक औषधि अणु बम के समान है। इसमें मूल पदार्थ अथवा औषधि का एकाध कण चाहे रहे लेकिन उसकी शक्ति तो देखिए। वह शरीर में कई प्रकार के परिवर्तन ला देता है। अन्तर केवल इतना है कि अणु बम विनाश का माध्यम है और यह रोग का निदान करता है।

कोई रोग अत्यधिक तीव्र हो तो प्रत्येक घण्टे या प्रत्येक आधे घण्टे बाद होम्योपैथिक दवाई दी जा सकती है। जहां स्थिति गंभीर

हो तो औषधि की गोलियों को आधे कप पानी में घोल लीजिए और प्रत्येक पन्द्रह या तीस मिनट बाद दो-दो चम्मच पिलाइए। जब रोगी की दशा में सुधार दिखाई पड़े तो खुराक कम कर दीजिए।

इस बातसे कोई अन्तर नहीं पड़ता कि एक होम्योपैथिक खुराक में आप कितनी गोलियां खाते हैं और न इस बात से कोई फर्क पड़ता है कि गोली कितनी बड़ी है। होम्योपैथी ऐलोपैथी जैसी नहीं है जिसमें निर्धारित खुराक से एक भी अधिक कैप्सूल खाने मे खतरा हो सकता है। लेकिन ३० नम्बर की चार या पांच गोलियां बड़ों को एक खुराक में दी जा सकती हैं, २० नम्बर की इतनी ही गोलियां बच्चों को और गोदी के बच्चों को १० नम्बर की चार-पांच गोलियां पानी में घोल कर दे देनी चाहिए।

गोलियां लैक्टोस की बनती हैं जो गन्ने की चीनी से तैयार होता है और एक वर्ष तक रह सकती हैं। परन्तु सभी गोलियां सफेद और मीठी क्यों होती हैं ? इसका सीधा सा उत्तर यह है कि औषधि अल्कोहल से तैयार की जाती है और गोलियां उसे सोख लेने के बाद उतनी ही शक्तिशाली हो जाती हैं। वे सफेद और मीठी रहती हैं। यहां यह कह देना आवश्यक है कि मधुमेह के रोगियों को इससे चिन्ता नहीं होनी चाहिए क्योंकि इन गोलियों में ग्लुकोज़ नहीं होता बल्कि लैक्टोस होता है। ऐसे रोगी चाहें तो टिंक्चर के रूप में दवाई ले सकते हैं जिसे गर्म पानी में मिला लिया गया हो।

होम्योपैथी की प्रत्येक औषधि के लक्षण और उसकी रोग-हरण की शक्ति का परीक्षण मानवों पर किया जाता है न कि चूहों, खरहों या अन्य पशुओं पर, जैसा कि अन्य चिकित्सा पद्धतियों में होता है। इस मामले में होम्योपैथी एक अनूठा विज्ञान है। असंख्य व्यक्तियों को जो स्वस्थ हैं और अपने लक्षण भलीभांति बता सकते हैं, कोई औषधि (उसके स्थूल रूप में) खिला दी जाती है और उसके

बाद उनके रोग के लक्षणों की सूची तैयार की जाती है। उसके बाद इन औषधियों का प्रयोग ऐसे व्यक्तियों पर किया जाता है जिनमें रोग के लक्षण हों।

होम्योपैथी में एक और अनोखा गुण है। हो सकता है कि पृथ्वी पर कोई नया घातक रोगाणु या वायरस उत्पन्न हो जाए और तर्क की दुहाई देने वाले ऐलोपैथ चक्कर में पड़ जाएं, क्योंकि उन्हें शायद पता ही न चले कि यह है क्या। होम्योपैथ उनके समान कभी किंकर्तव्यविमूढ़ नहीं होगा क्योंकि उसके पास ऐसी कोई न कोई औषधि अवश्य होगी जिसके लक्षण उस वायरस से उत्पन्न रोग के लक्षणों से मेल खाते हों। इसी कारण वह इस घातक शत्रु का सामना प्रभावी ढंग से कर सकेगा।

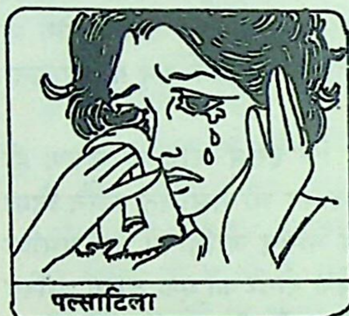
होम्योपैथी का एक गुण यह है कि इसमें रोग के लक्षण ही नहीं देखे जाते, वल्कि रोगी के व्यक्तित्व पर भी समुचित ध्यान दिया जाता है। अन्य चिकित्सा प्रणालियों में मानव जाति को एक समष्टि माना जाता है लेकिन होम्योपैथी में प्रत्येक रोगी को एक अलग व्यक्ति मान कर उसकी चिकित्सा की जाती है। किसी एक रोग के लिए, मान लो वह कब्ज ही क्यों न हो, कई औषधियां दी जा सकती हैं, परन्तु प्रत्येक व्यक्ति के लिए अलग से देखना पड़ेगा कि उसे कौनसी औषधि माफ़िक आएगी।

होम्योपैथी के समान किसी अन्य चिकित्सा प्रणाली में रोगी के व्यक्तित्व को ध्यान में नहीं रखा जाता। ज्योतिषशास्त्र में बारह नक्षत्रों की चर्चा है और यह वर्गीकरण इतना आकर्षक है कि करोड़ों व्यक्ति ज्योतिषशास्त्र के अनुयायी हैं। लेकिन होम्योपैथी में उससे भी अधिक सुचारुरूपेण वर्गीकरण किया गया है। (देखिए चित्र १.२)

उदाहरण के लिए **नक्स वामिका** का व्यक्तित्व सामान्यतया बड़ा तनावपूर्ण होता है। वह ऐसा व्यक्ति होता है, जिस पर बीसवीं

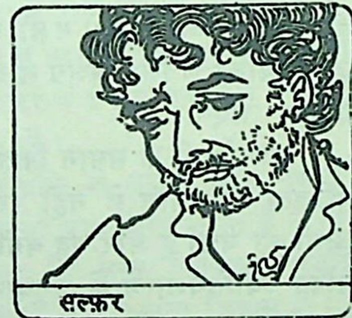

नक्स वॉमिका


सिना


पल्साटिला


सीपिया


आर्सेनिक


सल्फ़र

चित्र १·२ – होम्योपैथी में व्यक्तित्वों का वर्गीकरण

शताब्दि और नागरिक जीवन के तनावों का बोझ रहता है। वह रात को देर तक जागता है, समय कुसमय खाता है, खाता भी है तो इधर-उधर की वस्तुएं, और उसके मस्तिष्क पर इतना बोझ रहता है कि वह सो नहीं सकता और यही तनाव उसके जीवन को कटु बनाए रहते हैं। ऐसा व्यक्ति प्रतिस्पर्द्धा की भावना से ओतप्रोत होता है, उसके पेट में व्रण (अल्सर) होने का सदा खतरा रहता है, कब्ज रहती है आमाशय में अम्लता अधिक होती है और बवासीर होने का खतरा सदा बना रहता है।

सीपिया धोबी की दवाई कही जाती है। इसका व्यक्तित्व गृहणी का व्यक्तित्व है जो सदा घर के फुटकर कामों में उलझी रहती है और जिसे कभी फुर्सत नहीं होती। उसके हाथ कुहनियों तक पानी में डूबे रहते हैं--वह कपड़े धोती है, वर्तन मलती है और घर को साफ रखने में अपना सारा समय बिता देती है। उसे जो कष्ट होते हैं वे हैं : जोड़ों में दर्द, कमर में असह्य पीड़ा, चमड़ी पर चिकत्ते आदि। बार बार मां बनने के बाद उसका स्वास्थ्य गिर जाता है, खून की कमी हो जाती है और चेहरा पीला और सारे शरीर पर झुर्रियां। वह समय से पहले बूढ़ी हो जाती है। ३५ साल की आयु में ऐसे लगती है मानो पचास वर्ष की हो। वह मन्द बुद्धि, रुचिविहीन, भावुक और सदा निराश तथा रोती झीकती है। वह बहुधा यह कहती सुनी जाती है : "मुझे अपने पति और बच्चों से प्यार करना चाहिए। किसी समय था ---लेकिन अब किसी के प्रति कोई भावना नहीं रही।" ऐसी स्त्री को सीपिया की एक खुराक दे दी जाय तो वह अन्य लोगों के समान हो जाए और अपने आस-पास प्यार बखेर दे। इसके विपरीत ऐलोपैथी में ऐसी कोई दवाई नहीं जो यह दावा कर सकती है।

सांपके विष से एक औषधि तैयार की जाती है जिसका नाम लैकेसिस है। यह औषधि उन कष्टों में काम करती है जो रजोनिवृत्ति

के काल में उत्पन्न होते हैं। यह उन महिलाओं के लिए अच्छी है, जिनके जीवन में परिवर्तन आ रहा हो, जिनका चेहरा बैठे बैठे तमतमा जाता हो, जिन्हें बहुत पसीना आता हो और जिनके दिल की धड़कन बहुत बढ़ जाती हो। मजे की बात यह है कि यह व्यक्तित्व सांप जैसा है—जिसे अपना पता है, जिसे अपने मन की बात छिपा कर रखने की आदत है और जिसमें दम्भ, ईर्ष्या और सन्देह जैसे हानिकारक अवगुण हैं।

पल्साटिला की रोगिणी डाक्टर के पास आती है तो आंसू बह रहे होते हैं। जरासी बात पर रो पड़ती है और अत्यन्त तुनक मिजाज है। ऐसे व्यक्तित्व के बारे में कहा जाता कि उस पर उसी व्यक्ति का सबसे अधिक प्रभाव पड़ता है जो उसे सब के बाद मिला हो। डाक्टर के पास आते समय उसे डाक्टर की योग्यता और दवाई पर पूरा विश्वास होगा लेकिन सम्भव है कि रात को उसकी कोई सहेली किसी अन्य डाक्टर की प्रशंसा कर दे तो अगले दिन वह उस डाक्टर के पास चल पड़ती है। ऐसे व्यक्तित्व का एक और उदाहरण ऐसी युवती का है जो एक दिन तो किसी पहलवान जैसे गठीले शरीर वाले युवक से प्रभावित है और अगले दिन दुबले पतले किसी अन्य युवक की बुद्धिजीविता से। पलसाटिला का व्यक्तित्व अत्यधिक परिवर्तनशील होता है। ऐसी स्त्री कभी रोएगी और कभी हंसेगी। पलसाटिला लड़की से कभी प्यार मत कीजिए क्योंकि जब तक आप उससे विवाह का प्रस्ताव करने का साहस जुटा पाएंगे संभव है आपके प्रति उसका आकर्षण ही समाप्त हो गया हो।

प्लाटीना का व्यक्तित्व हिस्टीरिया के रोगी जैसा व्यक्तित्व है। लेकिन उसके साथ ही ऐसी महिला में अत्यधिक दम्भ और अक्खड़-पन मिलेगा और वह अपने आप को दूसरों से ऊंचा समझेगी। वह अपने से छोटे लोगों के प्रति अक्खड़पन दिखाएगी और जब इस गर्व,

दम्भ या तथाकथित ऊंचे होने के भाव को ठेस पहुंचेगी तो ऐसे लक्षण उत्पन्न हो जाएंगे जिनका इलाज **प्लाटीना** से ही किया जा सकता है।

साइलीशिया के व्यक्तित्व में सहनशक्ति या ऊर्जस्विता का अभाव होता है। यह दवाई **साइलीशिया** से तैयार की जाती है। प्रकृति में मिलने वाला **साइलीशिया** अनाज के लिए भी इतना गुणकारी है। उससे बनाई गई होम्योपैथिक दवाई मानव के लिए उतनी ही गुणकारी है। अनाज देखने में बड़ा कठोर और चमकता दीखता है, लेकिन इसकी शक्ति का रहस्य **साइलीशिया** है। यही बात मानव के मन पर लागू होती है। यह औषधि विशेषकर ऐसे व्यक्तियों के लिए गुणकारी है जो सदा थके रहते हैं।

साइलीशिया का व्यक्तित्व ऐसे व्यक्ति का है जो डाक्टर, वकील, या किसी कंपनी के प्रबन्धक के रूप में काम करते हुए कठोर परिश्रम करता है। अपने पेशे में योग्य होने पर भी यदि मन में डर बना रहे तो यह **साइलीशिया** का विशेष लक्षण है। जो छात्र पढ़ाई में सदा अच्छा रहा हो वह परीक्षा के समीप आने पर डरने लग जाता है। कोई छात्र परीक्षा में अच्छे नम्बर लाकर भी किसी पेशे में झिझक और डर के साथ प्रवेश करता है।

साइलीशिया के व्यक्तित्व वाला वकील कहेगा : "जब से वह मुकदमा आया है, मेरा स्वास्थ्य कभी ठीक नहीं रहा। और सर्जन कहेगा : "उस रोगी के गुर्दे का आपरेशन करने के बाद से तो मैं ढह-सा गया हूं।"

कुछ लोग बैठे ही रहते हैं और कोई भी शारीरिक श्रम नहीं करते। बैठे बैठे काम करते रहने के कारण उनकी पाचन क्रिया बिगड़ जाती है और वे सीधा सादा भोजन ही पचा सकते हैं जिसमें उनके शरीर के लिए पुष्टिकारक तत्व नहीं होते। ये लोग **सल्फ़र** के व्यक्तित्व हैं—दुबले-पतले, कमज़ोर, भूखे और अपच के रोगी हैं। **सल्फ़र** के

व्यक्तित्व को पहली नजर में पहचाना जा सकता है– उसका चेहरा गन्दा, सिकुड़ा हुआ, और लाल रंग का होगा। कुछ व्यक्ति ऐसे रोगी को "चीथड़ों में लिपटा दार्शनिक" की संज्ञा देंगे। ऐसा व्यक्ति हवाई किले बनाता रहता है, बहुधा आविष्कारक, कवि या सृजनात्मक व्यक्ति होता है जो चीथड़े पहने दिन रात परिश्रम करता रहता है। उसे इस बात की चिन्ता नहीं होती कि वह कैसा लगता है। वह हफ्तों तक दाढ़ी नहीं बनाता, बाल नहीं कटवाता और नाखून बढ़े ही रहते हैं। वह कई सप्ताह तक एक ही कमीज पहने रहेगा और यदि वह अविवाहित है और कोई महिला उसकी देखभाल करने वाली नहीं तो उसी कमीज को पहने रहेगा जब तक वह फट कर गिर नहीं जाती। उसका पढ़ने का कमरा गन्दा होगा और किताबें तथा कागज़ इधर-उधर बिखरे पड़े होंगे या ढेर में रखे होंगे। (इसकी तुलना **आरसैनिक** व्यक्तित्व से कीजिए जो सदा साफ सुथरा रहता है और हर चीज ठीक ढंग से रखता है। उसकी पुस्तकें करीने से लगी होंगी और कपड़े खूंटियों पर टंगे होंगे)। परन्तु **सल्फर** का व्यक्तित्व अपने विचारों की दुनिया में इतना अधिक खोया रहता है कि उसके लिए उसकी अपनी शक्ल सूरत का कोई महत्व नहीं। वह सोचता है "मुझे क्या परवाह है।" वह काम काज नहीं करना चाहता, आलसी होता है और बैठा समय गंवाया करता है जबकि उसकी पत्नी सारा काम करती है।

इग्नेशिया का व्यक्तित्व आधुनिक समाज का शिकार है। सामाजिक मेलजोल और इधर उधर की भाग दौड़ उसे थका देती है। **सीपिया** की रोगिणी तो मन्द बुद्धि होती है, लेकिन **इग्नेशिया** का व्यक्तित्व तीक्ष्ण बुद्धि, सुसंस्कृत, सम्भ्रान्त और सुशिक्षित होता है: इस व्यक्तित्व के लक्षण संवेदनशील लोगों में उत्पन्न होते हैं। जिन्हें अचानक कोई चोट पहुंची हो। किसी महिला के घर में लड़ाई-

झगड़ा रहता हो, जिसके कारण क्षोभ और उत्तेजना के फलस्वरूप उसका कोई अंग अकड़ जाए या वह कांपने लगे तो इग्नाशिया ही उसकी औषधि है। किसी संवेदनशील भीरु लड़की को प्रेम में निराश का सामना करना पड़ा हो तो वह रोती झीकती है, सिर दर्द रहता है और नींद नहीं आती। किसी महिला का पति या बच्चा मर जाता है और वह शोक से धराशायी हो जाती है ऐसे संवेदनशील व्यक्ति संगीत, चित्रकला और नृत्य जैसी ललित कलाओं का सहारा लेते हैं। कोई लड़की वर्षों तक संगीत सीखने के बाद विदेश से लौटती है। वह कुछ कर नहीं पाती और उसे कोई शारीरिक कष्ट हो जाता है। इग्नाशिया का व्यक्तित्व अप्रत्याशित और अकारण ही कई काम करता है। ऐसा लगता है कि उसके लिए न तो कोई नियम है और न कोई आधारभत दर्शन। उसका मस्तिष्क या निर्णय की शक्ति परिपक्व नहीं होती, बल्कि उससे जिस बात की आशा की जाती है उसके विपरीत काम करता है।

जहां तक बच्चों का सम्बन्ध है, उनमें भी होम्योपैथी उससे कहीं अधिक देख पाती है जितना कि दूसरी चिकित्सा पद्धतियां। उनका वर्गीकरण भी व्यक्तित्व के आधार पर किया जाता है। कोई बच्चा डाक्टर के पास पहुंच कर क्या करता है, उससे उसके रोग का निदान संभव है।

उदाहरण के लिए, **कैमोमिला** का रोगी शिशु आता है, तो उसके मां-बाप उसे गोदी में उठाए उठाए थक कर चूर हो गए होते हैं। ज्योंही उस बच्चे को बिठा दो वह चिल्लाना शुरू कर देता है और तब तक चुप नहीं होता जब तक उसे फिर गोदी में न उठा लिया जाए। कोई भी कष्ट हो बच्चा उसे सहन नहीं कर सकता। उसमें सहन शक्ति होती ही नहीं। लेकिन दोष उसका नहीं है। **कैमोमिला** के रोगी

को हर कष्ट और हर पीड़ा अनुपात से अधिक लगती है। उसके शरीर में कहीं हल्कीसी सूजन भी आ जाए तो वह आतंकित हो उठता है और अपनी माँ को दोष देता है। माँ अपने घर के कामों में उलझी हुई रहती है और उसे बच्चे के लगातार रोते रहने पर गुस्सा आता है। यदि किसी बच्चे की माँ आकर बड़े दुख से यह कहती है कि यह बड़ा बदतमीज है तो उसे कैमोमिला की कुछ खुराकें देकर ठीक किया जा सकता है।

सल्फ़र के रोगी बच्चे को देखते ही ऐसा लगता है कि वह कई दिन से नहाया नहीं। पूछने पर माँ कहती है कि बच्चा नहाने से बहुत डरता है। उसकी नाक बह रही होती है और नाक का पानी मुंह तक पहुंच रहा होता है। माँ को इस बात से चिन्ता होती है कि बच्चा गन्दगी में रह कर खुश है और जो भी चीज उसके हाथ में आती है, मुंह में डाल लेता है। आमतौर पर उसके शरीर पर कील, मुहासे और फोड़े फुन्सियां निकलते हैं विशेष रूप से सिर और चेहरे पर फुन्सियां होती हैं, जिनमें सोते समय खुजली होती है। बच्चा नाक में उंगली डाले रहता है, उसके होंठ लाल और फटे होते हैं। खट्टी चीजें खाना पसन्द करता है और प्रातः दस्त आते हैं। नींद में भी वह चैन से नहीं रहता और कुछ न कुछ बोलता रहता है। दिन भर इधर उधर भागता फिरता है। उसका पेट फूला हुआ होता है और हाथ पैर कमजोर।

कहा जाता है कि जो भी डाक्टर कलकेरिया के बच्चे को जानता है वह उसे बड़ा होने पर भी पहचान लेगा। गोरे रंग का मोटा लेकिन थलथल शरीर वाले बच्चे का चेहरा चाक मिट्टी जैसा सफेद होता है। उसका पेट भी बड़ा होता है। उसे कुर्सी में बिठा दिया जाए तो वह चुपचाप बैठा रहेगा। वह बैठा बैठा उंगलियां मटकाता रहेगा लेकिन उठ कर न तो घूमेगा और न खेलेगा। उसका शरीर स्थूल

तो होता है परन्तु स्वस्थ नहीं और उसे पसीना बहुत आता है। ऐसे बच्चे को दूध अच्छा लगे या नहीं लेकिन वह उसे सुहाता नहीं। उसका विकास देर से होता है–खोपड़ी का छिद्र देर में बन्द होता है शरीर की हड्डियां पतली और लम्बी होती हैं और उनमें लचक और गोलाई अधिक होती है। वह बोलना और चलना देर से सीखता है। **कलकेरिया** विशेष रूप से दांत निकालने में सहायक होता है और यदि समय पर दे दिया जाए तो बच्चे को दांत निकालते समय कोई कष्ट नहीं होता।

कई बार मां बच्चे को लेकर डाक्टर के पास आती है तो वह देखता है कि मां चाहे कितना ही पुचकारे या प्यार करे, बच्चा रोना बन्द नहीं करता। बल्कि हाथ पांव पटकता है और मां को भी मारता है। ऐसा बच्चा कुरूप होता है और उसकी आंखों के नीचे स्याही दीखती है। जब उसे प्यार से कोई चीज दी जाती है तो वह उसे उठा कर पटक देता है। उसे बड़ी जल्दी भूख लग जाती है और वह डट कर खाता है। उसे मिठाई बहुत पसन्द होती है और मां का दूध पीने से इन्कार करता है। वह सदा नाक में उंगली फेरता रहता है और सोते समय दांत किटकिटाता है। उसका हाथ अपनी गुदा की ओर ही रहता है। वह नींद में भी बेचैन रहता है और करवटें बदलता है। ऐसे बच्चे को **सिना** की कुछ खुराकें दे दी जाएं तो उसकी खीझ दूर हो जाएगी और वह सब का प्यार पाएगा।

इस प्रकार किसी रोगी का अध्ययन करना तर्क पर आधारित और संवेदनशील चिकित्सा पद्धति का ही काम है; ऊट पटांग ढंग नहीं है जैसा कि कई लोग सोचते हैं। होम्योपैथी में विशेष गुण यह है कि इसमें प्रत्येक रोगी को एक व्यक्ति के रूप में देखा जाता है जिस जैसा और कोई नहीं। अन्य चिकित्सा प्रणालियों में सारी मानवता को एक समष्टि मान कर रोग की चिकित्सा की जाती है। यदि

कोई व्यक्ति सदा तनाव से प्रभावित रहता है और घबड़ा जाता है तो उसकी कब्ज का इलाज **नक्सवॉमिका** है। किसी अन्य रोगिणी का इलाज **सीपिया** हो सकता है क्योंकि उसका स्वभाव **सीपिया** जैसा है। इसीलिए हम देखते हैं कि बहुतसे रोगों में होम्योपैथी अधिक सफल होती है क्योंकि उसके तर्कश में कई तीर हैं जबकि ऐलोपैथी में एक रोग का एक ही इलाज है। इसी लिए वे लोग हार मान जाते हैं।

जुकाम को ही लीजिए इसके लिए ऐलोपैथी में जो दवाइयां दी जाती हैं, उनमें से अधिकतर में विटामिन सी और पैरासीटामोल होता है। पैरासीटामोल बुखार को कम कर देता है और अस्थायी रूप से रोगी को आराम मिलता है। लेकिन अगर आप डाक्टर लाइनस पालिंग की बात मानें तो उनका निश्चित मत है कि जुकाम का कोई इलाज है ही नहीं।

उधर होम्योपैथी को लीजिए। पहली बात तो यह है कि इसमें जुकाम को रोकने की दवाई है। यदि **रस टॉक्स**–३० या २०० ले ली जाए तो जुकाम से निपटने की शक्ति का संचार होता है, विशेष रूप से उस दशा में जब आप पानी में भीग गए हों या आपको ठण्ड लग गई हो। यह कैसे होता है, यह कोई नहीं जानता, लेकिन इस औषधि का प्रभाव अवश्य होता है।

मान लीजिए कि आपको जुकाम हो गया। तो क्या किया जाए। होम्योपैथी में **कुविला सापोनेरिया**–६ है, जिसके देने से जुकाम की अवधि कम हो जाती है। और यदि आप उन लोगों में से हैं जिन्हें बहुधा जुकाम रहता है तो होम्योपैथ आपके रोग के इतिहास का गहरा अध्ययन करेगा और आपको ऐसी औषधि देगा जो आपके स्वभाव और शरीर की रचना के अनुकूल हो। यदि कोई अच्छा डाक्टर मिल गया तो आपके रोग का सदा के लिए खातमा हो जाएगा। उसके लिए सोच समझ कर दी गई एक ही खुराक काफी है।

दवाई का चुनाव करते समय होम्योपैथ यह देखता है कि बीमारी की जड़ें कहां तक हैं। यदि रोग परिवर्तनशील और तीव्र है तो संभवत: अधिक शक्ति की खुराक देनी पड़े। परन्तु यदि रोग पुराना हो गया है और उसके लक्षण स्थायी हो गए हैं तो कम शक्ति की औषधि अधिक अच्छा काम करेगी।

होम्योपैथी के सिद्धान्त की आधारशिला यह है कि पुराने रोग की जड़ दोष में है। दोष या म्यास्म यूनानी शब्द म्यासमा से बना है जिसका अर्थ है दूषण या धब्बा। इस बात की कल्पना कीजिए कि शरीर में मूलभूत रोग की परिस्थितियों का धब्बा लग गया है और उसकी जड़ इतनी गहरी है कि दिखाई नहीं देती। उसका पता तभी चलता है जब शरीर पर उसके लक्षण स्पष्ट हो जाते हैं। दूसरे शब्दों में दोष की परिभाषा यह की जा सकती है कि यह रोग की प्रवृत्ति मात्र है।

हैनामैन का कहना है कि शरीर में मुख्य रूप से तीन प्रकार के रोग होते हैं : खाज-जन्य, उपदंश-जन्य और साइकोटिक या रोमकूपों के शोथ से उत्पन्न होने वाले रोग। पुराने रोगों में आठ में से सात खाज-जन्य रोग हैं। इन रोगों में चमड़ी पर दाने या फुन्सियां हो जाती हैं, जिनमें खुजली होती है और एक अजीब प्रकार की बू आती है। ऐसे रोगी मेधावी, शंकालु और आवश्यकता से अधिक संवेदनशील होते हैं। इन लोगों को ठण्ड अधिक लगती है। ये साफ सुथरे नहीं रहते और शीघ्र थक जाते हैं। प्रात:काल और सर्दी के मौसम में उनका रोग अधिक तीव्र हो जाता है जबकि गर्मी या खुजाने से उन्हें आराम मिलता है। उन्हें गर्म-गर्म खाना बहुत पसन्द होता है, सदा भूख लगी रहती है और भोजन के उपरांत उनकी तबीयत अधिक अच्छी होती है। उनकी चमड़ी सूखी और गन्दी होती है और उसमें खुजली अधिक होती है।

यदि इन रोगों को मरहम या अधिक तेज दवाइयां देकर दबा दिया जाए तो उसके परिणाम बहुत बुरे होते हैं। किसी दोष को दबाया नहीं जा सकता—उसे बाहर निकालना ही सर्वोत्तम है। यदि उसे दबा दिया जाएगा, तो वह किसी नए रूप में प्रकट होगा जो पहले रोग की अपेक्षा अधिक बिकट होगा। इस दोष को दबा दिया जाए तो बेहोशी, रक्त स्राव, श्वास रोग, स्नायु रोग, पुरानी खांसी और ऐसे अन्य रोग होने की आशंका रहती है।

उपदंश दोष के कारण लिग अथवा भग पर फोड़े फुन्सी होने की आशंका रहती है। इस रोग के जीवाणु शरीर में पलते रहते हैं और जब वे हड्डियों और ऊतकों (टिशूज़) को खा डालते हैं तो रोगी की मृत्यु हो जाती है। सम्भव है किसी शिशु को जन्म से ही उपदंश हो यह उसे मां की कोख में ही मिल जाता है और या जन्म के बाद हो जाता है। उपदंश के रोगी मन्द मति, मूर्ख, क्रूर, भुलक्कड़ और हठधर्मी होते हैं। उन्हें पसीना बहुत आताहै और पसीने से बड़ी बदबू आती है।

साइकोसिस या रोम कूप शोथ रतिरोगों से उत्पन्न होता है। इसके परिणामस्वरूप शरीर पर गोभी के फूल जैसे फोड़े से उभर आते हैं। बाद में ऊतक और शरीर के आंतरिक अंग सूख जाते हैं। गांठें पड़ जाती हैं जिन्हें रसौली या अर्बुद की संज्ञा दी जाती है, आमबात ज्वर गठिया और अन्य रोग हो जाते हैं। इस दोष से पीड़ित रोगी सामान्यतया ईर्ष्यालु, प्रतिशोधी और तुनक मिज़ाज होते हैं। स्वभाव से ही उनमें छल कपट और क्रूरता के अवगुण होते हैं। उनकी त्वचा पर मुहासे बहुत निकलते हैं और उनके सभी कष्ट वर्षा ऋतु में बढ़ जाते हैं। सामान्यतया उन्हें रोग से छुटकारा पाने में समय लगता है। उनके शरीर से सामान्यतया बड़ी तीखी पीब आदि निकलती है, जिससे उन्हें आराम मिलता है।

इस ग्रन्थ में स्थान-स्थान पर स्वभाव के अनुरूप औषधियों

का उल्लेख किया गया है और उन्हें समझ लेना आवश्यक है। पहली बात तो यह है कि इस बात का निर्णय कोई योग्य होम्योपैथ ही कर सकता है कि कौनसी औषधि रोगी के स्वभाव के अनुरूप है, क्योंकि उसका पता लगाना तो पुराने अवशेष खोदने के बराबर है। होम्योपैथ रोगी के स्वभाव के अनुरूप सर्वोत्तम औषधि का चुनाव करता है, जिससे उसे आशा है कि रोग की जड़ या दोष दूर हो जाएगा। इसमें बहुत समय लगता है और इसका निर्णय करना कठिन भी होता है, परन्तु जब स्वभाव के अनुरूप औषधि चुन ली जाए तो तुरन्त रोग दूर हो जाता है।

मैंने स्वभाव के अनुरूप औषधियों का विषय इस पुस्तक में अलग ही रखा है। इसमें जुकाम से लेकर कैंसर तक सभी रोगों का उल्लेख है, परन्तु मैं पाठकों से, जो डाक्टर नहीं हैं, यह कहूंगा कि वे केवल अत्यन्त कष्टप्रद रोगों के लिए ही दवाई देने की कोशिश करें। यह बात बिल्कुल सच है कि होम्योपैथी के माध्यम से आसानी से किसी समस्या का समाधान नहीं खोजा जा सकता और इस बात को ध्यान में रखना आवश्यक है। जब मैं कब्ज की चर्चा करता हूं और उसके लिए कुछ 'विशेष' औषधियों का उल्लेख करता हूं तो साथ ही पाठक को यह भी याद रखने के लिए कहता हूं कि होम्योपैथी में किसी एक रोग के लिए एक ही विशेष दवा नहीं है। लेकिन मैं अपने अनुभव से यह जानता हूं कि कुछ रोगों के लक्षण अन्यों की अपेक्षा अधिक पाए जाते हैं इस कारण यह बताना व्यावहारिक ही होगा कि कुछ 'विशेष' औषधियों से ये लक्षण दूर किए जा सकते हैं। यह बात भी नहीं भूलनी चाहिए कि होम्योपैथी में केवल यही औषधियां नहीं हैं बल्कि मैंने अपने अनुभव के आधार पर व्यावहारिक दृष्टि से कुछ औषधियों की सूची दे दी है। इस पुस्तक को पढ़ कर आप तुरन्त होम्योपैथ नहीं बन सकते; हां, यह अवश्य है कि आप विश्वास के साथ कुछ प्रचण्ड रोगों

का निदान कर सकते हैं। मैं फिर इस बात पर बल दूंगा कि इतना ही सम्भव है।

संभव है कि आप यह देख कर चक्कर में पड़ जाएं कि एक ही दवाई परस्पर असम्बद्ध रोगों के लिए बताई गई है। उदाहरण के लिए **आर्सेनिक अल्ब** दस्तों, दमा और वायरस से उत्पन्न रोगों में दी जाती है। सम्भव है कि आप इसका कारण न जानते हों। इसका उत्तर यह है कि होम्योपैथी में प्रत्येक औषधि बहुत से लक्षणों के लिए दी जाती है जबकि ऐलोपैथी में प्रत्येक औषधि का एक विशेष प्रयोजन है। होम्यो-पैथी की औषधि उन सभी लक्षणों में दी जाएगी जो परीक्षण के समय स्वस्थ व्यक्तियों में उत्पन्न हुए। ऐलोपैथी में ऐसा नहीं है। उसके अनु-सार तो शरीर के प्रत्येक अंग के लिए अलग दवाई है। कब्ज़ हो गई तो जुलाब दे दिया, शरीर में त्वचा के नीचे द्रव के इकट्ठा होने से सूजन आ गई तो उसके लिए ऐसी दवाई दे दी जिससे पेशाब अधिक आता है और दमे में ऐसी दवाई दी जाती है जो श्वास की नली को फैला देती है। इसके विपरीत एक ही होम्योपैथिक दवाई, विभिन्न रोगों में दी जाती है, यदि उसके लक्षण रोगी के लक्षणों से मेल खाते हों। यदि किसी का रक्त चाप (ब्लड प्रेशर) बढ़ गया हो तो होम्योपैथी में रक्त चाप का इलाज नहीं किया जाता बल्कि रक्त चाप के रोगी का किया जाता है।

इस ग्रन्थ में स्थान स्थान पर "मध्यवर्ती" औषधि की चर्चा आएगी। सीधे सादे शब्दों में कहा जाए तो यह ऐसी औषधि है जो किसी पुराने रोग की प्रचण्ड अवस्थाओं के बीच दी जाती है। उदा-हरण के लिए मान लीजिए कि किसी दोष के कारण आपका गला सूज गया है (अर्थात टॉंसिलाइटिस हो गया है)। जब यह रोग प्रचण्ड रूप से होगा तो होम्योपैथ उसकी प्रचण्डता को कम करने की औषधि देगा-लेकिन उसके बाद वह रोग के अगले आक्रमण तक की अवधि में मध्य-

वर्ती औषधि देगा जिससे कि वह दोष बाहर आ जाए जिसके कारण रोग उत्पन्न हुआ है ।

पाठकों से मैं यह कहूंगा कि इस ग्रन्थ में दी गई जानकारी का प्रयोग करते समय इस बात का ध्यान रखें कि वे उससे अधिक जिम्मेदारी अपने ऊपर न लें जितनी कि वे निभा सकते हों । जहां तक इस बात का सम्बन्ध है कि दवाई की गोलियाँ कितनी कितनी देर बाद दी जाएं इसका निर्णय इस आधार पर करना पड़ेगा कि रोग कितना प्रचण्ड है । जब तक पहली खुराक का असर दिखाई देता रहे, दूसरी खुराक नहीं देनी चाहिए और जब वह असर कम होता दिखाई पड़े, दूसरी खुराक दीजिए । और अन्त में यह बात ध्यान रखने योग्य है कि कोई भी चीज खाने-पीने से आधा घण्टा पहले या आधा घण्टा बाद दवाई दी जाए ।

संसार की जितनी चिकित्सा पद्धतियाँ हैं उनमें शायद होम्योपैथी ही सबसे अधिक बदनाम है । इसके बारे में कई अस्पष्ट धारणाएं और किंबदतियां हैं । हम बारी-बारी से उनका उल्लेख करेंगे और उन्हें दूर करने की चेष्टा करेंगे ।

काफी, सिगरेट आदि पीना मना नहीं

ऐसा विश्वास किया जाता है कि होम्योपैथिक औषधियां स्नायुओं के छोरों के माध्यम से प्रभाव डालती हैं और उत्तेजक पदार्थों से स्नायु उत्तेजित हो जाते हैं । इस प्रकार उत्तेजक पदार्थों से होम्योपैथिक औषधि का प्रभाव कम हो सकता है या बदल सकता है । परन्तु ये पदार्थ औषधि का प्रभाव सर्वथा समाप्त नहीं करते । सच तो यह है कि कुछ मामलों में उत्तेजक पदार्थों का प्रयोग रोग का एक लक्षण हो सकता है और सौभाग्यवश होम्योपैथी के माध्यम से इस लक्षण को दूर किया जा सकता है । यदि आप अत्यधिक मदिरा पान या धूम्रपान करते हैं या आपको काफी बहुत पसन्द है तो उस समय होम्योपैथिक औषधि लीजिए जब आप इन पदार्थों के प्रभाव में न हों ।

होम्योपैथी का असर धीरे धीरे नहीं होता

वास्तव में झगड़ा तो यह है कि धीरे धीरे स्वास्थ्य लाभ हो या स्थायी रूप से रोग का निराकरण हो। एंटीबायटिक दवा से बुखार तुरन्त दब सकता है, परन्तु दुर्भाग्यवश रोगी को एंटीबायटिक औषधि के प्रभाव से मुक्ति पाने में कुछ दिन लग जाते हैं। बुखार, पीड़ा, और जुकाम आदि प्रचण्ड रोगों में होम्योपैथिक औषधियों का प्रभाव अत्यधिक शीघ्र होता है और इसके अतिरिक्त उनके परिणामस्वरूप रोग बना नहीं रहता। यह बात याद रखनी चाहिए कि यदि रोग कई साल पुराना है तो उसका तेजी से निराकरण सम्भवत: हो नहीं पाएगा। अच्छा यही है कि आप धैर्य रखें और रोग का सर्वथा उन्मूलन कर दें। पुराने रोगों में ही ऐलोपैथिक चिकित्सा प्रणाली में कोई इलाज नहीं है, जबकि होम्योपैथी में है। हां, उसमें मेहनत करनी पड़ती है और धैर्य से काम लेना पड़ता है। इलाज धीमी गति से होता है लेकिन होता है निश्चित रूप से।

ऐलोपैथी और होम्योपैथी परस्पर शत्रु नहीं

इन दो चिकित्सा पद्धतियों में बहुत समय से झगड़ा चला आया है परन्तु आज के प्रबुद्ध युग में उसका निपटारा हो रहा है। कुछ ऐसी संकटकालीन परिस्थितियां हो सकती हैं, जहां बिना विलम्ब किए ऐलोपैथी की शरण लेनी पड़ सकती है। होम्योपैथी उसके बाद की जा सकती है और उससे पूर्णरूपेण इलाज में सहायता मिल सकती है। कुछ रोगों में रोगी कुछ औषधियों पर निर्भर करता है जैसे कि **कार्टीसोन** जिसे अचानक बन्द नहीं किया जा सकता। जब इस औषधि की मात्रा कम की जा रही हो तो होम्योपैथी का सहारा लिया जा सकता है।

होम्योपैथी शल्य क्रिया की विरोधी नहीं

लेकिन इस बात की विरोधी अवश्य है कि अनावश्यक रूप से चीर-फाड़ हो। यह बात तो बिल्कुल सच है कि आज बहुतसी चीर-फाड़ अनावश्यक रूप से की जाती है। बवासीर, अंगों के कटाव और टॉन्सिलाइटिस में ऐलोपैथ तो तुरन्त आपरेशन करने के पक्ष में होते हैं लेकिन होम्योपैथिक दवाई की छोटी-छोटी सफेद गोलियां अधिक प्रभावी होती हैं। तो फिर अकारण ही अपने शरीर का कोई अंग क्यों कटवा लिया जाए ? चीर-फाड़ से इलाज तो नहीं होता है, हां, शरीर के एक रोग ग्रस्त अंग को काट कर फेंक दिया जाता है। रोग का कारण, जो शरीर में है, वैसे ही बना रहता है। उसका इलाज तो होम्योपैथी ही कर सकती है। कील मुहासों, रसोलियों, गुर्दे की पथरी और वैसे ही अन्य रोगों में चीर-फाड़ और ऐलोपैथिक दवाइयां असफल ही रहती हैं। इसके विपरीत होम्योपैथी में शरीर के भीतर छिपे रोग का इलाज किया जाता है। लेकिन यदि कोई व्यक्ति गोली लगने से घायल हो जाए तो उसे चीर-फाड़ का ही सहारा लेना पड़ेगा; इस बात से होम्योपैथ भी सहमत होंगे।

होम्योपैथी से प्रारंभ में रोग बढ़ जाता है

यह एक हानिकारक, बहुमुखी किंवदंती है। इसका कारण यह है कि बहुत कम मामलों में ऐसा होता है कि होम्योपैथिक दवाई देने के वाद रोग अधिक प्रचण्ड हो जाता हो। दूसरी बात यह है कि यदि रोग की तीव्रता होम्योपैथिक दवाई के कारण है, तो वह अधिक समय तक नहीं रहती, बल्कि अपने आप समाप्त हो जाती है। इस प्रकार की तीव्रता इस बात का लक्षण है कि डाक्टर ने ठीक दवाई दी थी।

होम्योपैथी का प्रभाव विश्वास के कारण होता है

कुछ लोगों का यह कहना है कि सफेद रंग की छोटी छोटी गोलियों का प्रभाव इस कारण होता है कि रोगी का विश्वास है कि उनका प्रभाव होगा। ऐसा सोचना ठीक नहीं। उदाहरण के लिए दूध पीते बच्चों को होम्योपैथी के मूल सिद्धान्त की कोई जानकारी नहीं है, लेकिन होम्योपैथिक दवाई उन्हें अच्छा करती है। मैं एक ऐसे परिवार को जानता हूं जिसके दो बच्चे बहरे थे और उनका इलाज सम्भव था लेकिन उनके पिता को होम्योपैथी में बिल्कुल विश्वास नहीं था। बच्चों की मां ने बिना अपने पति को बताए पानी में मिला कर दवाई दे दी। दोनों में से किसी बच्चे या उनके पिता को पता नहीं था कि दवाई दी गई है। कुछ समय बाद दोनों बच्चों की सुनने की शक्ति लौट आई। उस समय उनके पिता को बताया गया।

होम्योपैथी सस्ती होने के कारण विकासशान देशों के लिए विशेष रूप से उपयोगी है। उसमें थोड़ी सी चीनी और औषधि के कुछ कण होते हैं—उन पर खर्च ही कितना आता है? गावों और छोटे कस्बों में जहां दवाइयां मंहगी होती हैं और डाक्टर की फीस भी अधिक, वहां होम्योपैथी बहुत उपयोगी हो सकती है। सबसे पहले तो हमें इसकी बात तर्कसंगत आधार पर और भावावेश का परित्याग करके करनी पड़ेगी तभी इसे राष्ट्रीय या अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर स्वीकार किया जा सकेगा।

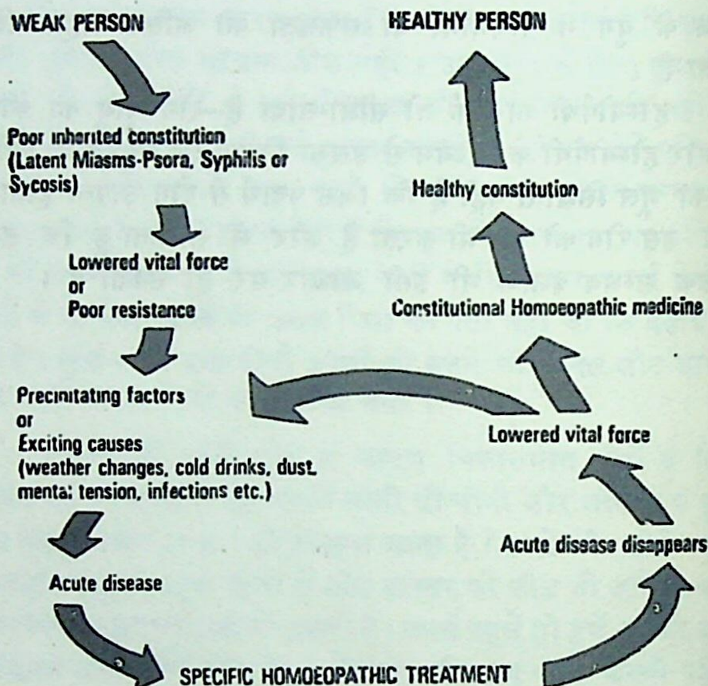
रोग के निराकरण की चेष्टाएं तो बहुत समय से होती रही हैं लेकिन चिकित्सा शास्त्र का विकास एक ही दिशा में हुआ है। इसमें होम्योपैथी न जाने क्यों पिछड़ गई है, यद्यपि यह अधिक हानिरहित पद्धति है, जो मानवीय स्वभाव के अधिक अनुकूल है। इसके सिद्धान्त तर्क पर आधारित हैं और होने भी चाहिए। अगले अध्यायों में मैंने

होम्योपैथी के प्रति एक नए दृष्टिकोण की नींव रखने की चेष्टा की है जिसका आधार विशालहृदयता, मानवीय जीवन के प्रति स्नेह और तर्क को अस्वीकार करने की बजाय उसे समझने की इच्छा पर है। आज के युग में परिणामों या सफलता को अधिक महत्व दिया जाता है।

होम्योपैथी का तर्क तो सीधा-सादा है—रोग मृत्यु का कारण है और होम्योपैथी के माध्यम से उसका निराकरण सम्भव है, क्योंकि उसका मूल सिद्धान्त यही है कि जिस पदार्थ से रोग उत्पन्न होता है, वही उस रोग को दूर भी करता है और मैं समझता हूं कि सबसे अधिक सम्भव इलाज भी इसी आधार पर हो सकता है।

होम्योपैथी से सम्पूर्ण चिकित्सा

THE COMPLETE HOMOEOPATHIC CURE



होम्योपैथी द्वारा चिकित्सा

दुर्बल व्यक्ति, शरीर का गठन जो पुश्तैनी है (उसमें छिपा विष-सोरा, सिफ़लिस या साइकोसिस), जीवनशक्ति का ह्रास या रोग से बचने की कम शक्ति, रोग के कारक (मौसम का परिवर्त्तन, ठण्डे पेय, धूल तनाव, रोग के कीटाणु), प्रचण्ड रोग।	स्वस्थ व्यक्ति, स्वस्थ शरीर होम्योपैथी में रोगी की प्रकृति के अनुसार औषधि जीवनशक्ति का ह्रास प्रचण्ड रोग समाप्त।

अध्याय २

प्रारंभिक वर्ष

एक नन्ही-सी पतली चीख के साथ बच्चा दुनिया में आता है। नन्ही-सी, नरम हड्डियों वाली जान—लगता है गुलाबी रंग की मुलायम, लेकिन झुर्रियों से भरी त्वचा की एक छोटीसी गठरी है। माता पिता के लिए यह विजयोत्सव से कम नहीं, क्योंकि नवजात शिशु वंशपरम्परा बल्कि मानव जाति की अगली पीढ़ी का प्रतीक है। वे खुशी से फूले नहीं समाते, परन्तु उस नन्हीं जान का क्या हाल है ? मां की कोख में, जब बच्चा भ्रूण के रूप में होता है और अभी उसकी शक्ल भी बनने नहीं पाई होती है, तभी से उसका उदीयमान जीवन खतरे में होता है। जन्म के तुरन्त बाद उसे हर सांस में खतरे का सामना है क्योंकि वह अभी जीवन के विकट संघर्ष के लिए तैयार नहीं है। लेकिन वह तो आगे की बात है—जरा उस जोखिम पर तो दृष्टि डालिए, जो इस नन्ही-सी जान के लिए मुंह बाए खड़ा रहता है।

मां के गर्भ में प्रस्फुटित होते ही प्रकृति उसकी सुरक्षा का ऐसा प्रबन्ध करती है कि उससे अधिक अच्छी व्यवस्था संभव ही नहीं। वह एमिनियोटिक एसिड नाम के तरल पदार्थ में तैरता रहता है, जहां तापमान एक सा रहता है। उसके आस-पास मांस की परतें होती हैं जो उसे बाहर की धकापेल और झटकों से बचाती हैं। होने वाली मां को नौ महीने तक खाने-पीने में बहुत सावधानी बरतनी पड़ती है, क्योंकि उसे दो जनों के लिए खाना पड़ता है। आहार बच्चे के शरीर में नाभि

नाल के माध्यम से पहुंचता है। इन महीनों में बच्चे को सम्पूर्ण सुरक्षा प्राप्त होती है।

हां, एक बात है, मां का पैर तनिक उल्टा सीधा पड़ जाए या उसे अधिक श्रम करना पड़े, या वह ठोकर खाकर गिर पड़े तो बच्चे को गर्भ से गिरते देर नहीं लगती। गर्भपात से मां को कष्ट तो होता ही है, लेकिन यह दुर्घटना खेदजनक है क्योंकि इसे रोकना आसान है।

गर्भ में

बच्चे को गर्भ में ही समस्याओं का सामना करना पड़ सकता है यदि एमिनियोटिक एसिड सांस के रास्ते बच्चे के मुंह में पहुंच जाए—सौभाग्यवश ऐसा बहुत कम होता है—या उसका मल निकल जाए तो उसकी सांस रुक सकती है। दोनों अवस्थाओं में बच्चे की जान बचाने के लिए उसकी मां का पेट चीर कर उसे बाहर निकालना पड़ेगा।

प्रसव के समय

कई बार प्रसव पीड़ा अधिक समय तक होती रहती है और बच्चे को बाहर निकलने में कठिनाई होती है। उस दशा में उसे चिमटे के आकार के उपकरण की सहायता से, जिसे फोरसैप्स कहते हैं, पकड़ कर बाहर खींचना पड़ता है। इसमें बच्चे के मस्तिष्क को चोट पहुंचने का खतरा रहता है। क्योंकि उसकी खोपड़ी इतनी नर्म और पिलपिली होती है कि फोरसेप्स से पकड़ने में जरा ज़ोर लग जाए तो खोपड़ी में रक्तस्राव हो उठता है। मस्तिष्क का एक हिस्सा मर जाता है जिसका परिणाम यह हो सकता है कि बच्चा हाथ या पांव हिलाने में असमर्थ हो जाए।

ऐसी अवस्था में सबसे पहले आर्निका का ध्यान आता है, जो स्नायुओं के ऊतकों को पहुंचे घाव ठीक करती है। यदि रक्तस्राव के साथ-साथ स्नायु विकार के लक्षण दिखाई पड़ें तो सिक्यूटा देनी चाहिए।

स्नायु विकार का एक लक्षण यह है कि सिर, गर्दन और रीढ़ की हड्डी में ऐंठन होती है और वह पीछे को मुड़ जाते हैं। यदि सिर को चोट पहुंचे तो उसे ठीक करने के लिए नैट्रम सल्फ देनी चाहिए

जन्म के समय

दम घुटना

संसार में पदार्पण करते ही बच्चा चीख मार कर रोता है। यही उसके जीवन की पहली चीख है। डाक्टर के लिए सबसे पहली समस्या तब होती है जब नवजात शिशु मां की कोख से बाहर आते ही रोता नहीं है। जो बच्चे दुर्बल हों, समय से पहले जन्म लें या जिनकी मांओं को गर्भ काल में नींद लानेवाली बहुतसी दवाइयां दी गई हों, उन्हें ऐसी समस्या का सामना करना पड़ता है। और फिर, यदि नाभि नाल बच्चे की गर्दन से लिपट जाए तो उसके दम घुटने की आशंका होती है और वह पहली सांस के साथ चीख नहीं मारता। ऐसी अवस्था में **लारोसिरोसिस** का सहारा लेना चाहिए।

जन्म लेते ही पीलिया

लगभग साठ प्रतिशत बच्चों को जन्म के बाद पहले कुछ दिनों में ही पीलिया हो जाता है। यह रोग दूसरे या तीसरे दिन प्रारंभ होता है छठे दिन अपनी सीमा पर पहुंच कर घटने लगता है और दसवें दिन तक ठीक हो जाता है। अधिकतर मामलों में यह शरीर की क्रियाओं के कारण होता है और किसी चिकित्सा की आवश्यकता नहीं पड़ती। लेकिन यह देख लेना चाहिए कि कहीं इसके कोई और कारण तो नहीं। यदि माता-पिता के लहू एक-दूसरे से मेल न खाते हों, बच्चे के शरीर में, पित्तवाहिनी नाड़ियां ही न बनी हों, या उन नाड़ियों में कहीं कोई रुकावट आ जाए तो भी यह रोग हो जाता है। कुछ मामलों में चीर-

फाड़ करनी पड़ सकती है लेकिन अन्य दशाओं में उन दवाइयों से लाभ होता है जो होम्योपैथी में इस रोग के लिए दी जाती हैं।

पहले ६ महीने

बच्चे का जन्म विना किसी दुर्घटना के हो जाए तो भी प्रसूति वार्ड के स्वच्छ वातावरण में भी पहली सांस उसके लिए खतरा बन सकती है क्योंकि वह अभी अपने परिवेश के अनुकूल नहीं बन पाया। वायुमण्डल में नाना प्रकार के रोगाणु और जीवाणु होते हैं और बच्चे का शरीर उनसे संघर्ष करने की क्षमता नहीं रखता। वह जल्दी से उनसे लड़नेवाले रोधाणु तैयार नहीं कर सकता और बीमार हो सकता है। लेकिन इसके साथ ही उसका कोमल शरीर ऐलोपैथी की दवाइयां सहन करने की क्षमता भी नहीं रखता। अत: जब प्रकृति उसकी रक्षा करने में असफल रहे तो वही औषधि देनी चाहिए जो प्रकृति के नियमों के अनुकूल हो और होम्योपैथी यही भूमिका निभाती है।

६ महीने की आयु तक बच्चे को वातावरण में फैलनेवाले कई रोग लग सकते हैं – गले और छाती के, मस्तिष्क की सूजन जिसे गर्दन तोड़ बुखार भी कहते हैं, और चमड़ी के रोग, जैसे फोड़े फुंसी आदि।

सांस का रुक जाना

बच्चा रोते-रोते बेहाल हो जाता है, उसकी सांस फूल जाती है और वह नीला पड़ जाता है। उसके वाद उसे मूर्छा आ जाती है। ऐसा माना जाता है कि यह व्यवहारजन्य रोग है और उस समय होता है जब बच्चे को उसकी मनचाही वस्तु न दी जाए या उसकी इच्छा के विरुद्ध कुछ करने के लिए कहा जाए। यह रोग उन बच्चों को अधिक होता है जो तनाव या संघर्ष के वातावरण में पलते हैं। विश्वास किया जाता है कि बच्चा सांस रोक लेता है जिस कारण आक्सीजन उसके फेफड़ों में नहीं पहुंचती और वह नीला पड़ जाता है। लेकिन रोने और ऐंठन के

बीच कोई सम्बन्ध नहीं, जिससे इस निष्कर्ष पर पहुंचा जा सकता है कि ऐसे बच्चे भावावेश में आकर जल्दी ही अपना शरीर ऐंठ लेते हैं। यदि उस समय ऐसे बच्चे को कार्बो वैज की कुछ खुराकें दे दी जाएं तो उसका रोग दूर हो जाता है। ऐसे दौरों को रोकने के लिए स्टाफीसाग्रिया जैसी दवाइयां देनी चाहिए जो भावावेशों को दबाने के परिणामस्वरूप होने वाले रोगों में लाभकारी है। इसके अतिरिक्त रोगी के स्वभाव के अनुकूल औषधियां भी देनी चाहिएं। इन औषधियों के अतिरिक्त इस बात की चेष्टा करनी चाहिए कि बच्चे को अधिक रोने न दिया जाए या जिस समय वह रो रहा हो तो उसका ध्यान बटाया जाए। इस बात की भी चेष्टा करनी चाहिए कि बच्चा अपनी बात मनवाने के लिए चीखने चिल्लाने का सहारा न ले।

बुखार में ऐंठन और मूर्छा

बच्चों के कई ऐसे रोग हैं जिनसे माता-पिता को बड़ी चिन्ता और घबराहट होती है। उनमें से एक यह है कि बच्चे का शरीर ऐंठ जाता है और वह बेहोश हो जाता है। इस रोग को आमतौर पर बेहोशी के दौरे की संज्ञा दी जाती है। कई बच्चों को बुखार में ऐसे दौरे पड़ते हैं जब उनका शरीर ऐंठ जाता है और वे मूर्च्छित हो जाते हैं।

यह दौरा सामान्यतया उस समय पड़ता है जब बुखार १०१ और १०४ डिग्री के बीच होता है। यद्यपि ऐसा माना जाता है कि इस दौरे से कोई विशेष हानि नहीं होती, फिर भी लगभग बीस प्रतिशत बच्चों को यह रोग हो जाता है। प्रत्येक बच्चे को बुखार के किसी न क़िसी स्तर विशेष पर दौरा पड़ सकता है, लेकिन चाहे दौरा किसी भी प्रकार का हो, उसकी भली भांति परीक्षा करना आवश्यक है, जिससे कि उसके मूल कारण का पता चल सके। यदि दौरा मिरगी के कारण, मस्तिष्क की सूजन के कारण या टेटानस के कारण हो, तो

समय रहते दवा दारू करना आवश्यक है। बीस प्रतिशत मामलों में तो केवल बुखार के कारण ऐसा होता है। यदि पहले भी दौरा पड़ा हो तो ऐलोपैथ बुखार उतारने और नींद लाने की दवाई देते हैं लेकिन होम्योपैथ बुखार के लक्षणों के अनुसार इलाज करते हैं।

पाचन की समस्याएं

पाचन की समस्याएं तब उठती हैं जब बच्चे पर किसी रोग के कीटाणुओं का असर हो जाए या उसके मां-बाप को पता न हो कि उसे क्या खिलाना चाहिए और क्या नहीं। एक कारण यह भी है कि मां-बाप उसे आवश्यकता से अधिक खिला देते हैं क्योंकि वे यह सोचते हैं कि उससे बच्चा जल्दी बड़ा होगा। पाचन क्रिया बिगड़ जाए तो उसके लक्षण ये होते हैं--उसे जो भी खिलाया जाए उसकी भूख नहीं मिटती, दस्त लग जाते है, उल्टी होती है, पेट में वायु का प्रकोप होता है और या कब्ज हो जाती है। इन रोगों और इनके होम्योपैथिक उपचार की चर्चा अगले किसी अध्याय में की गई है। लेकिन निम्नलिखित दवाएं बच्चों के लिए अधिक उपयोगी हैं।

दूध न पचना : (दूध पीते ही उल्टी कर देना और उल्टी के बाद नींद आना। जागने के बाद फिर भूख लगना और दूध पीकर फिर उल्टी कर देना) इसके लिए **ईथूसा** देना चाहिए। यदि दूध मुआफ़िक न आए, खट्टी उल्टी आए और बड़े जोर की भूख लगे तो **कलकेरिया कार्ब** देना चाहिए। यदि पेट में वायु का प्रकोप हो या उसके कारण शूल उठे तो **माइक्रोमेरिया** मदर टिंक्चर की चार पांच बूंदें एक चम्मच पानी में मिला कर देने से तुरन्त लाभ होता है। यदि दूध पीने से दस्त आते हों और मल नारंगी के गूदे जैसा हो तो **नेट्रम कार्ब** देना चाहिए।

बायोकैमिक दवा **नेट्रम फास – ६ एक्स** की तीन गोली दिन में तीन बार देने से पाचन के सभी रोग दूर हो जाते हैं।

बच्चों में एग्ज़ीमा

बहुधा सर्दी के मौसम में जब हवा में नमी हो, बच्चों को एक प्रकार का एग्ज़ीमा हो जाता है जिसमें उनके गालों पर सेब के रंग के लाल चिकत्ते पड़ जाते हैं। खुजली बहुत अधिक होती है और कई बार चिकत्ते फट जाते हैं। यदि उनसे पानी-सा बहता हो और बच्चे को कब्ज भी हो, जिसमें मल छोटी छोटी सख्त गांठों के रूप में बाहर आता हो तो उसका इलाज **ग्रेफाइट्स** है। जिन बच्चों के लगातार लार टपकती है और खुजली होती हो तथा मुंह के आस-पास एग्ज़ीमा और फुंसियां हों, जिनसे पीले रंग की पीव निकलती हो तो उन्हें **मर्कसोल** देने से बहुत लाभ होता है। जिन बच्चों के एग्ज़ीमा पर पपड़ी जम जाती हो और उससे पीव निकलती हो उनके लिए **मैज़ेरियम** एक अच्छी औषधि है। यहां चिकत्ते अधिक गर्मी या सर्दी या वर्षा ऋतु के कारण हों उन रोगियों को **रस टाक्स** देनी चाहिए।

६ महीने के बाद

६ महीने से पांच वर्ष तक के बच्चों के लिए और कई खतरे होते हैं—श्वास के रोग, आहार की कमी के कारण सूखा रोग, कब्ज और दस्त, दांत निकलने से संबंधित कष्ट और छूत के रोग जैसे खसरा या लघु मसूरिका। तीन वर्ष की आयु में बिस्तर पर पेशाब निकलने और अन्य व्यवहारजनित समस्याएं भी उत्पन्न हो सकती हैं। कहने की आवश्यकता नहीं कि इस आयु में बच्चों को चोटें भी लगती हैं क्योंकि कोई भी बच्चा निचला नहीं बैठता। विशाल संसार उसके सामने होता है और वह उसकी प्रत्येक वस्तु की खोज-बीन करना चाहता है।

हम इस आयु की अधिकाधिक बीमारियों और उनके उपचार का उल्लेख करने की चेष्टा करेंगे।

एलर्जी से श्वास नली की सूजन

जिस बच्चे को यह रोग हो जाए उसे सम्भवतः अलर्जी है और श्वास रोग होने का खतरा सदा रहता है। यह रोग अधिकतर दशाओं मे पुश्तैनी होता है और धूल, पराग या किसी सुगंधित वस्तु से हो सकता है—ये सभी तत्व एलर्जी को जन्म देते हैं। खाने-पीने की वस्तुओं में जो रंग डाले जाते हैं, उनसे भी यह रोग प्रारंभ हो सकता है। रोग विशेष के कीटाणु या क्रोध तथा अन्य भावावेशों से भी इस रोग की उत्पत्ति हो सकती है। दो तीन दिन तक इन लक्षणों के बाद खांसी के साथ गाढ़ी, लसलसी बलगम निकलती है और बहुधा खांसी के साथ उल्टी भी हो जाती है। रात को कष्ट अधिक होता है और दिन में कम। बुखार हो तो १०० से १०२ डिग्री तक होगा। इसका इलाज यही है कि एलर्जी पैदा करने वाली चीज़ोंसे बचा जाए और रोगी के स्वभाव के अनुकूल औषधि दी जाए। तुरन्त आराम के लिए रोग के लक्षणों का अध्ययन करके वही औषधियां दी जाएं जो दमे के रोगियों को दी जाती हैं (देखिए : कष्ट के साल)। लेकिन कई बार औषधि के स्थान पर एक सुझाव अधिक लाभकारी है। एक बार एक महीने के बच्चे को लाया गया जिसे खांसी थी और छींक बहुत आती थी। किसी भी औषधि से कोई लाभ नहीं हो रहा था। मैंने घर जाकर देखा तो वह रूई के गद्दे पर सोया था और उसके सिर के नीचे रेशमी सिरहाना और ओढ़ने के लिए रोएंदार कम्बल था। रूई, रेशम और रोएं, सभी एलर्जी उत्पन्न करने वाले तत्व हैं। जब इन्हें हटा दिया गया तो बच्चा रोगमुक्त हो गया।

चार वर्ष के एक अन्य बच्चे को ऐसे ही खांसी के दौरे पड़ते थे। कुछ महीने तक दवा दारू करने पर भी कोई लाभ नहीं हुआ। जब रोग के इतिहास का भली भांति अध्ययन किया गया तो पता चला कि जब भी उसके मां-बाप रात को उसे अकेला छोड़ कर जाते हैं, उसे यह रोग हो जाता है। असुरक्षा की भावना से उत्पन्न एलर्जी थी, जिसका परि-

णाम था श्वास नली की सूजन । जब मां-बाप ने रात को उसे अकेले छोड़ कर जाना बन्द कर दिया तो रोग दूर हो गया ।

दवा न भी दी जाए तो भी कुछ वर्षों में यह रोग अपने आप चला जाएगा, लेकिन इससे दमा भी हो सकता है। अच्छा यही है कि ऐसा खतरा मोल न लिया जाए और समय रहते दवा दारू की जाए ।

बिस्तर पर पेशाब निकल जाना

यह एक बहुत पुरानी समस्या है, जिसके परिणामस्वरूप बच्चे की अपेक्षा मां-बाप को अधिक असुविधा होती है । सामान्यतया तीन या चार वर्ष की आयु का बच्चा अपने पेशाब को रोकना सीख लेता है । मन्द बुद्धि बच्चे या ऐसे बच्चे जिनके मसाने में पथरी हो, पेट में कीड़े हों, शिशनाग्र की चमड़ी बहुत कसी हुई हो या योनि में खुजली होती हो उनका पेशाब अनजाने में निकल जाता है । परन्तु अस्सी प्रतिशत मामलों में इसका कारण चिन्ता, मानसिक संघर्ष और भावावेशों का दमन होता है। मां-बाप की डांट-फटकार से दोष की भावना उत्पन्न होती है और उससे यह समस्या अधिक जटिल हो जाती है ।

होम्येपैथी में **कॉस्टीकम** (मसाने की कमजोरी) दी जाती है । यदि पेट के कीड़ों के कारण पेशाब निकल जाए तो **सिना** और **कैलेंडियम** देनी चाहिए । जो बच्चे बहुत सक्रिय हों और जिनका मसाना बोझ बर्दाश्त न कर सके उनके लिए **काली फोस–३०** उचित दवाई है। जिन बच्चों के दांतों म कीड़ा लगा हो और जो सोते ही पेशाब कर दें उनके लिए **क्रियोसोट** उचित दवाई है। यदि **मुलियन ऑयल** की दस बूंदें सोने से पहले पानी में मिला कर दे दी जाएं तो सभी मामलों में लाभ होगा । नाजुक मिजाज लड़कियों के लिए **पलसाटिला** अच्छी दवाई है और यदि भावावेश के दमन के कारण यह कष्ट हो तो **स्टाफीसाग्रिया** देनी चाहिए ।

इन औषधियों के अतिरिक्त यह चेष्टा करनी चाहिए कि बच्चे को बिस्तर में लेटने से पहले पेशाब करने की आदत डालें। रात को सोने से पहले पीने को बहुत कम पानी आदि दिया जाए।

छोटी माता

कुछ वर्ष की बात है कि एक आवश्यकता से अधिक उत्साही मरीज दौड़ा दौड़ा आया और मुझे कहने लगा कि उसके पड़ौसी के बच्चे को माता निकल आई है। उस समय दुनियाभर में चेचक के विरुद्ध अभियान चल रहा था, जिसके परिणामस्वरूप इस रोग का उन्मूलन हो गया था और अभियान के चलाने वाले हर ऐसे व्यक्ति को एक हजार रुपए का इनाम देने की घोषणा कर चुके थे जो चेचक के किसी रोगी का पता दें। मैं भागा-भागा वहां गया और मुझे पता चला कि चेचक नहीं थी बल्कि छोटी माता निकली हुई थी। इन दो रोगों को एक-दूसरे से अलग करके पहचान पाना आसान नहीं है। ग्रामीण चेचक को बड़ी माता और चिकन पोक्स को छोटी माता करते हैं।

लेकिन छोटी माता चेचक जितनी घातक नहीं है, जो मुख्य रूप से दस वर्ष तक की आयु में होती है, यद्यपि इससे अधिक आयु के लोगों को भी यह रोग हो जाता है और छोटे बच्चे भी उसके प्रकोप से बच नहीं पाते। अधिकतर मामलों में यह खांसी या छींकते समय निकले हुए थूक के कणों से फैलती है। बच्चे को पहले तो दाने-से निकलते हैं जिन्हें कई बार पित्त के दाने समझ लिया जाता है लेकिन अगले दिन और दाने निकल आते हैं। दाने सबसे पहले धड़ पर निकलते हैं। उसके बाद चेहरे सिर और आस-पास के अंगों पर। कई बार नाक और गले के अन्दर भी दाने निकल आते हैं, जिनसे बड़ा कष्ट होता है। रोग की प्रचण्ड अवस्था में शरीर पर सैकड़ों दाने दिखाई देते हैं।

कुछ समय बाद इन दानों में पानी पड़ जाता है और पीप भी

पड़ जाती है। देखने से ऐसा लगता है मानो शरीर पर ओस पड़ी हो। दुर्भाग्यवश त्वचा पर खुजली बहुत अधिक होती है और खुजाने से बिगड़ जाती है और त्वचा सूज जाती है। अन्त में खरुंड बन जाते हैं। सूख कर ये गिर जाते हैं और नीचे से गुलाबी रंग की त्वचा निकल आती है। कुछ समय बाद वह भी ठीक हो जाती है।

बड़ी माता के हल्के-से प्रकोप और छोटी माता के प्रचण्ड प्रकोप में क्या अन्तर है ? यह जानने के लिए निम्नलिखित बातों का ध्यान रखना चाहिए :

१. छोटी माता में दाने सबसे पहले धड़ पर निकलते हैं और उसके बाद बाहर की ओर फैलते हैं। ये दाने इकट्ठे निकलते हैं और हथेलियों या पैर के तलवों पर नहीं होते। इसके विपरीत बड़ी माता के दाने शरीर के प्रत्येक अंग पर निकलते हैं।

२. छोटी माता के दाने रुक रुक कर निकलते हैं और किसी भी एक समय कुछ दाने नए होते हैं और कुछ पुराने।

३. छोटी माता के दाने बड़ी माता की अपेक्षा छोट आकार के होते हैं।

दाने निकलने से पहले और निकलते समय छोटी माता अत्यधिक संक्रमणशील है। जब तक दाने सूख नहीं जाते — और उसमें तीन सप्ताह तक का समय लग सकता है—रोगी को अलग रखना चाहिए। कई बार बच्चे के हाथ बांध देना आवश्यक हो सकता है जिससे कि वह खुजा कर खुरंड न छील ले और अपनी हालत और खराब न कर ले।

इसके लिए जो दवाइयां दी जानी हैं उनमें निम्नलिखित हैं- **एकोनाइट** (जब दाने निकलने प्रारंभ ही हुए हों); **हैपर सल्फर-२००** (जब खुजली कर करके त्वचा छील ली गई हो और उसमें पीप पड़ गई हो; **फ़ास्फ़ोरस** (लहू का बहना रोकने के लिए : परन्तु यह बड़ी खतरे वाली बात है और तुरन्त किसी डाक्टर की सलाह लेनी

चाहिए; **सल्फ़र** यदि दाने दब गए हों जिससे कि वे बाहर आ जाएं और साथ ही खुजली भी कम हो; **मालांड्रिनम–२०० या वेरियोलीनम–२००** (यदि महामारी के रूप में रोग फैला हुआ हो तो यह औषधि लेने से नहीं होता ।)

दांत निकलना

दांत निकलने के साथ साथ कई समस्याएं उत्पन्न होती हैं बच्चा चिड़चिड़ा हो जाता है, उसकी श्वास नली के ऊपरी भाग में कष्ट हो जाता है, दस्त लग जाते हैं और उल्टी आती है । चिकित्सा शास्त्र में इस बात का कोई प्रमाण नहीं मिलता कि दांत निकलने जैसी प्राकृतिक घटना के परिणामस्वरूप और कोई कष्ट हो लेकिन यह विश्वास किया जाता है कि दांत निकलने के समय बच्चे की रोग से निपटने की शक्ति घट जाती है और उसे जुकाम या खांसी बहुत शीघ्र हो सकती है । उन दिनों उसके मसूढ़ों में खुजली होती है और बच्चा चिड़चिड़ा हो जाता है । मसूढ़ों की खुजली को दूर करने के लिए वह जो वस्तु हाथ में आए उसे उठा कर मुंह में डाल लेता है जिसके परिणामस्वरूप दस्त लग जाते हैं या उल्टी होती है । होम्योपैथी में ६ महीने से डेढ़ साल तक की आयु के बीच आने वाली इन कठिनाइयों का सामना करने के लिए बहुतसी औषधियां हैं ।

माताओं को बहुधा यह चिन्ता रहती है कि बच्चा समय पर दांत नहीं निकाल रहा । होम्योपैथी में मन्द बुद्धि और देर से पनपने वाले बच्चों के लिए **बरायटा कार्ब** और गोरे चिट्टे, मोटे लेकिन थलथल शरीर वाले बच्चों को, जिनके दांत देर से निकल रहे हों, **कलकेरिया कार्ब** दी जाती है ।

पांचवें महीने के बाद यदि बच्चे को **फैरम फॉस–३ एक्स** और **कलकेरिया फांस–३ एक्स** की दो-दो गोलियां दिन में तीन बार दी जाएं तो उससे दांत जल्दी निकल आते हैं ।

यदि दांत निकालते समय बच्चा चिड़चिड़ा हो तो **कैमोमिला** देने से सबसे अधिक लाभ होता है। इस औषधि का लक्षण यह है कि जब मां गोद में बच्चे को उठाए आती है और डाक्टर के पास कुर्सी पर बिठा देती है तो वह तुरन्त चिल्लाना शुरू कर देता है। बच्चा बहुत खीझा हुआ और बेचैन होता है और तभी चुप करता है जब उसे गोद में उठाए रखा जाय।

जहां तक दस्तों और उल्टी का सवाल है, उनके लक्षणों के अनुसार दवा देनी चाहिए। (देखिए घर में) लेकिन दांत निकलने की अवधि में दस्तों के लिए दो औषधियां विशेष रूप से गुणकारी हैं: **पोडोफाइलन** (बिना दर्द के बहुत अधिक दस्त, जबकि गुदा बाहर आ गई हो और बच्चा बराबर अपने मसूढ़ों को चबाता रहता हो) और **र्‍हयून** (बच्चे से खट्टी बू आती है और वैसी ही दुर्गंध्न उसके मल से भी आती है।

यदि दांत निकालते समय बच्चे की लार बहुत टपकती हो तो उसे **मर्क सोल** देनी चाहिए।

डिप्थीरिया

यह अभी तक एक घातक रोग माना जाता है। इसका सबसे पहला लक्षण यह है कि गले में सूजन हो जाती है जिसके कारण बच्चे की मां को बहुत चिन्ता होती है। यह बीमारी अत्यधिक संक्रमणशील है। जिस बच्चे को यह रोग हो उसका मुंह चूमने से भी हो जाती है। यह सामान्यतया २ और ५ वर्ष की आयु के बीच होती है।

इस रोग के कीटाणु दो और १४ दिन के बीच बढ़ कर अपना असर दिखाते हैं, लेकिन सामान्यतया तीन या चार दिन में ही यह प्रचण्ड रूप धारण कर लेता है। इसके कीटाणु सबसे अधिक प्रभाव गले पर डालते हैं उसके बाद नाक में और श्वास नली में फैल जाते हैं।

पहले तनिक ठण्ड लगती है, हल्कासा बुखार होता है और कमजोरी आ जाती है। उसके साथ ही शरीर में और विशेष रूप से पीठ और हाथ-पांव में पीड़ा होती हैं और ऐसा लगता है कि मानो वे टूट गए हैं। सबसे पहले लक्षण यही होते हैं और कई बार बच्चे को बेहोशी का दौरा पड़ने के बाद यह रोग प्रकट होता है।

कुछ समय बाद ऐसा लगता है मानो गला सूख गया हो, उसमें जलन होती है और गले का छेद सिकुड़ जाता है। इसके परिणामस्वरूप निगलने में कठिनाई होने लगती है। गला सूजा हुआ और लाल रंग का होत है। कुछ समय बाद टोंसिल्स के ऊपर सफेद सी तह जम जाती है। जब वह फैलती है तो उसका रंग गंदला हो जाता है और नीचे की त्वचा से खून बहने लगता है। जीभ पर मैल जम जाती है और बुखार १०३ डिग्री तक पहुंच जाता है।

यदि रोग अधिक प्रचण्ड न हो तो एक सप्ताह में ही सुधार होने लगता है और दसवें दिन से बच्चा ठीक होने लगता है। लेकिन यदि बीमारी अन्दर को फैल जाए तो कई जटिल और गंभीर समस्याएं उत्पन्न हो सकती हैं। यह रोग नाक, गले या सारे शरीर में फैल सकता है और इसके परिणामस्वरूप श्वास नली सूज सकती हैं, छपाकी निकल आती है, गेंगरीन हो जाती है और गुर्दे की बीमारियां हो जाती हैं। लेकिन सौभाग्यवश आजकल यह रोग उतना नहीं होता, जितना पहले हुआ करता था। पहले तो इसके साठ प्रतिशत रोगी मर जाते थे, लेकिन अब यह प्रतिशत बहुत कम हो गया है। यदि डिप्थीरिया गले में ही रहे तो उसका उपचार करना कठिन नहीं। लेकिन यदि दूसरी समस्याएं उत्पन्न हो जाएं तो चिन्ता हो सकती है। डिप्थीरिया एक ऐसा रोग है जिसका इलाज स्वयं करने की चेष्टा न कीजिए बल्कि रोगी को डाक्टर के पास ले जाइए।

इस रोग के लिए होम्योपैथी में जो औषधियां दी जाती हैं उनमें

हैं : **बैलाडोना** (जब गला और चेहरा चमकीले लाल रंग का हो, गला सूजा हुआ हो और पानी आदि निगलने में कठिनाई के साथ साथ बुखार तेज हो); **डिप्थीरिनम–२००** (इसके देने से रोग नहीं होता); **मर्क सियान** (इसका लक्षण यह है कि निगलने में कष्ट होता है; यह इस रोग की विशेष दवाई है)।

मिरगी

मिरगी का रोगी दौरा पड़ते ही अचानक गिर पड़ता है और बेहोश हो जाता है। उसकी मांस पेशियों में ऐंठन होती है और उसके बाद उसे गहरी नींद आ जाती है। बच्चे को दौरे से पहले कुछ ऐसे कष्ट होते हैं जिनसे यह अनुमान लगाया जा सकता है कि दौरा पड़नेवाला है। उसके सिर में दर्द होता है, चक्कर आते हैं, भांति भांति के रंग दिखाई देने लगते हैं, छींकें आती हैं, कानों में सांय सांय होती है और बच्चा खीझा हुआ होता है। बाहों और टांगों में और सिर या पेट में भी अजीब प्रकार की सिहरन होती है।

उसके बाद बच्चा अचानक जोर से चीख मारता है और गिर कर बेहोश हो जाता है। उसके बाद उसका जबड़ा कस जाता है, मुंह से झाग निकलने लगता हैं और जीभ के दांतों के नीचे आ जाने से वह कट जाती है। इसी कारण झाग में खून मिला हुआ होता है। उसकी आंखें ठहरी हुई होती हैं जैसे टकटकी बांध कर देख रहा हो। कई बार आंखों की पुतलियां अनायास ही घूमने लगती हैं। उसकी मुट्ठियां भिची हुई होती हैं और उसका मलमूत्र निकल जाता है। उसे सांस कठिनाई से आता है, चेहरा पीला होता है और दो-तीन मिनट बाद जब मूर्छा दूर होती है तो बच्चा हैरान होता है कि उसे क्या हुआ था। उसके बाद वह सो जाता है।

बच्चों में इस रोग का कारण भय, स्नायु विकार, हिस्टीरिया

और मानसिक तथा शारीरिक कमजोरी होती है। पेट खराब होने, पेट में कीड़े होने या फोड़े फुन्सी के दबा दिए जाने के बाद भी यह रोग हो जाता है। ये दौरे अधिकतर दो और दस वर्ष की आयु के बीच पड़ते हैं।

मिरगी के लिए औषधियां हैं : **साइना** (जब पेट के कीड़ों के कारण दौरे पड़ते हों); **कुप्रम** (फोड़े फुन्सियों के दबा दिए जाने के दुष्परिणाम, दौरे में चेहरे का नीला पड़ जाना और मुट्ठियां भिंची होना; ऐंठन, हाथ-पांव में प्रारंभ होती है और सारे शरीर में फैल जाती है); **नक्स वामिका** (जब दौरे से पहले कब्ज हो या अत्यधिक क्रोध आ जाए); **ओपियम** (भय के दुष्परिणाम; अत्यधिक नींद या आलस्य; बच्चा न कुछ चाहे और न किसी बात की शिकायत करे; उसकी आंखें अधखुली हों और ऊपर की तरफ केन्द्रित हों); **सल्फ़र** (जब फोड़े फुन्सी या पीप आदि को दबा दिया गया हो);

जब बच्चे को दौरा पड़ा हो तो उसकी जीभ मुंह से बाहर निकल आती है। उसे मुंह में वापस डाल देना चाहिए और उसके जबड़ों के बीच कोई कपड़ा दे देना चाहिए ताकि फिर वह अपनी जीभ न काट ले। उसके आस-पास हवा आने देनी चाहिए और कपड़ों के बटन-आदि खोल देने चाहिए।

प्रोटीन युक्त आहार की कमी के कारण कमजोरी

बच्चा जन्म से ही कमजोर होता है, चाहे मां का दूध पिए उसे पचाने में भी कठिनाई होती है और उसका वजन नहीं बढ़ता। कभी बढ़ता भी है तो फिर कम हो जाता है। इसका क्या कारण है? कारण होता है आहार की कमी। बच्चा ६ महीने की आयु तक ठीक रहता है और उसके बाद किसी तीव्र रोग या उसके भोजन में परिवर्तन के कारण पोषक आहार की कमी हो जाती है।

बच्चा अपनी आयु से अधिक बड़ा लगता है और उसके चेहरे पर झुर्रियां पड़ जाती हैं, आंखें धंस जाती हैं और छोटीसी ठोड़ी की तुलना में उसका सिर बहुत बड़ा दिखाई देता है। उसकी छाती छोटी सी होती है और पसलियां बाहर को निकली हुई। उसके साथ ही उसका पेट बढ़ा हुआ होता है। शरीर का तापमान सामान्य से कम होता है और किसी दिन अधिक और किसी दिन कम बार मल त्याग करता है। कभी कभी उसे दस्त भी लग जाते हैं और मल का रंग बदल जाता है। उसकी भूख असामान्य हो जाती है।

इस रोग की सर्वोत्तम दवाइयां हैं : **एब्रोटिनम** (विशेषरूप से जब टांगें कमजोर हों); **आयोडियम** (जब अच्छा भला खाता-पीता भी दुर्बल होता जाए); **लाइकोपोडियम** (जहां शरीर का ऊपरी भाग कमजोर हो); **नेट्रम म्यूर** (जहां गर्दन बहुत पतली हो)।

खसरा

भारत में हर वर्ष अस्सी हजार बच्चे इस रोग से मरते हैं जबकि पश्चिमी देशों मे इस रोग से मरने वालों की संख्या कुल २५० है। यह काफी चिन्ता का विषय है।

आधे से अधिक बच्चों को पहले पांच साल में खसरा होता है और आठ में से सात रोगी दस साल तक की आयु के होते हैं। एक पुरानी कहावत है कि प्रेम खसरे के समान है—जितनी अधिक आयु में हो उतना ही अधिक खतरनाक है। जब बच्चा जन्म लेता है तो ६ महीने तक शरीर खसरे के प्रभाव से मुक्त रहता है, लेकिन उसके बाद नहीं।

यह छूत से फैलने वाला रोग है, जो बड़े बड़े नगरों और विशेष रूप से घनी आबादी वाले क्षेत्रों में तेजी से फैलता है। इस रोग के कीटाणु श्वास नली में रहते हैं और खांसने या छींकने से दूसरों तक पहुंचते हैं। यह आवश्यक नहीं कि किसी रोगी से निकट सम्पर्क होने पर ही बीमारी फैलती हो।

जब रोग के कीटाणु शरीर में प्रवेश करते हैं तो उसके लगभग दो सप्ताह बाद इसके लक्षण प्रकट होने लगते हैं। रोगी को छींकें आती हैं, खांसी होती है, आंखों से पानी बहता है और कई बार दस्त भी लग जाते हैं। बुखार १०५ डिग्री तक पहुंचता है और सांस धौंकनी की तरह चलती है। गले में सलेटी रंग के सफेद दाग या धब्बे उभर आते हैं और उसके दो से पांच दिन के भीतर शरीर पर दाने निकल आते हैं। खसरे का यह पक्का लक्षण है।

सबसे पहले दाने चेहरे के आसपास और कानों के पीछे निकलते हैं और उसके बाद तेजी से शरीर के दूसरे भागों में फैल जाते हैं। दाने लाल रंग के और चिकत्तेदार होते हैं और साथ ही बहुधा खुजली और जलन होती है। यदि दाने बहुत कम निकलें और फैलें नहीं, तो बड़ी सावधानी बरतने की आवश्यकता है। यह इस बात का लक्षण नहीं है कि रोग का प्रकोप हल्का है, बल्कि बहुधा इस कारण होता है कि रोग दबा हुआ है लेकिन है बहुत प्रचण्ड। जब दाने समाप्त हो जाते हैं तो बुखार अचानक उतर जाता है और बाकी सभी लक्षण भी समाप्त हो जाते हैं। अन्य रोगों के समान खसरा भी हल्का हो सकता है या उसके कारण मृत्यु तक हो सकती है।

यदि रोग का प्रकोप हल्का हो, तो सम्भव है कि उसके गले में सलेटी रंग के धब्बों के अतिरिक्त और कोई कष्ट न हो। लेकिन यदि रोग का प्रकोप प्रचण्ड हो तो सारे शरीर में विष फैल सकता है और दाने निकलने के बाद, बिना किसी गंभीर लक्षण के, रोकी की मृत्यु हो सकती है। जब विष बहुत फैल गया हो तो बुखार बहुत तेज होता है, शरीर में कंपन होता है, सांस लेने में कठिनाई और बेहोशी में रोगी बाही तबाही बकने लगता है।

खसरे में सबसे अधिक गंभीर लक्षण कई बार यह होता है कि श्वास नली सूज जाती है और निमोनिया हो जाता है। जब सारे शरीर

में दाने निकलने के बाद बुखार न उतरे और खांसी, सांस लेने में कठिनाई और सांस का फूलना जारी रहे तो इसी का डर होता है। खसरे के बाद जो बीमारियां हो सकती हैं उनमें हैं—गले की सूजन, श्वास नली की सूजन, मुंह में फोड़े या अल्सर, मस्तिष्क की सूजन और कान में सूजन। जिन रोगियों को यक्षमा होने का डर हो उन्हें सामान्यतया खसरे के बाद वह रोग हो जाता है। खसरे में एक अच्छी बात यह है कि दूसरी बार बहुत कम होता है और बड़ी आयु में पहुंच कर तो दोबारा कभी नहीं होता।

खसरे के बारे में बहुत से अन्धविश्वास और किंवदंतियां प्रचलित हैं। बहुत से लोगों का विश्वास है कि खसरा शरीर के अन्दर की गर्मी के कारण होता है और इसलिए वे रोगी को मांस, अंडा आदि नहीं देते। कुछ और लोगों का विश्वास है कि यह ईश्वर के कोप का लक्षण है और वे दवाई नहीं देते जिससे कि भगवान और कुपित न हो जाए। लेकिन इस प्रकार बिना दवाई के छोड़ देने के परिणाम बहुत बुरे हो सकते हैं। सबसे अच्छा तो यह है कि ज्यों ही आपको पता चले कि आपके बच्चे को खसरा निकल आया है, उसे डाक्टर के पास ले जाएं। यह बात ध्यान देने योग्य है कि खसरा दो प्रकार का होता है—एक तो साधारण और दूसरा जर्मन खसरा या रूबैला। इन दोनों को पहचानने में भ्रम हो जाता है। लेकिन सच तो यह है कि भारत में जर्मन खसरा अधिक लोगों को नहीं होता।

बच्चों की बीमारियों के बहुत से विशेषज्ञ खसरे से बचने के लिए **एम० एम० आर०** (खसरा, कनपेड़े और रूबेला) का टीका लगवाने की सलाह देते हैं। मैं समझता हूं कि यह टीका नहीं लगवाना चाहिए, क्योंकि इससे रोग दब जाता है और ज़ुकाम, खांसी तथा बुखार बार बार होता है लेकिन दाने नहीं निकलते। मैं समझता हूं कि अगर यह टीका लगवाने की बजाय **मोरोबिलिनम—२००** की दो-दो खुराकें दो

दिन तक दे दी जाएं तो यह रोग नहीं होता और यदि खसरे के तुरन्त बाद यह औषधि दे दी जाए तो खांसी और जुकाम दूर हो जाता है और दोबारा खसरा निकलने की संभावना कम हो जाती है। इस रोग के लिए निम्नलिखित दवाएं देनी चाहिए : **एकोनाइटम** (अचानक बुखार आने की दशा में प्रारंभ में ही देने से लाभ होता है); **बैलाडोना** (सूजा हुआ गला, खुश्क, कुत्ते जैसी खांसी, चेहरा गर्म और लाल और सिर-दर्द); **ब्रायोनिया** (यदि दाने दब गए हों तो उनके निकलने में सहायक होती है); **पलसोटिला** (जहां खसरे में प्यास न लगे और पेट खराब रहता हो)।

जब बच्चा नाक बन्द होने के कारण मां का दूध न पी सके तो उसे चम्मच से पिलाना चाहिए। ऐसे रोगी को गर्म कपड़े नहीं पहनाने चालिए, परन्तु उसकी छाती सूती कपड़े से ढकी रहनी चाहिए।

कनपेड़े

आपकी दस वर्षीय लड़की एक समस्या लेकर आपके पास आती है जो देखने में हानिरहित लगती है। उसके गले में दर्द है, निगलते समय कष्ट होता है और हल्का बुखार भी है आप सोचते हैं कि शायद, उसका गला खराब हो गया है या टॉसिल्स सूज गए हैं और इसलिए आप उससे कहते हैं कि गर्म पानी से गरारे करके सो जाओ। परन्तु अगले दिन प्रातः उसके गले के एक ओर का भाग सूजा हुआ दिखाई देता है। डाक्टर के पास ले जाते हैं तो आपकी आशंका की पुष्टि हो जाती है : बिटिया को कनपेड़े निकल आए हैं।

कभी ये कनपेड़े बड़े होते हैं और कभी छोटे। लेकिन यह सूजन थूक पैदा करने वाली ग्रन्थी की सूजन के कारण होती है। कनपेड़े का रोग अत्यन्त संक्रमणशील है। यह अधिकतर बच्चों को होता है। छोटी आयु के बच्चों और बूढ़ों को यह रोग बहुत कम होता है। हाँ,

गर्भिणी को रोग हो जाए तो उसके गर्भ में पल रहे बच्चे को भी हो सकता है। कनपेड़े अधिकतर सर्दी के मौसम में निकलते हैं।

इस बीमारी का जो पहला लक्षण दिखाई देता है, वह गर्दन के एक ओर होने वाली सूजन है। परन्तु उससे कुछ दिन पहले गर्दन अकड़ जाती है और उसमें तथा जबड़े में दर्द प्रारंभ हो सकता है। अन्य लक्षण हैं बुखार, गले की सूजन और कंपन। थूक उत्पन्न करने वाली ग्रन्थी एक ओर सूज जाती है और दो तीन दिन तक सूजन बढ़ती रहती है। ऐसा लगता है कि गर्दन के नीचे एक थैलीसी लटक आई है। कुछ दिन बाद वह सूजन समाप्त हो जाती है और दूसरी ओर की ग्रन्थी सूज जाती है। जब दोनों ओर सूजन आ जाए तो चेहरा बिगड़ जाता है। प्रारंभ में त्वचा तनी हुई मालूम होती है परन्तु पीड़ा नहीं होती। खाते समय, कुछ चबाते समय या मुंह खोलने पर पीड़ा होती है?। कई बार रोग का प्रकोप इतना कम होता है कि उसका पता ही नहीं चलता।

कनपेड़ा रोग में एक समस्या यह हो सकती है कि अण्डकोष सूज जाएं। बहुत छोटे बच्चों में यह समस्या नहीं होती लेकिन किशोरों और अधिक आयु के पुरुषों में अवश्य हो जाती है। कनपेड़ों के लगभग पच्चीस प्रतिशत मामलों में सातवें या आठवें दिन अण्डकोष सूज जाते हैं। कई बार अन्य लक्षणों से पहले यह सूजन आ जाती है। हो सकता है कि इसके साथ साथ उल्टी आए, रोगी बेहोश होकर गिर पड़े या उसे १०४ डिग्री तक बुखार हो जाए। सामान्यतया एक ही अण्डकोष में सूजन आती है। परन्तु पांच प्रतिशत मामलों में दोनों अण्डकोषों में सूजन आ जाती है। इसके परिणामस्वरूप बंध्यता रोग हो सकता है जो स्थायी होता है। स्त्रियों में अण्डाशय और छातियों में सूजन आ जाती है।

एक और खतरे की बात यह है कि रोगी का अग्न्याशय (वह ग्रन्थी जिसका रस चीनी को पचाने में सहायक होता है) सूज जाता है।

अण्डकोषों की सूजन के समान कई बार कनपेड़ा रोग का एकमात्र लक्षण यही होता है। जब पेट में बड़े जोर का दर्द हो, बुखार चढ़ जाए और उल्टी आने लगे—और उससे पहले गर्दन में हल्की सी सूजन हो—तो यह समझ लेना चाहिए कि कनपेड़ा रोग का प्रकोप है और अग्न्याशय में सूजन आ गई है।

सामान्यतया यह माना जाता है कि कनपेड़ा रोग किशोरावस्था से पहले हो जाए तो अधिक अच्छा है क्योंकि बाद में होने पर अण्डकोषों की सूजन का खतरा होता है। कनपेड़े के रोगी को अपना मुंह सदा साफ रखना चाहिए और खट्टे तथा ठोस पदार्थों से परहेज करना चाहिए।

इस रोग के लिए निम्नलिखित औषधियां हैं: **बेलाडोना** (दर्द की टीस उठती हो; चेहरा लाल और सूजा हुआ लगता हो; बुखार हो); **मर्क आइ० एफ०** (जब कनपेड़ा दाईं ओर हो; थूक बहुत आता हो और जीभ पर पीले रंग की मैल जमी हुई हो); यही दवाई बाईं ओर की सूजन के लिए भी दी जाती है; **फाइटोलाका** (टॉन्सिल्स और तालु लाल रंग का हो या सूजा हुआ हो; गले में दर्द हो और गर्मी का आभास हो; कोई चीज निगलते समय कानों में बड़े जोर का दर्द हो; थूक बहुत आता हो; सिर दर्द हो; और सांस में बदबू हो); **पलसाटिला** (जब कनपेड़ों के कारण अण्डकोषों या स्त्री की छातियों में सूजन या दर्द हो)।

गुर्दे की बीमारियां

इन रोगों के लक्षण अनायास मूत्र त्याग के विपरीत हैं। इनमें मूत्र बहुत कम आता है। निश्चित रूप से कोई नहीं कह सकता कि इन रोगों का मूल कारण क्या है, लेकिन ये सामान्यतया दो और पांच वर्ष की आयु के बीच होते हैं। सबसे पहला लक्षण यह है कि मूत्र की मात्रा

कम हो जाती हैं और बच्चा जागता है तो उसकी आंखें सूजी हुई होती हैं। उसके बाद यह सूजन पेट पर, अण्डकोषों बल्कि हृदय की बाहरी झिल्ली पर भी हो जाती है। इसके साथ ही रोगी को भूख लगनी बन्द हो जाती है, दस्त लग जाते हैं और उल्टी आने लगती है। इस रोग में बुखार नहीं होता।

ऐलोपैथी में इसके लिए मुख्य रूप से कार्टीसोन जैसी दवाइयां दी जाती हैं जिनके दुष्प्रभावों के बारे में बहुत वाद-विवाद चल रहा है। साथ ही, इन दवाइयों से रोग का निराकरण नहीं होता। गुर्दे की बीमारियों के विशेषज्ञ भी यह कहते हैं कि गुर्दे की सूजन और उससे उत्पन्न विकारों का कोई इलाज नहीं। हम एक ऐसे रोगी की चर्चा करना चाहेंगे जिसका इलाज होम्योपैथी से किया गया। एक लड़का एक दिन सबेरे जागा तो उसकी आंखें सूजी हुई थी। एक महीने के भीतर उसका सारा शरीर मुटिया गया था और उसका वजन दस किलोग्राम बढ़ गया था। उसकी त्वचा के नीचे इतना अधिक पानी इकट्ठा हो गया था कि छाती के बाईं ओर झिल्ली सी लटक आई थी। रोगी को अस्पताल में भर्ती कर दिया गया और उसे मूत्र लाने वाली और कार्टीसोन से बनी दवाइयां बहुत बड़ी मात्रा में दी गई। उसका नमक बन्द कर दिया गया और भोजन में प्रोटीन की मात्रा बहुत अधिक बढ़ा दी गई। उसके शरीर की सूजन कम हो गई लेकिन आंखोंके आसपास और टांगों पर सूजन बनी रही। जब मैंने रोगी को देखा तो वह बात बात पर खीझ कर खाने को दौड़ता था। उसकी पाचन क्रिया भी ठीक नहीं थी। इस कारण मैंने उसे नक्स वॉमिका दी और एक महीने के अन्दर ही वह सामान्य रूप से भोजन करने लगा और मूत्र लानेलाने वाली दवाइयां बंद कर दी गई। उसके शरीर पर कोई सूजन नहीं रही और मूत्र के साथ आने वाला एल्ब्यूमन भी कम हो गया।

यदि होम्योपैथिक दवाई रोगी के स्वभाव के अनुकूल हो तो वह जड़ से उखड़ जाता है। जब शरीर में पानी की मात्रा अधिक होने के कारण सूजन आ जाए तो **एपोसाइनम कैन** देनी चाहिए। इसकी दस या १५ बूंदें पानी में देने से सूजन कम हो जाती है, विशेषकर उस दशा में जब और कोई रोग न हो। अन्य औषधियां हैं: **एसिटिक एसिड** (पीला रंग, कमजोरी, पेट और टांगों पर सून); **एपिस** (आंखों के नीचे बहुत अधिक सूजन); **कार्लो कार्ब** (ऊपर की पलक ऐसी फूली हुई कि लगता है पानी भरा गुब्बारा हो); **टेबीरिन्थ** (गुर्दों की खराबी के कारण सूजन जिसमें गुर्दों के आस-पास हल्का हल्का दर्द होता हो और पेशाब का रंग गहरा हो)।

पोलियो

मिस्र में सूची स्तम्भों पर जो चित्र खुदे हैं उन्हें देख कर पता चलता है कि सबसे पहले यह रोग मिस्र में फैला। मिस्र के लोगों का विश्वास था कि यह रोग दैवी प्रकोप के कारण होता है। आज हम जानते हैं कि इसका कारण एक रोगाणु है जो पक्वाशय और अंतड़ी में पलता है। रोगाणु को फैलाने का काम मक्खियां, गंदगी, गंदे खाद्य पदार्थ और पानी का है। ये रोगाणु वर्षा ऋतु में अधिक होते हैं। एक लाख में से केवल दस व्यक्तियों को पोलियो के माध्यम से पक्षाघात होता है। परन्तु पक्षाघात के प्रत्येक रोगी के पीछे सौ ऐसे व्यक्ति मिलेंगे, जिन्हें यह रोग तो होता है लेकिन इसके लक्षण प्रचण्ड रूप से प्रकट नहीं होते। विधि की विडम्बना है कि गन्दे परिवेश में रहने वाले लोग कुछ प्रकार के पोलियो के रोगाणुओं से सदा के लिए मुक्ति पा जाते हैं।

एक और विडम्बना यह है कि दुबले पतले बच्चों की अपेक्षा मोटे ताजे बच्चों को यह रोग अधिक होता है। इसका कारण यह है कि एक बार रोगाणु शरीर में पहुंच जाएं तो भाग दौड़ के कारण रोग

का आक्रमण हो जाता है। रोगी बहुधा यह कहते हैं कि उन्हें तीन बीमारियों से बचने के लिए जो टीका दिया गया है, उसी के परिणामस्वरूप पोलियो प्रारम्भ हुआ है। सच तो यह है कि यदि बच्चे के शरीर में इस बीमारी के रोगाणु हों तो किसी भी टीके से रोग प्रारंभ हो सकता है। पोलियो के ८० प्रतिशत रोगी ६ मास से दो वर्ष तक की आयु के होते हैं। पहले ६ महीने तक बच्चे को अपनी मां से ही ऐसी प्राकृतिक शक्ति प्राप्त होती है कि उसे यह रोग नहीं होता।

एक प्रकार के पोलियो में, जिसे असफल पोलियो की संज्ञा दी गई है, केवल बुखार, जुकाम, शरीर में पीड़ा दस्त और उल्टी के लक्षण होते हैं। ऐसे रोगी को एक सप्ताह तक आराम करना चाहिए जिससे कि रोग का आक्रमण न हो। पक्षाघात से पहले जो पोलियो होता है उसको पहचानना बड़ा कठिन होता है : बच्चा बहुत बीमार लगता है, उदासीन होने के साथ-साथ खीझता भी है और चलना फिरना नहीं चाहता। डाक्टर भी इस अवस्था में रोग का निदान करने में असफल रहते हैं; हां, यह बात और है कि उनके मन में इसका संदेह हो जाए तो वे इसे पकड़ सकते हैं। होम्योपैथिक दवाई **जेलसीमियम** (यदि बच्चा उदासीन बैठा हो या उसे प्यास न लगती हो) दे दी जाए तो पोलियो का आक्रमण विफल किया जा सकता है। बाद में पीठ, गर्दन, जांघों और पिंडलियों में ऐंठन का अनुभव होता है। बच्चे को छुएं तो उसे बुरा लगता है। इन लक्षणों को देखते हुए **आर्निका** की कुछ खुराकें दे दी जाएं तो बहुत लाभ होता है।

पोलियो के कारण पक्षाघात हो जाए तो शरीर ढीला पड़ जाता है क्योंकि नीचे के अंगों को चलाने वाले स्नायुओं पर प्रभाव पड़ता है। इसके कई लक्षण हैं और वे इस बात पर निर्भर हैं कि पोलियो का आक्रमण किस अंग पर हुआ। मां-बाप को चाहिए कि इस मामले में अत्यंत सावधानी बरतें और जब भी पोलियो के मौसम में बच्चे को

अकारण ही उल्टी होने लगे या जी मिचलाने लगे, भूख न रहे, तेज बुखार हो, वह उदासीन हो जाए, उसे कब्ज हो जाए या पेट और अंतड़ियों में सूजन आ जाए तो उसे तुरन्त डाक्टर के पास ले जाएं।

आजकल पोलियो से निपटने के लिए **साल्क** या **सैबीन** का टीका लगाया जाता है। ऐसा माना जाता है कि इससे बच्चे को बहुत लम्बे समय तक इस रोग की संभावना से मुक्ति मिल जाती है। होम्योपैथी में केवल दो खुराकें देने से काम चल जाता है। **लैथाइरस**—६ की एक खुराब प्रात: और एक रात में दे दीजिए, बच्चे को कभी पोलियो नहीं होगा। जब पोलियो हो जाए तो उसके लिए होम्योपैथी में सांपों के विष से बनाई गई कई औषधियां दी जाती हैं। **बुंगारू** (किरात जाति के सांप का विष) उस दशा में सहायक होती है जब तेज बुखार, अकड़े हुए हाथ-पांव और बेचैनी के साथ मस्तिष्क में सूजन आ जाए। **क्रोटेलस** (कौड़िया सांप का विष) पोलियो के उन रोगियों के लिए लाभकर है, जिनका दायां अंग मारा गया हो। **नाजा** (फनियर का विष) विशेष रूप से उस दशा में लाभकारी है जब पोलियो के कारण लकवा मार गया हो, रोगी भैंगा होगया हो या उसे एक के दो-दो दिखते हों, कोई वस्तु निगल न सके या खाया-पिया उगल दे, उसकी सांस रुकती हुई मालूम होती हो या सांस लेने में कठिनाई का अनुभव होता हो।

सूखा रोग

यह रोग कैल्शियम न पचा सकने या विटामिन डी के अभाव में होता है। जिन बच्चों का शरीर विकसित हों, उन्हें भी यह रोग हो जाता है, क्योंकि अधिक मोटा होना भी कैल्शियम पचाने में असमर्थ होने के कारण संभव है। इस रोग के मूल लक्षण हैं : दांतों का देरी से निकलना, सोने के तुरन्त बाद सिर पर पसीना आना और हड्डियों का टेढ़ा हो जाना, जैसे कि टांगों का कमान के समान हो जाता। खोपड़ी में

छेद देर से भरता है और वह चपटी होती है। बच्चा लेटे रहना चाहता है न उसे खिलौनों की चिन्ता होती है और न अपने साथियों की। उसे भूख बहुत लगती है, भुक्खडों की तरह खाता है, दिन में उसे नींद आती रहती है और रात को बेचैनी होती है। रोग का प्रकोप अधिक हो तो घुटने के नीचे की हड्डी और पेड़ू की शक्ल बिगड़ जाती है, ठोड़ी छोटी और माथा चौड़ा हो जाता है, दांत बाहर को निकले होते हैं और गल कर गिर जाते हैं।

इसकी औषधियां हैं : **कलकेरिया कॉर्ब** (गोरे चिट्टे, मोटे परन्तु थलथल शरीर वाले बच्चे जिन्हें सिर और मुंह पर बहुत पसीना आता हो; **कलकेरिया फ़ास** (यह हड्डियों और जोड़ों के विकारों में अधिक लाभकारी है; उन बच्चों के लिए भी उचित दवाई है जिनके दांत देरी से निकलते हों) ; **सिलीशिया** (सूखा रोग से पीड़ित बच्चे जिनके सिर बड़े और पेट बढ़े हुए हों, खोपड़ी का छिद्र अभी खुला हो और जिन्हें ठण्ड लगती हो)।

स्कर्वी

यह रोग विटामिन सी की कमी के कारण होता है। इसके प्रारंभिक लक्षण हैं खीझ, भूख न रहना, खेलने से इन्कार और हाथ-पैर हिलाने डुलाने में अनिच्छा। बाद में मसूढ़ों से खून आता है हड्डियों के जोड़ सूज जाते हैं और उनमें पीड़ा होती है।

इसकी औषधियां हैं : **सिना** (यह प्रारंभिक अवस्था में अधिक लाभकारी होती है जब बच्चा खीझा हुआ होता है और उसकी ओर देखो तो रोने लगता है) ; **फ़ास्फ़ोरस** (मसूढ़ों से खून बहना) ; **रस टॉक्स** (जोड़ों में पीड़ा)।

टोंसिल्स की सूजन

टोंसिल्स दो छोटी छोटी ग्रन्थियां हैं, जो गले के दोनों ओर स्थित हैं। वास्तव में ये संतरी का काम करते हैं क्योंकि उनका काम शरीर को रोगाणुओं से बचाना है। जब स्ट्रेप्टो कोसीयानिमोनेको सी नाम के कीटाणु इनमें प्रवेश कर जाते हैं तो ये ग्रन्थियां सूज जाती हैं। इस रोग को टोंसिलाइटिस कहते हैं। जिन बच्चों को पौष्टिक भोजन समुचित मात्रा में न मिलता हो, जिनकी जीवन शक्ति दुर्बल हो और जो गन्दगी में रहतें हों उन्हें यह रोग होने की अधिक संभावना रहती है।

जब यह रोग प्रचण्ड रूप में होता है, तो टांसिल सूजे हुए और लाल रंग के दिखाई पड़ते हैं। गले में भी सूजन हो जाती है और कोई भी पदार्थ निगलते समय कानों में टीस उठती है। संभव है कि सिर दर्द बुखार और सारे शरीर में पीड़ा का अनुभव भी हो। जब बार-बार प्रचण्ड रूप में यह रोग हो जाता है तो यह पुराना पड़ जाता है। इसमें यह आवश्यक नहीं कि ये ग्रन्थियां बढ़ी हुई हों, परन्तु इनके आस-पास सूजन हो जाती है और गर्दन की ग्रन्थियां पिलपिली हो जाती हैं। बहुत से बच्चों के माता-पिता यह पूछते हैं कि क्या इन ग्रन्थियों को आपरेशन के माध्यम से निकलवा देना आवश्यक है और क्या होम्योपैथी में इसका इलाज है? होम्योपैथी के सिद्धान्त के अनुसार इन ग्रन्थियों की सूजन का रोग तब होता है जब बच्चे को मां-बाप से ही ऐसा शरीर मिला हो। इस कारण जीवन शक्ति दुर्बल पड़ जाती है और ऐसे बच्चे रोग का मुकाबला नहीं कर सकते। इस प्रकार जब भी धूल, पीने की ठण्डी चीजें, सर्दी, तनाव या चिन्ता हो तो इन तत्वों का प्रभाव पड़ता है और जो व्यक्ति देखने में स्वस्थ लगता है, वह बीमार पड़ जाता है और यह रोग प्रचण्ड रूप से हो जाता है। इस अवस्था में

सामान्यतया होम्योपैथी की कुछ विशिष्ट दवाइयां दी जाती हैं या परम्परागत चिकित्सा पद्धति से काम लिया जाता है। इन दवाओं से दर्द और बुखार दूर हो जाते हैं, रोगी अपने आप को फिर स्वस्थ और भला चंगा समझने लगता है।

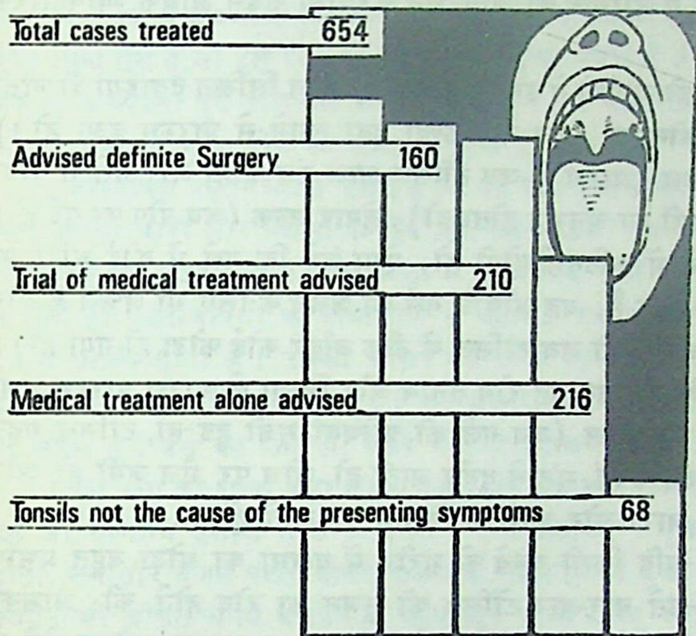
लेकिन रोगी की जीवन शक्ति दुर्बल ही रहेगी और बार-बार इस रोग के प्रकोप के कारण और भी क्षीण होती जाएगी। परम्परागत चिकित्सा पद्धति बस इतना ही कर सकती है कि अस्थायी रूप से इस रोग का इलाज कर दे। यदि ऐसा रोगी इस अवस्था में किसी होम्योपैथ के पास चला जाए तो वह उसके स्वभाव और शरीर की रचना के अनुसार ऐसी औषधि देता है जो गहरा असर करती है। इससे अस्वस्थ शरीर स्वस्थ हो जाता है। जब किसी व्यक्ति के शरीर का गठन और उसकी रचना स्वस्थ हो तभी वह बाहरी तत्वों के दुष्प्रभावों से बच सकता है और इस कारण उसे वही बीमारी फिर हो जाने का कोई खतरा नहीं रहता। लेकिन यहां एक बात का उल्लेख आवश्यक है और वह यह कि कौनसी दवाई रोगी के स्वभाव के अनुकूल होगी यह निर्णय करना कठोर परिश्रम का काम है। इसमें धीरज भी चाहिए और अनुभव भी। इस प्रकार की दवाई सुयोग्य होम्योपैथ से परामर्श करके ही लेनी चाहिए।

कुछ समय पहले तक सर्जन और डाक्टर यह राय दिया करते थे कि यह रोग हो जाए तो टौंसिल कटवा देने चाहिए। लेकिन आज उनका विचार बदल रहा है। श्वासनली को रोग के प्रभाव से बचाने में यही ग्रन्थियां सबसे अधिक सहायक होती हैं। यदि इन्हें कटवा दिया जाए तो रोग का प्रभाव गले में दूर तक और फेफड़ों तक पहुँच जाता है जिससे न केवल गले के अन्य भाग सूज जाते हैं बल्कि श्वास की नली में भी सूजन आ जाती है। जिस व्यक्ति के परिवार में दमा या अलर्जी से उत्पन्न श्वास नली की सूजन का रोग हो, मैं उसे कभी

टोंसिल का आपरेशन कराने की राय नहीं देता। यह भी विश्वास किया जाता है कि यदि इन ग्रन्थियों की सूजन के रोग को समय रहते न रोका जाए तो इसके कारण गुर्दे या हृदय में भी सूजन आ सकती है। लेकिन हाल ही में पशुओं और मानवों पर जो प्रयोग किए गए हैं उनसे इस बात का ठोस प्रमाण मिला है कि टोंसिल बीमारी को दूर करने में सहायक होते हैं, उसका प्रभाव फैलाने में नहीं। इसी प्रकार, शरीर के दूसरे अंगों में रोग के कीटाणुओं का जो प्रभाव पहुँच गया हो उसे भी इन्हीं ग्रन्थियों के माध्यम से निकाल कर फेंका जा सकता है। एक प्रयोग किया गया था, जिसमें एक बछड़े के टोंसिल में यक्षमा (टी० बी०) के रोगाणु जीवित अवस्था में टीके के माध्यम से डाल दिए गए। परन्तु फिर भी उसे टी० बी० नहीं हुआ। लेकिन जब वही कीटाणु एक अन्य बछड़े के फेफड़ों में डाले गए तो वे वहां से चल कर उसके टोंसिल में पहुँच गए। शिशु रोग विशेषज्ञों के एक समूह ने छोटी आयु के बच्चों पर एक प्रयोग किया था जिसमें डिप्थीरिया के कीटाणु बच्चों के टोंसिलों में डाल दिए गए लेकिन किसी भी बच्चे को डिप्थीरिया नहीं हुआ। इन प्रयोगों से इस बात का अंतिम प्रमाण मिलता है कि ये ग्रन्थियां रोग को फैलाने के लिए जिम्मेदार नहीं हैं।

प्रकृति ने हमारी सुरक्षा के लिए ही ये ग्रन्थियां बनाई हैं। तो फिर क्या कारण है कि हम इन महत्वपूर्ण अंगों को किसी सर्जन के हवाले कर दें और होम्योपैथी की शरण न लें जिसमें इस रोग का निश्चित इलाज है? कोई भी उचित कारण नहीं है—हां, दो विशेष अवस्थाओं में कोई और प्रक्रिया अपनानी पड़ती है। पहली वह है जब टोंसिल की सूजन के कारण बच्चे के शरीर का विकास होने में रुकावट आ रही हो और दूसरी अवस्था वह है जब बार-बार यह रोग होने पर इलाज के बावजूद बच्चा ठीक न हो। इन दोनों

होम्योपैथी से टांसिल की सूजन का इलाज



निष्कर्ष

* ६५४ रोगियों में से २८९ बाद में नहीं आए
* ३६५ बाद में फिर आए और उन में से २४९ को औषधियों से विशेष लाभ हुआ और उन्हें फिर टाँसिल में सूजन नहीं हुई इन्हें आपरेशन नहीं कराना पड़ा।
* जिनका रोग कम हुआ लेकिन दवाइयों के बाद भी टाँसिल बढ़े रहे उनकी संख्या 80 थी। यह सोचा गया कि अधिक इलाज से लाभ न हो तो आपरेशन कराने पर विचार किया जा सकता है
* केवल ३६ ऐसे मामले थे जिन्हे औषधियों से लाभ नहीं हुआ और आपरेशन कराने की सलाह दी गयी इस प्रकार ६९ प्रतिशत रोगी थे जिन्हें आपरेशन कराना था लेकिन होम्योपैथी से उनका इलाज हो गया

दशाओं में टोंसिल का आपरेशन करवाना सबसे अधिक व्यावहारिक हल है ।

होम्योपैथी में इस रोग के लिए निम्न लिखित दवाइयां दी जाती हैं : **एकोनाइट** (जब रोग ठण्डी हवा लगने से प्रारम्भ हुआ हो।) **बेलाडोना** (प्रारंभ में जब टोंसिल लाल रंग के हों और गले में पीड़ा तथा गर्मी का अनुभव होता हो) ; **हेपार सल्फ** (जब पीप पड़ गई हो; निगलने में कठिनाई होती हो; ऐसा लगे कि गले में कोई कांटा सा अटका हुआ है; यह औषधि गले की जलन के लिए भी अच्छी है और उस दशा में भी जब टांसिल के ठीक बाहर कोई फोड़ा हो गया हो) ; **इग्नोशिया** (जब यह रोग तनाव और चिन्ता के कारण प्रारम्भ हुआ हो) ; **मर्क सोल** (जब गले की ग्रन्थियां सूजी हुई हों, टांसिल गहरे लाल रंग के हों, मुंह से दुर्गंध आती हो, जीभ पर मैल जमी हो और उसके चारों ओर दांतों के निशान पड़ जाते हों) ।

यदि किसी बच्चे के शरीर में यक्षमा का थोड़ा बहुत प्रभाव है तो उसे बार-बार टोंसिल की सूजन का रोग होने की आशंका रहती है। ऐसे रोगियों को **बैसीलीनम** या **टय़ूबरक्यूलीनम** देने से लाभ होता है। यदि रोगी के चमड़ी के रोग दबा दिए गए हों तो **सल्फ़र** देने से वह रोग बाहर आ जाएगा और टांसिल की सूजनकी आशंका कम हो जाएगी। जिन बच्चों को बार-बार टीके लगे हों उन्हें **थूजा** की आवश्यकता पड़ती है।

यक्षमा

एक बार एक सम्भ्रान्त महिला ने कष्टभरे स्वर में यह प्रश्न पूछा था : "लेकिन डाक्टर मेरे बच्चे को यक्षमा कैसे हो सकता है ? मैं उसे बढ़िया से बढिया खाना खिलाती हूं और उसकी भली भांति देखभाल करती हूं।' लेकिन स्पष्ट है कि इतना ही काफी नहीं है।

यक्षमा अत्यधिक संक्रमणशील रोग है और किसी को भी हो सकता है। हमारे देश में यक्षमा के लगभग ९० लाख रोगी हैं जिनमें से लगभग बीस लाख ऐसे हैं जो इस रोग को औरों तक पहुँचा सकते हैं। लगभग एक लाख व्यक्ति हर साल इस रोग से मरते हैं। हम चाहें तो यक्षमा को ही अपने राष्ट्रीय रोग की संज्ञा दे सकते हैं।

होम्योपैथ यह विश्वास रखते हैं कि यह रोग पुश्तैनी होता है। चाहे आपके चारों ओर यक्षमा के रोगी हों, यह आपको तब तक नहीं होगा जब तक आपने अपने माता-पिता से इससे बचे रहने की क्षमता न पाई हो! होम्योपैथी के दृष्टिकोण से यक्षमा का रोगी लम्बा, दुबला पतला होता है। उसकी आंखों की पलकें लम्बी-लम्बी होती हैं और गर्दन की ग्रन्थियां बढ़ी हुई। उसे खांसी जुकाम अनायास ही हो जाता है। वैसे वह मेधावी, चुस्त और प्रत्युत्पन्नमति होता है।

इस रोग का सबसे बड़ा लक्षण यह है कि लगातार खांसी आती रहे जो सामान्य इलाज से ठीक न हो। अन्य लक्षण हैं: भूख का न होना, लगातार वजन घटते जाना, संध्या के समय हल्का बुखार और कभी-कभी खांसते समय बलग़म के साथ खून आना। यह रोग मुख्य रूप से किसी रोगी के थूक और दूध के माध्यम से फैलता है। यदि मांस में रोग के कीटाणु हों तो उसके माध्यम से भी रोग लग जाता है। अनुमान लगाया गया है कि जिस व्यक्ति को साधारण तीव्रता वाला यक्षमा हो, वह प्रत्येक बार थूकते हुए चार अरब कीटाणु बाहर फेंकता है। सामान्यतया लोग यह समझते हैं कि यक्षमा का प्रकोप फेफड़ों पर ही होता है। लेकिन सच तो यह है कि यह शरीर के किसी भी अंग में हो सकता है—सामान्यतया यह मस्तिष्क की झिल्ली हड्डियों और अंतड़ियों में होता है।

इस रोग का मुकाबला करने के लिए दो बातें आवश्यक हैं: एक तो स्वच्छ वातावरण और अच्छा खाना और स्वस्थ ढंग से जीवन

बिताना। कई वर्ष तक बच्चों को अपने जीवन के पहले दस दिनों में ही बी० सी० जी० के टीके लगाए जाते रहे। एक होम्योपैथ बर्नेट ने अपने ग्रन्थ **वैक्सीनियोसिस** में बी० सी० जी० के टीके की घोर निंदा की है। विश्व स्वास्थ्य संगठन की एक रिपोर्ट में हाल ही में कहा गया है कि बी०सी०जी के टीके से इस रोग को नहीं रोका जा सकता। इसका मतलब यह है कि वर्षों तक इसे अनावश्यक टीके पर अपार धन राशि का अपव्यय हुआ। केवल भारत में बाईस करोड़ से अधिक लोगों को बी०सी०जी० के टीके लगाए गए और संसार भर में ऐसे लोगों की संख्या कितनी थी यह तो ईश्वर ही जाने। इस टीके की बजाय होम्योपैथी में सीधी-सादी तीन दवाइयां हैं—**ट्यूब ऐविन, ट्यूब बोव** और **ट्यूब काच**। इनके माध्यम से इस रोग का हल्का सा प्रभाव शरीर पर डाल दिया जाता है और प्रकृति उससे लड़ने की क्षमता पैदा कर देती है।

इसके लिए जो दवाइयां दी जाती हैं वे निम्नलिखित हैं : **अकालीफा इंडिका** (प्रचण्ड खांसी जिसमें थूक के साथ लहू मिला हो; जागने पर कमजोरी का अनुभव होता हो); **बालसम पेरु** (पस के धागे जैसे निकलते हों); **कोडीन** (सूखी लगातार होने वाली खांसी रात को अधिक तंग करती है); **ड्रॉसिरा** (गले में रोग हो : खांसी प्रारंभ में, जो बिस्तर पर लेटते ही अधिक हो जाती है); **गालिकम एसिड** (फेफड़ों से रक्त स्राव होने की दशा में लाभकारी है); **फ़ास्फ़ोरस** (यक्षमा के व्यक्तित्व के लिए, ऐसे व्यक्तियों को दी जानी चाहिए जिन्हें बहुत शीघ्र जुकाम हो जाता हो); **सिलीशिया** (जब पस आदि निकलती हो तो रोगी की जीवन शक्ति को सुदृढ़ करने के लिए); **सिल्फियन साइ** (खांसी जिसके साथ रातको पसीना आता हो और कमजोरी का अनुभव होता हो); **ट्यूबरक्यूलीनम** (यह मध्यवर्ती औषधि है और इसका प्रयोग सावधानीपूर्वक करना चाहिए, क्योंकि इससे रोग बढ़ सकता है।)

कुक्कर खांसी

दो साल से कम आयु के किसी भी बच्चे को यह रोग हो सकता है। इसमें खांसी के दौरे पड़ते हैं। यह ठण्डे जलवायु में अधिक होता है और पांच से दस वर्ष तक की आयु में भी हो जाता है। उससे बड़ी आयु के लोगों में यह रोग कम ही होता है। कई बार यह रोग खसरा निकलने के बाद होता है।

इसके लक्षण हैं—बुखार, खांसी का दौरा जो रात के समय अधिक भीषण होता है। कई बार खांसी के बाद उल्टी हो जाती है। ठण्डी हवा लगने या भोजन करने से इस रोग की तीव्रता बढ़ सकती है। जब खांसी का दौरा अधिक देर तक रहे तो मुंह लाल हो जाता है, आंखें बाहर निकलने को होती हैं और उनसे पानी बहता है। खांसी के साथ गाढ़ी, पारदर्शी बलग़म निकलती है। इस रोग की अवधि सामान्यतया तीन से चार सप्ताह तक की है, परन्तु यदि रोग बिगड़ जाए और श्वास नली सूज जाए या उसके साथ साथ निमोनिया हो जाए तो कुछ पता नहीं कि यह कितने समय तक चलेगा।

इसके लिए निम्नलिखित होम्योपैथिक दवाइयां दी जाती हैं : **एंटिम टार्ट** (खांसी के साथ बलग़म के खड़कने की आवाज़ आती हो लेकिन बलग़म निकले नहीं; रोगी बेचैन रहता है और उसे सांस लेने के लिए उठ कर बैठना पड़ता है; खाने के बाद खांसी प्रारंभ हो जाती है परन्तु दाईं करवट लेटने से आराम मिलता है); **बैलाडोना** (प्रारंभिक अवस्था में जब खांसते खांसते मुंह लाल हो जाता हो); **क्यूप्रम मेट** (जब खांसी के दौरे के साथ-साथ शरीर म एठन होती हो और रात के तीन बजे रोग बढ़ जाता हो; जब ठण्डा पानी पीने से खांसी को आराम मिलता हो; **ड्रॉसेरा** (बार-बार खांसी के दौरे पड़ते हों; पीली बलग़म निकलती हो; बिस्तर पर लेटते ही खांसी का दौरा प्रारंभ हो जाता हो); **फ़ास्फ़ोरस** (उन मामलों में जब

छाती में भी कोई रोग हो गया हो); **स्पोंजिया** (सूखी कुत्ते जैसी खांसी, जो आधी रात के बाद बढ़ जाए; ऐसा लगे कि गले में कोई चीज अटकी हुई है; गर्म पानी आदि पीने से खांसी कम होती हो, ठण्डी हवा से बढ़ती हो या सिर नीचा करके लेटने से बढ़ती हो); **स्टिक्टा** (सूखी खाँसी जो साँस लेने से बढ़ती हो; प्रातः खांसी आती हो) ।

पेट में कीड़े

यह अवस्था बहुधा पाई जाती है और इसके लक्षण इतने विभिन्न हैं कि सबसे पहले डाक्टर जिस बात का पता लगाता है वह यह है कि कहीं रोगी के पेट में कीड़े तो नहीं । ६ महीने से ५ वर्ष तक आयु के के चालीस से सत्तर प्रतिशत बच्चों को यह रोग हो जाता है । उनकी भूख जाती रहती है, चिड़चड़े हो जाते हैं, पेट दर्द की शिकायत करते हैं और उनका वजन घटता जाता हैं ।

पेट में पाये जाने वाले कीड़ों में सबसे अधिक संख्या केंचुआ या गोल कृमि की है । इसका पता सबसे पहले तब चलता है जब एकाध कीड़ा बच्चे की उल्टी में दिखाई पड़ जाता है ।

पुराने रोगियों में विटामिन 'ए' का अभाव हो सकता है। लेकिन केंचुए के कारण कई दुष्प्रभाव पड़ते हैं छपाकी हो जाती है; जब ये कीड़े पित्तवाहिनी नली को रोक दें तो पीलिया हो जाता है ।' कब्ज हो जाती है; पेट फूल जाता है, उसमें बहुत अधिक पीड़ा होती है और साथ में उल्टी भी आती है । यदि कीड़े मारने वाली औषधि **सैंटोनिन** या **चैनोपोडियम का तेल** दे दिया जाए, तो उससे पेट में जलन पैदा होती है और अंतड़ी के छिद्रों के रुक जाने का डर रहता है । मुझे एक ऐसे रोगी का पता है जिसकी अंतड़ी में रुकावट पैदा हो गई थी और आपरेशन करना पड़ा था । डाक्टरोंने देखा कि सैंकड़ों केंचुए उसकी अंतड़ियों में लिपटे पड़े थे ।

होम्योपैथी में केंचुओं को निकालने के लिए **शिलौन टिंक्चर** की दस-दस बूंद आधे कप पानी में दिन में तीन बार दी जाती हैं। **सबाडिला** देने से खांसी जैसे अनायास होने वाले लक्षण दूर हो जाते हैं; **स्पाइजोलिया** तब देनी चाहिए तब नाभि के आसपास जोर का दर्द हो; यदि इस औषधि के टिंक्चर की कुछ बूदें रूमाल पर छिड़क कर रोगी को सूंघा जाए तो कीड़ों के कारण होने वाली एठन से छुटकारा मिल जाता है। इस रोग के लिए **स्टांटम मेट** नाम की दवाई भी लाभकारी है जो रांगा से तैयार की जाती है। इससे कीड़े निष्क्रिय हो जाते हैं और कोई हानि नहीं पहुँचा सके। उसके बाद यदि रोगी को जुलाब दे दिया जाए तो उससे भी कीड़े निकल जाते हैं।

आंकड़ा कीड़ा — हमारे देश में पाण्डु रोग (रक्त की कमी) एक सामान्य रोग है। यह कीड़ा सामान्यतया पांच वर्ष या अधिक आयु के बच्चों में पाया जाता है। रोगी जल्दी थक जाता है। उसका चेहरा पीला होता है, उसमें दुर्बलता आ जाती है और भूख समाप्त हो जाती है। होम्योपैथी में **चेनोपोडियम** के तेल से बनाई गई औषधि इस कीड़े को निकालने के काम में लाई जाती है। फिजी के एक डाक्टर ने पचास हजार से अधिक रोगियों को इस रोग से मुक्ति दिलाने के लिए **थाइमोल** और **कार्बन टैट्राक्लोराइड** का सहारा लिया। एक ही खुराव के से ९९ प्रतिशत कीड़े निकल गए।

सूत्र कृमि या सफेद कीड़े सफेद रंग के धागे जैसे कीड़े होते हैं जो मल में या गुदा के आसपास रेंगते दिखाई देते हैं। रात्रि के समय रोगी अपनी गुदा को खुजाता रहता है। छोटी आयु की लड़कियों में ये कीड़े रेंगते हुए योनी के अन्दर पहुँच जाते हैं जिसके कारण खुजली होती है और कई बार अनायास पेशाब निकल जाता है। इनसे बचने के लिए सबसे आवश्यक तो शरीर को स्वच्छ रखना है। हाथों के

नाखून कभी बढ़ने नहीं देने चाहिए जिससे कि इन कीड़ों के अण्डे मुंह में न पहुंच जाएँ।

होम्योपैथी में इस रोग के लिए निम्नलिखित दवाइयां दी जाती हैं : **कैलौडियम** (छोटी आयु की लड़कियों में योनी में खुजली जो वहाँ पर पहुँचे इन कीड़ों ने उत्पन्न की होती है); **सिना** (पीले चेहरे वाले जिनकी आंखों के नीचे काले धब्बे पड़े हों, जो रात के समय दांत किटकिटाते हों, जिनके शरीर में ऐंठन आती हो, जो हर समय नाक में उंगली दिए रहते हों और सोते सोते चौंक उठते हों); **टयूक्रियम** का ट्रिंक्चर या कम पोटेंसी में देने से लाभ होता है (विशेषकर जहां गुदा में खुजली होती हो)।

टेप वर्म--टेप वर्म फीते जैसा होता है और उसका इलाज **कुप्रम आक्सीडेटम निग्रम**--१० एक्स है। जब इस रोग में कब्ज भी हो तो **फिलिक्स** नाम के पेड़ से तैयार की गई औषधि दी जाती है। इसी जाति के एक और पेड़ से तैयार की गई औषधि **अलहा मेंटिकम** निहार मुंह दूध के गिलास के साथ दी जाती है। अन्य औषधियां हैं--**ग्रानाटम** जो अनार से तैयार की जाती है। उसके साथ ही इसी फल से तैयार की गई दवा **पेलेटियरीन**--३० दी जाती है; **कुसो** का आधा औंस पानी में मिला कर देने से भी कीड़े मर जाते हैं। **मैलाटम** की ३० से ६० बूदें तक दालचीनी के पानी में मिलाकर देने से कीड़े निकल जाते हैं।

* * * *

थोड़ी किस्मत और थोड़ी होम्योपैथी से प्रारम्भ के ये वर्ष सुखशांति से बीत जाते हैं। अब आपका बच्चा, बच्चा नहीं रहा बल्कि किशोर अवस्था को पहुँचने वाला है। जब वह समाज में एक व्यक्ति के रूप में गिना जाएगा। यह तो बहुत अच्छी बात है परन्तु उसकी भी कुछ समस्याएँ हैं। पुरानी समस्याओं का समाधान हो चुका जिनसे बचा नहीं जा सकता था और अब नई समस्याएं सामने हैं। इनसे भी बचना सम्भव नहीं है। कठिनाई के कुछ वर्ष आने वाले हैं।

अध्याय ३

कठिनाई के वर्ष

लगभग बारह वर्ष की आयु से आपका बच्चा बढ़ने लगता है। बचपन के दिन अब समाप्त हुए, जब इतनी अधिक समस्याओं का सामना करना पड़ता था—छूत से लगने वाली बीमारियां और छोटी-मोटी तकलीफें हुआ करती थी और आपको उन रोगों के लक्षणों के प्रति चौकस रहना पड़ता था। आप समझते हैं कि आपकी सारी समस्याएँ दूर हो गईं परन्तु अपने बेटे या बिटिया से पूछिए। उनकी समस्याएँ तो अब आरंभ ही हो रही हैं।

जब यौवन आरंभ होता है तो शरीर में बहुत से नए परिवर्तन आते हैं। लड़के लड़कियां इस बात से अधिक चिंतित होते हैं कि वे कैसे लगते हैं। उन्हें अपनी त्वचा का बहुत ध्यान रहता है और चेहरे पर छोटा-सा धब्बा या चिकत्ता पड़ जाए या कोई फुंसी ही हो जाए तो वह चिंता में डूब जाते हैं। लड़की रात को सोते समय अपने चेहरे पर नाना प्रकार की क्रीमें लगाती है और लड़का सबसे छिप कर कील मुहासे दूर करने की दवाई लगाता है, जिसका रंग चमड़ी जैसा हो ताकि उसके चेहरे पर निकले हुए कील मुहासे छिप जाएँ।

कुछ और समस्याएँ भी होती हैं जिनमें से कुछ का सम्बन्ध मस्तिष्क से होता है। अचानक ही उनकी भावनाओं और भावनात्मक आवश्यकताओं का क्षेत्र बढ़ जाता है। किशोरावस्था में व्यक्ति अपने को अपने परिवेश के अनुकूल ढालने में जुट जाता है। उसे कोई भी चीज ठीक नहीं लगती; लगता है कि उसके घर वाले सभी उस पर

रोब डाल रहे हैं और चूंकि उसके मित्रों के सामने भी वैसी ही समस्याएँ हैं, उसे लगता है कि कोई भी उससे सहानुभूति नहीं रखता। वह पहले की अपेक्षा अधिक समय तक घर से बाहर जाना चाहता है, बाहर खाना खाना चाहता हैं और सिगरेट बीड़ी, थोड़ी सी बियर और ऐश्वर्य के अन्य साज-सामान की इच्छा करने लगता है।

यह बात तो निर्विवाद है कि इन समस्याओं का उपचार आवश्यक है। चमड़ी के रोग और किशोरावस्था तथा यौवन के आरंभ की और बहुतसी समस्याएँ जीवन के एक नए मोड़ की परिचायक हैं। उनसे पता चलता है कि किशोर के शरीर में बहुत से परिवर्तन हो रहे हैं। इस कठिनाई भरी आयु के लिए होम्योपैथी में बहुत से उपचार हैं। हम बारी-बारी से उनका उल्लेख करेंगे।

एपेंडिसाइटिस

जिस युवती या स्त्री के पेट के दाईं ओर नीचे को अपेंडिक्स (उंडूक) के आपरेशन का निशान है, क्या वह कभी यह नहीं सोचती कि काश यह आपरेशन न कराना पड़ता ? और इतना भद्दा निशान उसके पेट पर न होता ? अपेंडिक्स की सूजन बहुत से व्यक्तियों को हो जाती है और यह रोग इतनी तेजी से होता है कि तुरन्त आपरेशन कराना अनिवार्य हो जाता है।

अपेंडीसाइटिस का रोग सामान्यतया कम आयु के व्यक्तियों को होता है। इस रोग के कीटाणु सामान्यतया दांतों, टोंसिल या नाक और गले में होते हैं और वहां से अंतड़ी में पहुँच कर सूजन पैदा करते हैं।

अपेंड़िक्स दाईं ओर पेट के निचले भाग में होता है और जब उसमें सूजन आ जाती है तो दाईं ओर बड़े जोर का दर्द होता है। पेट को हाथ लगाने से दर्द होता है और कई बार पीड़ा इतनी अचानक प्रारंभ होती है कि रोगी को उल्टी आ जाती है और वह कई बार

बेहोश भी हो जाता है। जब यह रोग प्रचण्ड होता है तो उसके साथ १०२ डिग्री तक बुखार भी आ जाता है। बुखार के साथ जी भी मिचलाता रहता है। कभी कभी उल्टी हो जाती है और कब्ज भी होती है।

अपेंडिक्स का पहला आक्रमण अपने आप समाप्त भी हो जाता है। दूसरे या तीसरे दिन इसके लक्षण क्षीण पड़ जाते हैं और एक सप्ताह में ही रोगी ठीक हो जाता है। लेकिन ये दौरे फिर पड़ते हैं और पहले की अपेक्षा अधिक तीव्र होते हैं। यदि इस रोग का इलाज समय रहते न किया जाए तो यह पुराना पड़ जाता है और समय समय पर इसके लक्षण दिखाई देने लगते हैं।

यदि इसका इलाज न किया जाए तो अपेंडिक्स फट सकता है और उसके परिणामस्वरूप मृत्यु भी हो सकती है। इसमें निम्नलिखित होम्योपैथिक औषधियां गुणकारी होती हैं : **बैलाडोना** (जब पीड़ा दबाने, खांसने, छींकने या हाथ लगाने से बढ़ जाए); **कोलोसिन्थ** (पेट में तीव्र पीड़ा जो झुकने से अच्छी हो जाती है;) **डायोस्कोरिया** (तीव्र पीड़ा, जो एक भाग से दूसरे भाग तक पहुँचती है और जिसे पीछे की ओर मोड़ने से लाभ होता है); **आयरिस टैनेक्स** (६ की पोटेंसी में इस रोग की विशिष्ट दवा है; यह तब दी जाती है, जब पेटमें दर्द हो और मुंह सूखा हुआ हो;) **मैग फास** (ऐसी पीड़ा जिसके कारण, रोगी दोहरा हो जाता है और जिसे गर्मी पहुँचाने से आराम मिलता है) **नक्स वॉमिका** (सारे पेट में चोट जैसा दर्द; पेट में वायु के साथ दर्द की टीस उठती है; कब्ज जिसमें रोगी सदा मल त्याग करना चाहता है लेकिन कर नहीं पाता); **पलसोटिला** (पेट पर ऐसा बोझ मानो किसी ने उस पर पत्थर रख दिया हो; संध्या के समय दर्द भी होता है और ठण्ड भी लगती है; प्यास बिल्कुल नहीं होती; **वैराट्रम अल्ब** (ऐसा लगता है जैसे पेट बिल्कुल खाली हो और बैठा जा रहा हो; मिचली आती है और कभी उल्टी भी हो जाती है जो कुछ

पीने या चलने-फिरने से और बढ़ जाती है; उल्टी करने के बाद रोगी अत्यधिक थकावट महसूस करता है।)

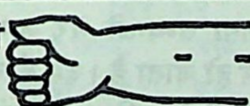
दमा

किशोरावस्था में शायद कोई भी और रोग इतने दबे पांव नहीं आता, जितना कि दमा। यह न केवल बेचैनी पैदा करता है बल्कि जल्दी ठीक भी नहीं होता। वास्तव में सांस की सभी तकलीफों के लिए इसी शब्द का प्रयोग किया जाता है। परन्तु इन सभी तकलीफों में एक बात सांझी होती है और वह यह कि रोगी को जब दौरा पड़ता है तो वह सांस लेने के लिए छटपटाता है। किशोरावस्था ही वह समय है जब इस रोग से ऐसा लगता है कि यह बचपन में एलर्जी से उत्पन्न श्वास नली की सूजन का अंतिम परिणाम है। मानसिक संघर्षों और असुरक्षा की भावना के कारण यह समस्या और भी विकट हो जाती है।

सामान्यतया इस रोग का दौरा जुकाम या खांसी से प्रारंभ होता है जिसे गलत इलाज से दबा दिया गया हो और जो लगातार चलती रहे। अधिकतर रोगियों को यह दौरा—चाहे उनकी आयु कुछ भी हो—रात को प्रारंभ होता है। रोगी सोते सोते उठ बैठता है क्योंकि उसे सांस लेने में कठिनाई होती है और वह खांसता तो है, लेकिन बलग़म या कफ़ को बाहर नहीं निकालता। वह उठ कर बैठ जाता है बड़ी कठिनाई से सांस लेता है। सांस बाहर तो निकलती है लेकिन जब वह हवा अन्दर ले जाना चाहता है तो उसे कठिनाई का अनुभव होता है। फेफड़ों में हवा ले जाने वाली सभी मांस पेशियों का इस्तेमाल करने के बाद भी सांस लेना दूभर होता है। रोगी का चेहरा पीला पड़ जाता है और सम्भव है कि नीला भी पड़ जाए।

कुछ समय के बाद दौरे का प्रभाव समाप्त होने लगता है बच्चे को यह रोग हो तो उसे उल्टी आने के बाद तनिक आराम मिलता

रोग उत्पन्न करने वाले तत्व

क्रोध		कैमोमिला, नक्स वामिका
मौसम बदलना		आर्स. अल्ब; डल्कामारा
धूल में सांस लेने से		इपीकाक, कालीकार्ब; पोथोस
भावावेश से		एकोनाइट; जेल्सीमियम; इग्नाशिया
मासिक धर्म रुकने से		पल्साटिल्ला; स्पोंजिया
चमड़ी पर फोड़े फुंसी		एपिस; पल्साटिला; सल्फ़र
टीका लगने से		साइलीशिया, थूजा

चित्र ३.१

है इस दौरे की अवधि और प्रचण्डता न्यूनाधिक होती है—यह कुछ मिनट से कुछ घण्टों तक चलता है। जब दौरा अपने आप समाप्त न हो बल्कि कई दिनों तक चलता रहे और रोगी को खाना-पीना और रात में सोना दूभर हो जाए तो उसे स्टैटस अस्थैमेटिकस की संज्ञा दी जाती है।

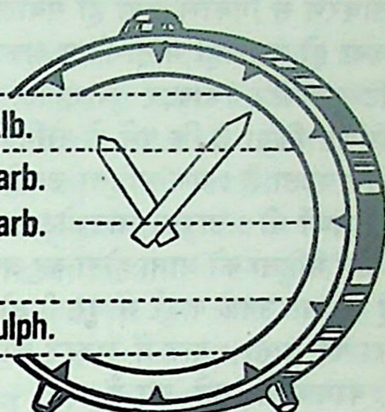
दमा को जन्म देने वाले बहुत से कारण हैं परन्तु एलर्जी, भावनात्मक समस्याएँ और रोगाणु तीन सबसे बड़े कारण हैं।

एलर्जी उत्पन्न करने वाले जिन तत्वों से दमा होता है वे हैं—धूल और मिट्टी, पराग, फफूंदी, पक्षियों के नर्म रोएँ और तेज सुगन्ध या दुर्गन्ध। कई बार दूध, अण्डे, मछली, गेहूँ और आटे की अलर्जी हो सकती है और कभी कभार यह भी देखा गया है कि किसी दवा, विशेषकर एस्प्रिन से एलर्जी हो जाती है। इसलिए यदि आप किसी नए काम पर लगे हैं और वहां आपको दमे के दौरे पड़ने लगे हैं तो इस बात का ध्यान रखिए कि दमा कुछ पेशों में खास तौर पर पाया जाता है। नानबाई और आटे की चक्कियों में काम करने वाले आटे से एलर्जी ग्रहण कर सकते हैं, छापेखानों में काम करने वाले किसी गोंद के प्रति संवेदनशील हो सकते हैं और नाई रूसी से एलर्जी ग्रहण कर सकते हैं। लेकिन, सामान्यतया, एलर्जी उत्पन्न करने वाले किसी एक तत्व को दोष नहीं दिया जा सकता।

(१) **मानसिक तनाव :** दमा साधारणतया केवल मानसिक कारणों से नहीं होता लेकिन उत्तेजना, मानसिक तनाव और कुण्ठा के परिणामस्वरूप इसके दौरे प्रारंभ हो सकते हैं। किसी की सगाई टूट जाए या उसका कोई सगा सम्बन्धी मर जाए तो उससे उत्पन्न चिन्ता के कारण दमा प्रारम्भ हो जाता है। दमे के रोगियों में लगातार चिंता करने की प्रवृत्ति पाई जाती है। यदि घर में संघर्ष और तनाव का वातावरण हो तो किशोरों को उससे बहुत मानसिक वेदना होती है

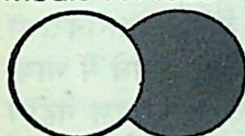
समयानुसार दौरे

Periodic Attacks



1 to 2 a.m.	Ars. Alb.
2 to 3 a.m.	Kali Carb.
3 a.m. Sharp	Kali Carb.
4 to 5 a.m.	Nat Sulph.

MOON PHASES



Every new moon or full moon — Alumina; Silcea

MENSTRUATION



Before menses	Sulphur
During menses	Kali Carb

चित्र ३.२

प्रात: 1–2 बजे आर्स. अल्ब. प्रात: 2–3 बजे काली कार्ब

ठीक प्रात: 3 बजे काली कार्ब प्रात: 4 – 5 बजे नैट्रम सल्फ्

चांद की घटबढ़ : प्रत्येक प्रथमा या पूर्णिमा अल्युमिना; साइलीशिया

मासिक धर्म : पहले सल्फ़र उन दिनों में काली कार्ब

और यह रोग प्रारम्भ हो सकता है। ऐसी दशा में उन्हें उस घर के वातावरण से निकाल लेना ही सर्वोत्तम उपचार है, जहां असुरक्षा की भावना हो या जहां माता-पिता अकारण चिन्ता करते रहते हैं। एक ब्रिटिश डाक्टर, डाक्टर चारकोट, ने एक रोगी का उदाहरण देकर प्रमाणित किया है कि दमे के रोगियों पर मानसिक तनावों का क्या प्रभाव पड़ता है। एक महिला उनके पास आई जिसे एक विशेष फूल से एलर्जी थी। डाक्टर चारकोट ने जान-बूझकर ऐसा किया कि जब भी उस महिला को आना होता वह अपनी मेज पर वही फूल रख लेते। वह महिला उनके कमरे में घुसती तो फूलों को देखते ही उसे दमे का दौरा पड़ जाता। बाद में डाक्टर चारकोट ने उसे बताया कि वे फूल तो कागज के बने हुए हैं।

यह बात विशेष रूप से याद रखनी चाहिए कि यदि बार-बार या लगातार दमा हो तो उसके परिणामस्वरूप असुरक्षा या निराशा की भावना उत्पन्न होती है। इसलिए कई रोगियों के मामले में भावनात्मक असुरक्षा इस बीमारी का परिणाम होती है, कारण नहीं।

(२) **रोग का प्रभाव:** दमा बहुधा श्वास की नली में रोगाणुओं के परिणामस्वरूप प्रारम्भ होता है और यह देखा गया है कि अस्सी प्रतिशत से अधिक मामलों में यही कारण होता है। इसलिए यह सबसे महत्वपूर्ण तत्व है, न केवल इस कारण कि इसका प्रभाव दौरे की तीव्रता और बारम्बारता पर पड़ता है, बल्कि इस कारण भी कि वृद्धावस्था और वयस्कों में इसका पता लगाने में भी कठिनाई होती है। यदि श्वास की नली में बार-बार रोगाणुओं का आक्रमण हो जिसके परिणामस्वरूप वह रोग पुराना हो जाए, तो दमा बिगड़ कर श्वास नली का पुराना रोग बन जाता है। इसका परिणाम यह होता है कि श्वास की नली में ऐसी रुकावट आ जाती है जिसे दूर

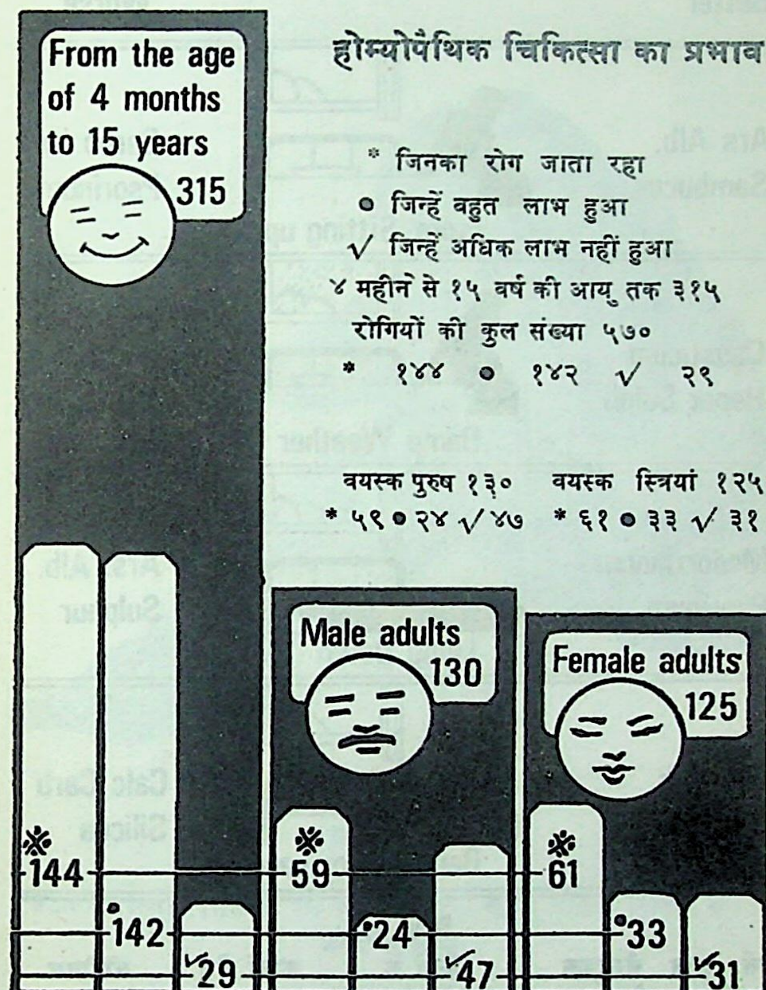
नहीं किया जा सकता और अंततो गत्वा फेफड़े या हृदय अचानक काम करना बन्द कर देते हैं।

(३) **अन्य कारण :** कई लड़कियों का दमा मासिक धर्म से पहले, उसके दिनों में या बाद में अधिक हो जाता है (देखिए चित्र ३. २) बाद में संभव है कि यह गर्भावस्था में प्रारम्भ हो जाए और या बिल्कुल ही दूर हो जाए। इससे यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि हारमोनों के प्रभाव से कुछ महिलाओं में यह रोग प्रारंभ होता है। इस बारे में कुछ पता नहीं कि वागल नाम के स्नायु की क्रिया के प्रभाव से यह रोग होता है या नहीं, लेकिन ऐसा माना जाता है कि जब शारीरिक श्रम, फूले हुए पेट या शरीर के तापमान में अचानक होने वाले परिवर्तनों के कारण इस रोग के दौरे पड़ते हैं तो उनमें इस स्नायु का भी हाथ हो सकता है। होम्योपैथी में दमे के लिए पचास से अधिक औषधियां दी जाती हैं। यदि होम्योपैथ ठीक औषधि का चुनाव कर ले तो दमा सदा के लिए दूर हो जाता है। चित्र ३.३)। इस रोग के इलाज की संभावना अन्य तत्वों पर भी निर्भर है, जैसे कि रोगी की आयु, रोग की अवधि, रोग को दबाने के लिए कहां तक दवाइयां ली गई हैं और रोग का प्रभाव शरीर के विभिन्न अंगों पर कहां तक पड़ा है। जहां दमा पुराना हो तो रोगी से उसके पुराने और नए सभी लक्षणों की पूरी-पूरी जानकारी ली जाती है और यह भी पूछा जाता है कि उसे और कौन-कौनसे रोग हुए हैं। और फिर उसके शरीर और स्वभाव के अनुकूल औषधि दे दी जाती है। इसके परिणाम-स्वरूप एलर्जी की प्रवृत्ति दूर हो जाती है और फिर से दौरा पड़ने की आशंका कम हो जाती है। इससे रोगी को बार-बार दमे और दमा उत्पन्न करने वाले रोगाणुओं का मुकाबला करने की शक्ति भी प्राप्त होती है। जब कोई रोगी प्रचण्ड रूपमें दमा का शिकार हो तो उसके लिए औषधि का चुनाव कारक तत्वों का ध्यान रखते हुए और उसके

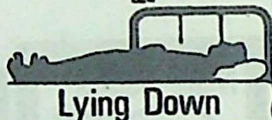
विशेष लक्षणों के अनुसार किया जाता है। चित्र ३.४ और ३.५)। औषधियां हैं : **बालसामम पैरूबियनम** (जिस दमे में रोगी आसानी से कफ निकाल सके); **ब्लाटा ओरिएंटालिस** (यह औषधि भारतीय तिलचट्टे से बनाई गई है : यह बड़ी रोचक कथा है कि एक कुंवारे रोगी को एक पुरानी केतली में बनी चाय पीते से दमे से छुटकारा मिला था। बाद में उसे पता चला कि उस केतली में तिलचट्टे थे। यदि इस औषधि की पन्द्रह बूद चौथाई प्याला पानी में डाल कर हर १५ मिनट बाद दी जाएँ तो रोग का दौरा कम हो जाता है। यदि यह दवाई लेने से रोगी को खांसी होने लगे तो ३० की पोटेंसी में कुछ खुराकें लेने से लाभ होता है।); **एरियोडिक्टियोन ३ एक्स** (इन्फ्लयू-एंजा के बाद दमा जिसमें कफ निकलने से आराम मिलता है); **ग्रिंडेलिया** (दमा जिसमें कफ कम निकलता हो और जो सो लेने के बांद अधिक बिगड़ जाए।); **सेन्सीनेला** (गुस्सा आने के बाद रोग का प्रकोप बढ़ जाए); **नेफ्थलीब** (जहां दमे के साथ-साथ पेट में ऐंठन और कीड़े हों) ; **पोथोस** (जहां मल त्याग करने से आराम मिले); **सिफलीनम** (गर्मी के मौसम का दमा); **वायोला ओडोराटा** (जब गर्भावस्था में दमा हो)।

होम्योपैथिक दवाई लेते समय मजे की बात यह है कि कुछ प्रकार के दमे में एग्ज़ीमा हो जाता है। चर्म रोगों और फेफड़े के रोगों में परस्पर गहरा सम्बन्ध है और जब इनमें से एक रोग ठीक होता है, दूसरा बढ़ जाता है। बहुधा बहुत छोटी आयु में दमे का पहला दौरा तब पड़ता है जब मरहम के प्रयोग से एग्ज़ीमा को दबा दिया गया हो। यदि बार-बार एग्ज़ीमा को दबाया जाएगा तो दमा और प्रचण्ड रूप धारण कर लेगा।

कुछ प्रकार के दमे में जब रोग कम होता है तो त्वचा पर दाने या एग्ज़ीमा निकल आता है।


From the age of 4 months to 15 years
315
होम्योपैथिक चिकित्सा का प्रभाव
* जिनका रोग जाता रहा
● जिन्हें बहुत लाभ हुआ
√ जिन्हें अधिक लाभ नहीं हुआ
४ महीने से १५ वर्ष की आयु तक ३१५
रोगियों की कुल संख्या ५७०
* १४४ ● १४२ √ २९
वयस्क पुरुष १३० वयस्क स्त्रियां १२५
* ५९ ● २४ √ ४७ * ६१ ● ३३ √ ३१
Male adults
130
Female adults
125
144
142
29
59
24
47
61
33
31

चित्र ३.३

आराम मिलता है Better		रोग बढ़ता है Worse
Ars Alb. Sambucus	 From Sitting up	Carbo Veg Psorinum
Causticum Hepar Sulph	 Damp Weather	Dulcamara Nat. Sulph
Medorrhinum Psorinum	 Lying Down	Ars. Alb. Sulphur
Ars Alb. Kali Carb.	 Bending Forward	Calc Carb Silicea

चित्र ३.४

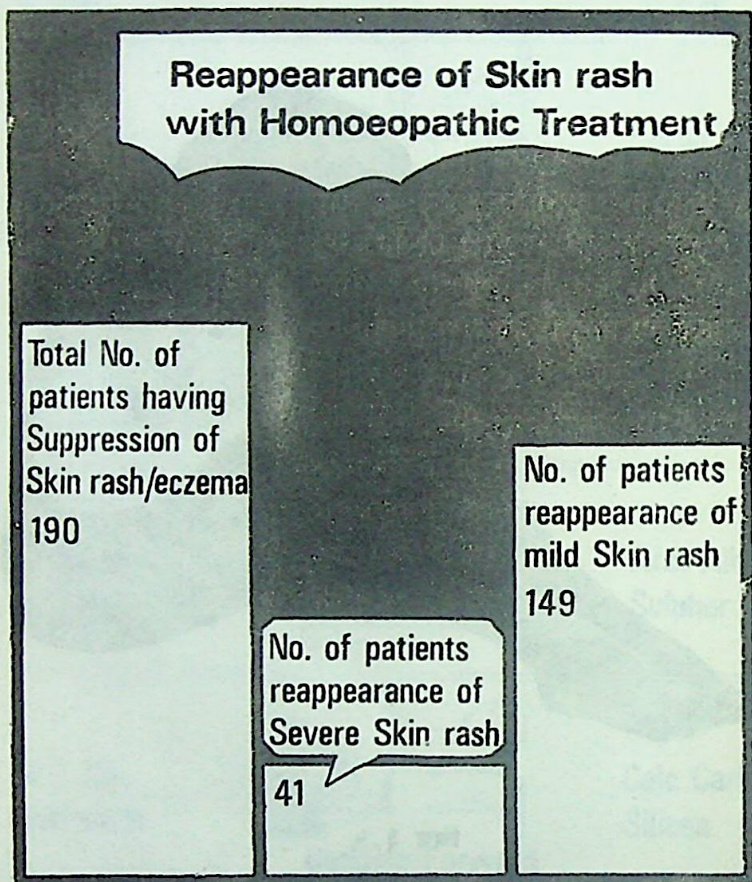
आर्स. अल्ब	सैम्बुकस	बैठने से	कार्बा वेज	सोरीनम
कास्टीकम	हैपर सल्फ़	वर्षा के मौसम में	डल्कामारा	नैट्रम सल्फ
मैंडोरीनम	सोरीनम	लेटने से	आर्स. अल्ब.	सल्फ़र
आर्स. अल्ब.	काली कार्ब	आगे को झुकने से	कल्केरिया कार्ब	साइलीशिया



चित्र ३.५

बैठने की स्थिति जिस में दमे के रोगियों को बहुधा आराम मिलता है।
अर्सेनिक अल्ब.

रोगियों की कुल संख्या ५७०



Total No. of patients 570

चित्र ३.६

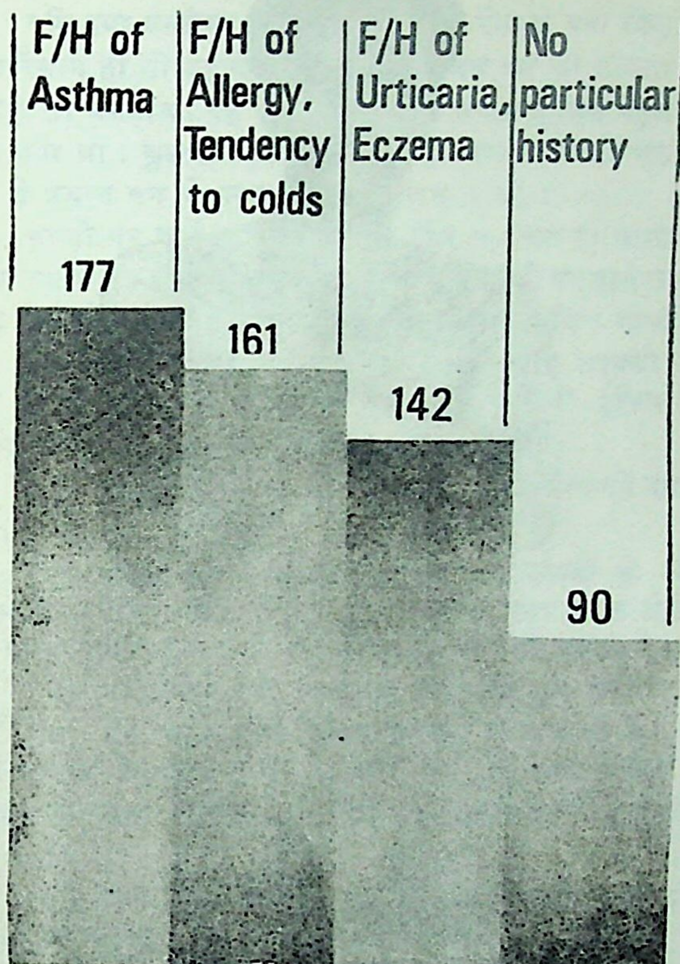
होम्योपेथिक दवाओं से चमड़ी पर दाने आदि निकलना

रोगियों की संख्या जिन के शरीर पर फुंसी या एग्ज़ीमा दबा दिया गया था 190

रोगियों की संख्या जिन की चमड़ी पर दाने आदि भयंकर रूप से निकले 41

रोगी जिनके शरीर पर हल्के से दाने भरे 149

दमा के रोगियों के पूर्वजों में दमे का इतिहास



चित्र ३.७

दमा के रोगियों की संख्या ५७०

दमे का इतिहास १७७ एलर्जी का इतिहास जुकाम की प्रवृत्ति १६१ दमा की एग्जीमा आदि का इतिहास १४२ जहां किसी रोग का इतिहास नहीं ९०



चित्र ३.८

दमा के लिए श्वास के व्यायाम–गहरा सांस लीजिए. हथेलियां छाती पर रख लीजिए और सांस छोड़ते समय उन्हें दबाइए। पसलियों के दोनों ओर और पेट पर हथेलियां रख कर यही व्यायाम दोहराइए।

यदि दमा एग्ज़ीमा या किसी अन्य चर्म रोग के दबा दिए जाने का परिणाम हो तो यह देखा जाता है कि जब दमे की तीव्रता कम होती है, तो चमड़ी का वह रोग फिर उभरने लगता है जिसे पहले दबा दिया गया था। कुछ ही ऐसे रोगी होते हैं जिनकी चमड़ी पर दाने फिर से प्रचण्ड रूप में प्रकट होते हैं (चित्र ३.६)।

चमड़ी पर दाने या एग्ज़ीमा का फिर से प्रकट हो जाना एक अच्छा लक्षण है। इसका मतलब यह है कि जब चमड़ी पर दाने उभरते हैं तो रोगी के सदा के लिए दमा से मुक्ति पाने की अधिक आशा है।

क्या करना चाहिए था और क्या नहीं : यदि आपको दमा है या आपके परिवार में किसी को दमा या अलर्जी थी (चित्र ३.७ तो निम्नलिखित बातों को ध्यान में रखिए :

(१) मरहम आदि लगाकर चमड़ी के किसी रोग को दबाइए नहीं।

(२) ऐलोपैथिक दवाइयों के प्रयोग से, अलर्जी से उत्पन्न जुकाम को दबाइए नहीं, क्योंकि एलर्जी अपना स्तर बदल लेती है और इससे उत्पन्न जुकाम के परिणामस्वरूप दमा हो सकता है।

(३) शारीरिक तथा मानसिक तनाव से दूर रहिए।

(४) सैर करने जैसा हल्का व्यायाम लाभकारी है। यदि किसी गुब्बारे या फुटबाल में हवा भरी जाए तो उससे फेफड़ों का व्यायाम हो जाता है और सांस लेने की क्षमता बढ़ती है (देखिए चित्र ३.८)।

(५) जिन तत्वों का पता हो कि उससे एलर्जी उत्पन्न होती है उनसे भी बचिए। तेज गन्धों, पराग, आइस्क्रीम, नारंगी जैसे फल और ठण्ड या वर्षा से भी बचना चाहिए क्योंकि उनसे दमा प्रारंभ हो सकता है। शाम का खाना हल्का खाइए और सोने से तीन घण्टे पहले खा लीजिए।

नाक की मुड़ी हुई हड्डी

लड़के तो लड़के ही होते हैं और कई बार वयस्क भी लड़कों जैसा ही व्यवहार करते हैं। इसका मतलब यह है कि उनमें लड़ाई-भिड़ाई और मार-पीट भी हो जाती है। कई बार नाक पर मुक्का लग जाए तो उसकी हड्डी मुड़ जाती है जिससे बहुत पीड़ा होती है। इस हड्डी के दोनों ओर नासिकाएँ हैं जिनसे आप सांस लेते हैं और यदि यह मुड़ जाए तो नासिकाएँ बंद हो सकती हैं, सिर दर्द होता है, बार-बार जुकाम होता है और भूख नहीं रहती। जहां हड्डी का मुड़ाव बहुत अधिक हो वहां रोगी का वजन भी घटने लगता है। अन्य लोगों की अपेक्षा मुक्केबाजों को यह कष्ट अधिक होता है। किशोरावस्था में लड़के वाले आपस में उलझते रहते हैं और उन्हें भी नाक तुड़वाने का खतरा मोल लेना पड़ता है। इस रोग का एक इलाज आपरेशन है लेकिन १८ वर्ष से कम आयु के और वृद्ध लोगों को आपरेशन नहीं करवाना चाहिए। सच तो यह है कि यदि नाक बड़ी भद्दी लगती हो और कष्ट बहुत अधिक हो तभी आपरेशन करवाना चाहिए।

यदि नाक की हड्डी मुड़ी हुई हो लेकिन और कोई कष्ट न हो तो कोई भी दवाई देने की आवश्यकता नहीं, अन्यथा होम्योपैथिक दवाई **कलकेरिया फ्लोर – ६ एक्स : सिफ़लीनियम** (जहां उपदंश हो); और ट्यूबरक्यूलीनम (जहां यक्षमा हो)।

आंख के रोग

कई बच्चों को किशोरावस्था में चश्मा लगवाने की आवश्यकता पड़ती है। यह ठीक है कि उनकी नज़र पहले से कमज़ोर थी, लेकिन सिनेमा देखने और रात को देर तक पढ़ने से आंखों के रोग और उनके दोष जल्दी प्रकट हो जाते हैं। ऐसी अवस्था में आंखों की परीक्षा कराई जाती है और चश्मा लगवाना अनिवार्य हो जाता है।

आइए, इस बात पर विचार करें कि आंखों के मामले में होम्योपैथी कहां तक सहायक हो सकती है।

देर रात तक जागना कई बार अनिवार्य हो जाता है, क्योंकि समय कम होता है और काम अधिक। आंखों के नीचे काले धब्बे भी पड़ जाते हैं लेकिन ऐसा होना भी अनिवार्य ही है। इस बात में सन्देह नहीं कि देर रात तक जागने से ही यह कष्ट होता है। जहां यह रोग रति क्रिया की अति से हो वहां ऐसिड फास बहुत लाभदायक होती है। यह उन लड़कियों के लिए भी लाभदायक है जिनका मासिक धर्म अनियमित और पाचन शक्ति कमज़ोर हो। जिन व्यक्तियों को रक्त की कमी का रोग हो, चेहरा पीला और आंखें खोखली सी हों उनके लिए साइक्लामेन और सिनकोना अच्छी औषधियां हैं।

यदि नजर कमजोर हो तो यह कोई बड़ी बात नहीं, लेकिन ठीक ढंग से आंखों का व्यायाम करके (देखिए चित्र ३.९) उन्हें साफ रख कर और होम्योपैथिक दवाइयां खाकर यह रोग दूर किया जा सकता है और चश्मा उतर सकता है। नजर की कमजोरी या तो पुश्तैनी होती है और या धुंधले प्रकाश में पढ़ने से होती है। यह रोग उन व्यक्तियों में बहुधा पाया जाता है जो सदा पढ़ते रहते हैं और कभी अपनी आंखों को आराम नहीं करने देते। आंखों पर आवश्यकता से अधिक बोझ डालना ही नजर की कमजोरी का कारण है और आज के युवकों में सबसे अधिक इसी कारण चश्मा पहनने वाले मिलेंगे।

इस रोग के इलाज में ६ महीने से दो वर्ष तक का समय लग सकता है। रोगी के स्वभाव और शरीर के अनुरूप औषधियां देकर ऐनक का नम्बर कम किया जा सकता है।

कई किशोरों को आंखों पर गुंहाजनियां हो जाती हैं। गुहांजनी जौ के दाने जैसी गांठसी है जो आंख पर हो जाती है। इसमें सामान्य-

तया पीड़ा भी होती है। यह छोटीसी सूजन के रूप में प्रारंभ होती है। बढ़ने पर इसमें पीव पड़ जाती है और उसके बाद यह फूट जाती है। गुहांजनियों का कारण शरीर क्रियाओं का बिगड़ना है। कई वार कब्ज और चश्मा न लगवाने से भी गुहांजनियां होने लगती हैं।

होम्योपैथी में गुहांजनी के लिए निम्नलिखित औषधियां दी जाती हैं : **कलकेरिया पिक** (यह विशेष रूप से उन फुन्सियों के लिए है जो मांसपेशियों के ऊपर पतली झिल्ली पर होती हैं और या त्वचा के जोड़ों पर। कम शक्ति या पोटेंसी में यह दवा दी जाए तो गुहांजनी में विशेष लाभ होता है); **जगलांस रीजिया** (गुहांजनी के लिए कम शक्ति में देनी चाहिए।; **पलसाटिला** (गुहांजनियों के लिए रामबाण औषधि है और तुनकमिजाज और संवेदनशील व्यक्तियों को इससे विशेष लाभ होता है) **स्टाफिसाग्रिया** (कम आयु के लड़कों को जिन्हें बार बार गुहांजनी निकलती हो, यह औषधि बहुत माफिक आती है)।

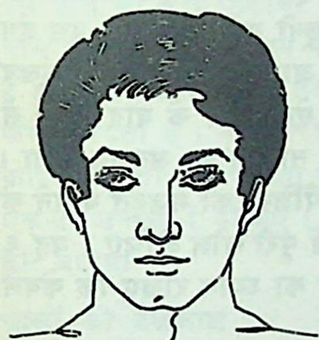
जब गुहांजनियां बार-बार निकलती हों तो आंख की पलकों की ग्रन्थियां जिन्हें चैलाज़िओन कहते हैं, सूज जाती हैं। ये ग्रन्थियां पलकों के अन्दर कठोर रूप धारण कर लेती हैं। सर्जन आपरेशन करके इन्हें निकाल देते हैं, परन्तु होम्योपैथी में इस रोग का बड़ा अच्छा इलाज है। **फ़ैरस पाइरो फ़ॉस** और **प्लाटानस आक्सीडेंटालिस** नाम की औषधियां रसोलियों के लिए बड़ी अच्छी औषधियां हैं, क्योंकि उन्हें बिना आपरेशन दूर कर देती हैं। **प्लाटानस आक्सीडेंटालिस** का टिंक्चर गुंहांजनियों पर लगाया भी जा सकता है। इससे तीव्र और पुराने रोगों में लाभ होता है जहां झिल्ली नष्ट हो गई हो। **स्टाफीसाग्रिया** उन लड़कों के लिए लाभकारी है जो किशोरावस्था में कुटेव करने लगे हैं। **थूजा** ग्रन्थियों की एक दवाई है और जब अन्य लक्षण भी हों तो रोगी के स्वभाव और उसकी शरीर रचना के अनुसार दी जाती है।



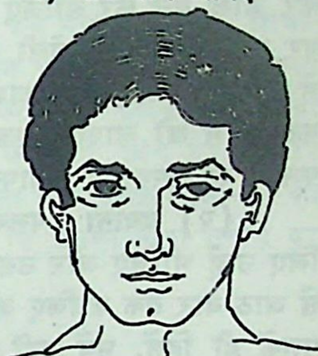
१) हथेलियां रखिए



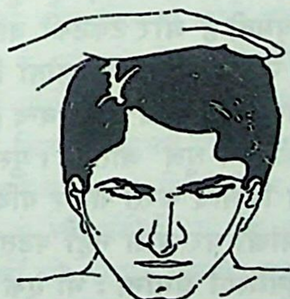
२) आंखें मींच लीजिए



३) झपकाइए



४) पुतलियां घुमाइए



५) खोपड़ी की मालिश

चित्र ३.९

यदि आंखों को स्वच्छ रखा जाए, तो उनम होने वाली बहुत सी बीमारियों को रोका जा सकता है। आंखों के व्यायाम के माध्यम से बहुत लाभ होता है, क्योंकि उससे न केवल दृष्टि सुधरती है बल्कि कोई रोग नहीं होने पाता। आंखों के कुछ व्यायाम नीचे दिए जा रहे हैं :

(१) **हथेलियां रखना :** यदि पढ़ने के बाद आपको ऐसा लगे कि आपकी आंखों पर दबाव पड़ा है तो मेज पर अपनी कुहनियां रख कर आंखें बन्द कर लीजिए और अपनी हथेलियों से हथेलियां आंखों पर रख लीजिए। हथेली पलकों से छूनी नहीं चाहिए। इस ढंग से हथेलियां रखिए कि प्रकाश बिल्कुल न आने पाए और किसी सुखद कल्पना में खो जाइए। कुछ क्षण तक ऐसे रहने के बाद तेजी से पलकों को झपकाइए। आपकी आंखों में ताजगी का अनुभव होगा।

(२) **दबाना :** पलकों की मांस पैशियों को मजबूत बनाने के लिए उन्हें भींचिए और उसके बाद आंखें पूरी खोल दीजिए। यह ६ से आठ बार तक कीजिए और इस बात का ध्यान रखिए कि केवल पलकें ही हिलें, भवें नहीं।

(३) **आंख झपकाना :** आंखों के लिए यह बहुत अच्छा व्यायाम है। इससे आंखें तेजी से घूमती हैं और टकटकी बांध कर देखने से उन पर जो बोझ पड़ता है उसका प्रभाव दूर होता है। इसके कारण थोड़ी थोड़ी देर के लिए आंखों में प्रकाश आना बन्द हो जाता है और उनमें पानी आने से धूल के कण धुल जाते हैं। पुस्तक पढ़ते समय, टेलीविज़न देखते समय या सिलाई करते समय यदि आप बार-बार आंखें झपकाएँ तो इससे आंखों पर बोझ नहीं पड़ता।

(४) **आंखों की पुतलियां घुमाना :** भी एक अच्छा व्यायाम है। ऐसा करते समय अपने सिर को मत घूमने दीजिए और एक ही स्थिति में रखिए। आंखों को दाएँ से बाएं और ऊपर से नीचे घुमाइए।

(५) सिर की मालिश : सिर की मालिश से बहुत सहायता मिलती है, क्योंकि इससे दृष्टि का केन्द्र अधिक अच्छी तरह काम करने लगता है।

परीक्षा का डर

१२ से २० वर्ष तक की आयु ऐसी होती है जब जीवन की सभी परीक्षाएँ एक ही समय सिर पर आ जाती हैं। स्कूल के बाद बच्चा कालेज के होस्टल में चला जाता है। रात को देर तक जागता है और इस बात का कोई ठिकाना नहीं कि वह कब भोजन करेगा। छात्रा-वास में रहने का स्वास्थ्य पर क्या प्रभाव पड़ता है यह सभी जानते हैं। परीक्षा के दिनों में तो छात्रों को अत्यधिक तनाव का सामना करना पड़ता है। यदि परीक्षा पत्र को देखते ही छात्र डर के मारे कांपने लगे तो उसे परीक्षा से पहले ईथूसा और काली फ़ास—३० की एक-दो खुराकें दे दीजिए। आप देखेंगे कि उसका सारा तनाव दूर हो जाएगा

बालों की देखभाल

हर लड़की की यह इच्छा होती है कि उसके घने, काले और चमकीले बाल हों और जिसको कंघी करते समय बालों का गुच्छा उतरता दिखाई दे, उसकी तो मानो जान ही निकल जाती है। किशोरावस्था में प्रत्येक व्यक्तिको अपने बालों का बहुत ध्यान रहता है। सामान्यतया सिर में लगभग एक लाख बाल होते हैं और इनकी प्रति दिन बढ़ने की दर ०.३७ मिलीमीटर है। प्रत्येक बाल की औसत लम्बाई पच्चीस से सौ सेंटीमीटर तक होती है। कुछ असाधारण व्यक्तियों के बालों की लम्बाई एक सौ सत्तर सेंटीमीटर तक भी देखी गई है। हो सकता है कि आजकल भी आप कुछ लम्बे बालों वाले व्यक्ति देखें। स्वस्थ व्यक्तियों के चालीस से सौ तक बाल प्रति दिन

झड जाते हैं। और उनके स्थान पर नए बाल आ जाते हैं। यदि इससे अधिक बाल झड़ें तो इस बात का लक्षण है कि आप गंजे होने वाले हैं। एक प्रकार का गंजापन कम आयु के व्यक्तियों में भी हो जाता है, जब चमड़ी के एक हिस्से से बाल झड़ जाते हैं। ऐसा पांच और पच्चीस वर्ष की आयु के बीच होता है और ४५ वर्ष की आयु के बाद कभी नहीं। इस प्रकार के गंजेपन में बालों का एक गुच्छा रातोंरात गायब हो जाता है और उसके स्थान पर चटियल मैदान जैसी चांद निकल आती है या दाढ़ी के बाल झड़ कर त्वचा ऐसे लगने लगती है मानो कभी बाल उगे ही नहीं। यदि उचित दवाई दी जाए तो वहां फिर बाल उग आते हैं। पहले पहल जो बाल उगते हैं वे बहुत कम और रोंए जैसे होते हैं, लेकिन उसके बाद घने और काले रंग के बाल उग आते हैं।

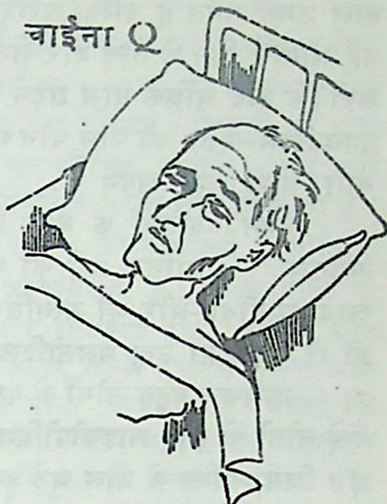
जब बाल गिरने लगें तो योग्य होम्योपैथ इस समस्या की जड़ तक पहुँचता है और गंजेपन के वास्तविक कारण का पता लगा कर दवाई देता है।

बाल झड़ने के लिए जो तत्व जिम्मेदार हैं, उनमें निम्नलिखित महत्वपूर्ण हैं: किसी दुर्बल करने वाले रोग के बाद शरीर में आई दुर्बलता, हारमोनों का संतुलन न रहना, शरीर की ग्रन्थियों के रोग इत्यादि। कई बार रूसी हो जाने के बाद बाल झड़ जाते हैं और या सिर की त्वचा के बहुत खुश्क या स्निग्ध होने के कारण बालों का झड़ना प्रारम्भ हो जाता है। कस कर सिर पर रूमाल बांधने या छोटी टोपी पहनने से भी बालों का झड़ना प्रारंभ हो सकता है। गंजेपन के कारणों के अनुसार खाने या लगाने की औषधियों का उल्लेख किया गया है। (चित्र ३.१०)

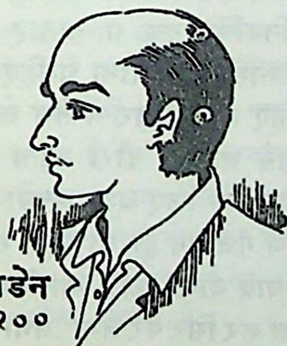
यदि किसी पुराने रोग के कारण दुर्बलता आने के बाद बाल झड़ने लगें तो चायना-की कुछ बूंदें पानी में लेने से न केवल फिर से

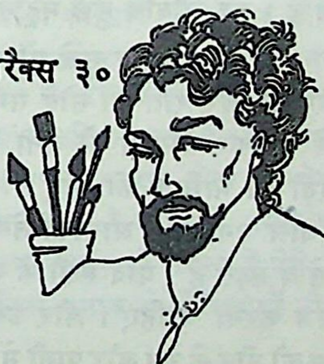
बालों की देखभाल











चित्र ३.१०

बाल उगने लगते हैं बल्कि शरीर की दुर्बलता भी दूर हो जाती है। यह औषधि दिन में तीन बार लेनी चाहिए। जब टायफाइड (**मोती-झरा**) के बाद अधिक बाल झड़ने लगें तो बुखार के तुरन्त बाद **टायफायडीनम–२००** की पांच पांच गोलियां दो दिन लेनी चाहिए। उससे बाल बहुत कम झड़ेंगे।

जिन ,ञतियों के बाल झड़ते हैं और जिनमें हारमोनों का असंतुल॰. ९।, मासिक धर्म की कोई समस्या हो–जैसे कि कम रक्त स्राव या पीड़ा–और जो अत्यधिक नाजुक मिजाज हों और अनायास ही रो पड़ती हों उन्हें **पलसोटिला** लेनी चाहिए।

आजकल बहुत लोगों के बाल जवानी में ही सफेद होने लगे हैं। ऐसे लोगों के लिए **लाइकोपोडियम** और **एसिड फॉस** बढ़िया दवाइयां हैं। जिस व्यक्ति के बाल जुड़े हुए या उलझे हुए हों उसे दिन में दो खुराक **बोरैक्स–३०** लेने से लाभ होगा। जिसके बाल सूखे और शीघ्र टूटने वाले हों उसे दो महीने तक प्रति सप्ताह **सोरीनम–२००** की दो खुराक लेनी चाहिए। कम आयु में जिन स्त्री पुरुषों के बाल झड़ते हों उन्हें सम्भवतः यह रोग अपने माता-पिता से मिला है, परन्तु इसका इलाज किया जा सकता है। **बीजबाडेन–२००** लेने से बाल बढ़ने लगते हैं। यह औषधि कुछ महीने तक दिन में एक बार लेनी पड़ेगी।

यदि बाल बहुत सूखे हों तो नियमित रूप से सप्ताह में कम से कम दो बार रात को सोते समय उनमें तेल लगाना चाहिए। और सवेरे उठ कर शैम्पू से धो लेना चाहिए। यदि सिर में तेल लगा कर खोपड़ी की मालिश की जाए तो उससे लहू का दौरा बढ़ता है और नए बाल उगते हैं। **आर्नीका** तेल बालों के लिए बड़ा अच्छा है और इससे वे बढ़ते हैं। यदि रूसी के कारण गंजापन हो, तो पहले रूसी का इलाज करना चाहिए। और उसके बाद बालों का। **काली सल्फ़–६ एक्स** को नीबू के रस और पानी में घोल कर सिर पर लगा लेना चाहिए

और जब वह सूख आए तो उसे पानी से धो लेना चाहिए। इससे रूसी गायब हो जाएगी। बाजार में जो शैम्पू मिलते हैं उनसे बचिए और आंवला या रीठे का सहारा लीजिए। बालों पर छिड़कने वाले सुगंधित पदार्थ और रंगों का इस्तेमाल न कीजिए। बिजली की बाल सुखाने वाली मशीन का प्रयोग भी मत कीजिए, क्योंकि अधिक गर्मी से बालों में मिलने वाला तेल जैसा प्राकृतिक पदार्थ नष्ट हो जाता है।

बालों को भी अन्य जीवों के समान, जो सांस लेते हैं, पौष्टिक आहार और बराबर देखभाल की आवश्यकता है। स्वस्थ बालों के लिए भोजन में दूध, अण्डे, फल और सब्जियां होनी चाहिए और उसके साथ ही रात को आराम से सोना, ताजी हवा में घूमना और कम से कम ६ गिलास पानी रोज़ पीना आवश्यक है जिससे कि शरीर से सारी गंदगी निकल जाए। तनाव और भावनात्मक असंतुलन बालों पर बुरा प्रभाव डालते हैं। यदि आपकी समस्या अधिक तीव्र हो और बार बार बाल झड़ने लगते हों तो डाक्टर की सहायता लीजिए उससे आपको लाभ होगा।

पसीने की ग्रन्थियों का ठीक से काम न करना

त्वचा के नीचे पसीना लाने वाली ग्रन्थियां होती हैं और यदि वे ठीक से काम न करें तो बहुत पसीना आता है। बुखार में जो पसीना आता है, वह अलग बात है। कई लोगों को सारे शरीर पर और कुछ को कुछ अंगों पर बहुत अधिक पसीना आने का रोग होता है। वयस्कों में सभी अंगों पर अधिक पसीना आने का रोग देखा गया है और कम आयु के लोगों में कुछ अंगों पर अधिक पसीना आता है। यह विश्वास किया जाता है कि ऐसा स्नायु विकार के कारण होता है और यह रोग अधिकतर उन लोगों में पाया जाता है जो बड़ी जल्दी घबरा जाते हैं। यह स्नायु रोग का प्रारंभिक लक्षण हो सकता है ऐसे रोगी जब चिन्ता में डूबे हुए हों या मानसिक तनाव से पीड़ित हों तो उन्हें बहुत पसीना आता है।

यदि सारे शरीर की पसीना लाने वाली ग्रन्थियां ठीक से काम न करें, तो रोगी को इतना अधिक पसीना आता है कि उसे ठण्ड के मौसम में भी दिन में कई बार कपड़े बदलने पड़ते हैं।

कुछ व्यक्तियों को शरीर के कुछ अंगों, जैसे हथेलियों, तलवों, बगलों और पेट में बहुत पसीना आता है। कुछ ऐसे युवा लोग देखे गए हैं जिनकी हथेलियों पर इतना पसीना आता है कि वे अधिक समय तक कलम नहीं पकड़ सकते और जिन्हें दूसरे लोगों से हाथ मिलाते समय शर्म आती है। कुछ मामलों में पसीने के कारण कुछ कीटाणु पैदा हो जाते हैं और उन अंगों से दुर्गन्ध आने लगती है। कई बार पावों में बहुत अधिक पसीना आने से उनसे दुर्गन्ध आने लगती है। इस रोग को **ब्रामीड्रोसिस** की संज्ञा दी गई है। जब कीटाणुओं के कारण पसीने में कोई रंग आ जाए तो उसे **क्रोमीड्रोसिस** कहते हैं। पसीने को रोकने वाली और दुर्गन्ध दूर करने वाली औषधियों का प्रयोग मत कीजिए क्योंकि ये प्राकृतिक पसीने को दबाने के अप्राकृतिक प्रयत्न मात्र हैं, जिनके प्रयोग से त्वचा के रोग हो सकते हैं। इनके स्थान पर होम्योपैथिक औषधियां अधिक गुणकारी होती हैं।

होम्योपैथिक औषधियां निम्नलिखित हैं : **आर्सेनिक** (जब पसीने से लाश जैसी बू आती हो); **कैलेडियम** (पसीने में इतनी मिठास होती है कि उस पर मक्खिया आ-आकर बैठती हैं); **कार्बो एनिमालिस** (कार्बन समूह की सभी औषधियों का लक्षण यह है कि सड़ा हुआ, दुर्गन्धपूर्ण पसीना बहुत अधिक मात्रा में आता है। चादर पर पीले दाग लग जाते हैं और यह औषधि तब देनी चाहिए जब लम्बी बीमारी के बाद यह रोग हो जाए।) **क्रोटेलस होर** (लहू जैसा पसीना); **क्यूप्रम मैट** (जब पसीने से हरे धब्बे पड़ जाएँ) ; **मर्क सोल** (खट्टी बदबू वाला बहुत अधिक पसीना जो रात में आता है और जिससे चादर पर धब्बे पड़ जाते हैं जो धुलने में दूर नहीं होते) :

निट ऐसिड (जब पसीने से पेशाब जैसी दुर्गन्ध आती हो); **पाइलो-कार्पस** (शरीर के एक पक्ष में आने वाला पसीना जिसके बाद ठण्ड लगती हो); **सोरीनम** (गन्दा दुर्गन्धभरा पसीना और त्वचा पर तेल जैसी स्निग्धता); **फ़ास्फ़ोरस** (ऐसे व्यक्तियों के लिए जो बहुत नपी तुली और सोच समझ कर बात करते हों) और **सल्फ़र** (ऐसे गन्दे लोगों के लिए जिनकी हथेलियों और तलवों में पसीना आता हो)।

संक्रामक यकृत शोथ

संक्रामक रोग में जिगर की सूजन हो जाए तो शोर मच जाता है। इसे जनभाषा में पीलिहा भी कहते हैं। अकेले बम्बई में कई वर्ष तक यह महामारी के रूप में फैला रहा और इसने नगरपालिका के सदस्यों, स्वास्थ्य अधिकारियों, डाक्टरों और जन साधारण को आतंकित कर दिया था। सब लोग यही पूछते थे कि इसका क्या इलाज है? क्या पानी पीने में कोई खतरा तो नहीं? ऐसे रोगियों के बचने की कितनी आशा है? इसी प्रकार तरह-तरह के प्रश्न पूछे जा रहे थे।

कई बार इस रोग का दोष वायरस या रोगाणु पर मढ़ दिया जाता है। कुछ लोगों का कहना है कि दो प्रकार का वायरस है—ए और बी। यह रोग पानी के माध्यम से फैलता है। तैरने के तालाबों में नहाने और नगरपालिका द्वारा दिए गए पानी के माध्यमसे इसका फैलाव होता है। संक्रमण के माध्यम से जिगर की सूजन कुछ दिनों तक रहती है और उसके बाद यह पीलिहा में बदल जाती है। अस्पताल में रखे गए रोगियों से यह रोग दूसरे रोगियों तक पहुंचने का खतरा बहुत कम होता है और इसलिए इन रोगियों को दूसरों से अलग रखना आवश्यक नहीं माना जाता। इसके रोगाणु तीन से पांच सप्ताह के बाद रोग के रूप में प्रकट होते हैं।

सबसे पहले लक्षण हैं : भूख का मारा जाना, मिचली और उल्टी। उसके बाद पेट में बेचैनी होती है जो बाद में पीड़ा में बदल जाती है, मुंह का स्वाद बिगड़ जाता है। तीन से छः दिन के बीच बुखार भी हो जाता है। रोग के प्रारंभ होने से लेकर चार और आठ दिन के भीतर पीलिया हो जाता है और बुखार धीरे धीरे कम हो जाता है। पीलिया पांच दिन से लेकर ७० दिन तक रहता है और इसकी औसत अवधि तीन सप्ताह है। रोगी का मल मिट्टी के रंग का हो जाता है और मूत्र गहरे पीले रंग का। साठ प्रतिशत रोगियों के जिगर पर हाथ रखने से पीड़ा होती है और वह बढ़ जाता है। बहुधा पीलिया के ठीक हो जाने के बाद भी काफी दिनों तक जिगर का आकार बढ़ा हुआ रहता है। तीस प्रतिशत रोगियों की तिल्ली बढ़ जाती है। कुछ रोगियों के सारे शरीर में खुजली होती है। यह रोग दूसरी बार सामान्यतया नहीं होता, परन्तु अगर हो जाए तो उसकी, प्रचण्डता पहले की अपेक्षा बहुत अधिक होती है। दूसरी बार यह रोग बहुधा शराब पीने से होता है और इसलिए पीलिया होने के कम से कम छः महीने तक रोगी को शराब नहीं पीनी चाहिए। कई बार जिगर काम करना बिल्कुल बन्द कर देता है जिसका परिणाम घातक होता है। लेकिन ऐसा बहुत कम मामलों में होता है और अधिकतर रोगियों को पूर्णतया स्वास्थ्य लाभ होता है। कुछ इस रोग के बाद होने वाले दुष्परिणामों से पीड़ित रहते हैं, जैसे हर समय नींद आना, भूख न रहना और पेट में पीड़ा और बेचैनी।

पुरानी कहावत है कि किसी रोग का इलाज करने की बजाय उसको होने ही न दिया जाए तो बेहतर है। लेकिन इस रोग को रोकने के लिए जो कुछ भी किया जा रहा है, उसके बावजूद इसमें कोई कमी नहीं आई है। बहुधा जहां से नगरभर को पानी दिया जाता है वहीं पर गन्दगी होती है या पानी लाने वाले पाइप गन्दे होते हैं। कई

बार पानी को साफ करने के लिए रसायन पदार्थ जैसे क्लोरीन—समुचित मात्रा में प्रयुक्त नहीं किए जाते या और कोई कमी रह जाती है इसलिए यह आवश्यक हो जाता है कि पानी उबाल कर पिया जाए। सड़क के किनारे बिकने वाली चीजें नहीं खानी चाहिए और भोजन से पहले हाथ अच्छी तरह धो लेने चाहिए। यदि इस प्रकार की सावधानी बरती जाए तो पीलिहा को फैलने से रोका जा सकता है।

जिगर में सूजन के कारण, उसमें ग्लाइकोजिन का भण्डार कम हो जाता है और उसे पूरा करने के लिए यह आवश्यक है कि इस रोग का रोगी ऐसी वस्तुएं खाए जिनमें कार्बोहाइड्रेट अधिक मात्रा में हों। इसी कारण ऐसे रोगियों को ग्लूकोज़ खूब पिलाया जाता है और आवश्यकता पड़ने पर नाड़ी के माध्यम से उसके शरीर में पहुंचाया जाता है। इस रोग में लहू में प्रोटीन की मात्रा भी कम हो जाती है और इसलिए रोगी के भोजन में प्रोटीन की मात्रा भी अधिक होनी चाहिए, लेकिन घी आदि न्यूनतम मात्रा में खाना चाहिए। रोगी को पानी और फलों का रस बहुत अधिक मात्रा में देना चाहिए और जब तक उसके मूत्र में पित्त आती रहे, तब तक उसे लेटे रहना चाहिए। ऐसा करने से पीलिहा दूर हो जाता है।

होम्योपैथी में इसके लिए निम्नलिखित औषधियां हैं : **कार्डूअस मेरियानस** – (दिन में तीन बार इसकी दस-दस बूंदें आधा प्याला पानी में डाल कर कुछ दिनों तक पीनी चाहिए); **चेलीडोनियम** (जब गर्म चीजें पीने से मिचली और उल्टी को आराम मिलता हो; जीभ पर पीली गन्दगी हो और मल भेड़ की मेंगनी जैसा हो); **क्योनेंथस** (भूख न लगती हो, जीभ गन्दी हो और मल सफेद गोंद जैसा हो); **डुगलांस साइनेरिया** (जब लाल रंग के दाने हों, जिनमें खुजली होती हो और गर्मी में सुइयां सी चुभती हों); **लेप्टैंड्रा** (जब मल काले रंग का हो: इस औषधि से जिगर की रक्तवाहिनी में रक्त स्राव

बढ़ जाता है); **लूपुलस** (बच्चों का पीलिहा); **माइरिस्टिका** (जब नींद न आती हो और खुजली होती हो; मल त्याग की इच्छा हो परन्तु केवल वायु निकलती हो; राख के रंग का मल निकलता हो); **नक्स वामिका** (जब यह रोग महामारी के रूप में फैला हो उस समय यह औषधि अधिक लाभकारी है; स्वस्थ्य व्यक्ति को कुछ दिन तक दे दी जाए तो यह रोग नहीं होता)।

काम–जनित समस्याएँ और रोग

११ वर्ष से लेकर लगभग पच्चीस वर्ष तक ऐसी आयु होती है जब व्यक्ति के शरीर और मन का विकास हो रहा होता है। इस अवधि में वह अपने शरीर को पहचानता है और उसमें काम भावना का उदय होता है। लेकिन काम-सुख और उससे संबंधित अंगों की पहचान से भी कुछ समस्याएँ संबंधित हैं। एक सबसे बड़ी समस्या उनके बारे में गलत जानकारी की है। हस्त मैथुन, पौरुष (मैथुन सामर्थ्य), कौमार्य, मासिक धर्म और किशोरावस्था की अन्य अवस्थाओं के बारे में बहुत सी किंवदंतियां प्रचलित हैं, जिनमें से कुछ ठीक हैं और कुछ ग़लत।

हस्तमैथुन के बारे में हम बचपन से ही बहुत सी कल्पित बातें सुनते आए हैं। यह कहा जाता है कि यह इस कारण बुरा है कि इससे शरीर दुर्बल होता है, कि वीर्य की एक बूंद लहू की सौ बूंदों के बराबर है, इत्यादि। जो लोग इन बातों पर विश्वास कर लेते हैं वे हस्त क्रिया के बाद यह सोचने लगते हैं कि वे कमजोर हो गए हैं। एक सोलह वर्षीय युवक हस्तक्रिया के बाद अत्यन्त दुर्बलता अनुभव करता था और मूर्छित हो जाता था। यह बात विवादास्पद है कि केवल हस्त-क्रिया के कारण दुर्बलता होती है या शरीर पर कोई प्रभाव पड़ता है। बहुधा होता यह है कि इस काम के साथ जो अपराध भावना

जुड़ी हुई है, उसके परिणामस्वरूप दुर्बलता और घबराहट जैसे लक्षण होते हैं। इसलिए हमें इस प्रकार की कपोल कल्पनाओं से अपना पिंड छुड़ा लेना चाहिए। जो वीर्य निकलता है वह किसी भी अन्य ग्रन्थि द्वारा उत्पादित स्राव के समान है। निकलने के बाद इसका भण्डार फिर भर जाता है। यह तो कुएं के समान है कि उससे पानी निकालते जाओ और भूमि से और पानी कुए में भरता जाता है। वीर्य के केवल दस प्रतिशत भाग में शुक्राणु होते हैं, जो संतानोत्पत्ति में सहायक होते हैं। शुक्राणुओं की कमी अथवा उनके अभाव से सम्भोग करने की क्षमता पर प्रभाव नहीं पड़ता। इस बारे में कुछ नहीं कहा जा सकता कि कहां तक हस्तक्रिया बिना हानि पहुँचाए की जा सकती है क्योंकि प्रत्येक व्यक्ति की काम भावना की मात्रा अलग अलग होती है।

मनोवैज्ञानिकों का कहना है कि हस्तमैथुन से कोई हानि नहीं होती बल्कि कामोत्तेजना का तनाव कम हो जाता है। इससे अनचाहे गर्भाधान और रति रोगों को रोकने में भी सहायता मिलती है। इसका एक लाभ यह भी बताया जाता है कि काम वासना का प्रभाव कम हो जाता है और समाज बलात्कार और अन्य सामाजिक अपराधों से बच जाता है। किशोरावस्था में हस्तमैथुन एक सामान्य बात है। लगभग सभी युवक कुछ दिनों बाद इस क्रिया को छोड़ देते हैं। हां, कुछ लोगों में इसकी अत्यधिक इच्छा रोग का रूप धारण कर लेती है और उनका इलाज करना आवश्यक है।

होम्योपैथी में इस कुटेब से बचने के लिए बूफो नामकी औषधि दी जाती है जो मेंढक के विष से तैयार की जाती है। अन्य औषधियां हैं. **ओरिगनेनम** (कम आयु की लड़कियों में जिनमें काम वासना भयंकर रूप से जाग उठती हो) : **प्लाटीना** (उन स्त्रियों में जिनकी योनि अत्यधिक संवेदनशील हो); **स्टोफिसाग्रिया** (कम

आयु के लड़कों में हस्त मैथुन के कुप्रभावों को दूर करने के लिए); **अस्टीलागो** (हस्त मैथुन की असह्य इच्छा जिसमें व्यक्ति सदा कामुक बना रहे और उसे काम से संबंधित स्वप्न आते हों)।

स्त्रियों के लिए, कठिनाई के वर्ष तब प्रारम्भ होते हैं, जब मासिक धर्म का आरंभ होता है। यदि वह नियमित हो तो कोई समस्या नहीं। लेकिन यदि मासिक धर्ममें बहुत अधिक रक्त स्राव हो, बहुत कम हो, गलत समय पर हो, या बिल्कुल न हो तो समस्या उत्पन्न हो जाती है। इनमें से प्रत्येक किसी न किसी रोग का लक्षण है, जिसका इलाज करना जरूरी है। होम्योपैथी में जादूगर के थैले के समान इन रोगों के लिए बहुतसी दवाइयां हैं। परन्तु उनका वर्णन करने से पहले हम यह बताएंगे कि सामान्य रूप से मासिक धर्म कैसे होता है। प्रत्येक मास एक हारमोन, एस्ट्रोजन की मात्रा कम हो जाती है जिसके परिणाम-स्वरूप गर्भाशय से रक्त स्राव होने लगता है। मासिक धर्म प्रारंभ होने की आयु तेरह और चौदह वर्ष के बीच है। भारत में यह कई बार इससे पहले, अर्थात् ग्यारह वर्ष की आयु में प्रारंभ हो जाता है। जो भी हो, अठारह वर्ष की आयु तक तो मासिक धर्म अवश्य प्रारंभ होना चाहिए और जिन युवतियों को प्रारंभ नहीं होता वे **रुद्धार्तव** से पीड़ित होती हैं।

रुद्धार्तव मासिक धर्म के स्थायी या अस्थायी रूप से रुकने को कहते हैं। यह किशोरावस्था से लेकर मध्य आयु तक किसी भी समय हो सकता है। कई बार मासिक धर्म का प्रारंभ हो जाता है, परन्तु रक्तस्राव नही होता, जिसे गुप्तार्तव की संज्ञा दी गई है। इसका कारण यह हो सकता है कि उसके रास्ते में कोई रुकावट हो या योनि की झिल्ली न फटी हो। यदि तीन से पांच दिन तक पेट के निचले भाग में पीड़ा का अनुभव हो, भारीपन लगे, सख्त कब्ज हो, मूत्र न आए और पेट के निचले हिस्से में सूजन हो, तो स्त्री रोग विशेषज्ञ की सलाह

लेनी चाहिए। शरीर की क्रियाओं में विकार के कारण किशोरावस्था से पहले गर्भावस्था के दौरान और रजोनिवृत्ति के बाद मासिक धर्म रुक सकता है। रोग निदान की दृष्टि से सबसे पहला मासिक धर्म देर से हो सकता है या कुछ समय तक नियमित रूपसे होने के बाद रुक सकता है। इसमें से पहली अवस्था को प्रारंभिक रुद्धार्तव की संज्ञा दी गई है—और दूसरी को गौण रुद्धार्तव की। प्रारंभिक रुद्धार्तव जन्मजात रोगों, ग्रन्थि विकारों, पोष्टिक आहार की कमी, लहू की कमी या लम्बी बीमारी के कारण हो सकता है। सबसे अधिक महत्वपूर्ण कारण मानसिक है। निराशा, चिन्ता, या अचानक कोई धक्का पहुँचने से मासिक धर्म में देरी हो सकती हैं। गौण रुद्धार्तव अधिक मुटापे से, लम्बे समय तक चलने वाली पुरानी बीमारियों से या गर्भाशय के कष्टों के परिणाम स्वरूप हो सकता है; इसलिए यदि मासिक धर्म अचानक रुक जाए तो डाक्टर को दिखा देना ही उत्तम है। घर में जो दवाइयां दी जा सकती हैं वे हैं: **कलकेरिया** कार्ब (गोरी चिट्टी और थलथल शरीर वाली लड़कियों के लिए); चाइना (लम्बे समय तक चलने वाली दुर्बलता लाने वाली बीमारी के बाद); **इग्नेशिया** (कोई धक्का पहुँचने के बाद): **जोनोसिया अशोक** (यह भारतीय वृक्ष अशोक की छाल से तैयार की जाती है और यदि इसकी दस से पन्द्रह तक बूदें आधा प्याला पानी में दिन में दो-तीन बार दो महीने तक ली जाएँ तो मासिक धर्म नियमित हो जाता है); **पलसोटिला** (पानी में पैर डालने से मासिक धर्म रुकने पर या संवेदनशील युवतियों में पांडु रोग के कारण मासिक धर्म के देर से प्रारंभ होने की दशा में); **सैनेशियो ए-** (इस औषधि को स्त्रियों की शरीर क्रियाओं को नियमित करने वाली औषधि कहा जाता है; जब मासिक धर्म दब जाए तो प्रतिदिन इसकी १५ बूंदें पानी में मिलाकर ले ली जाएँ।)

जब मासिक धर्म के दिनों में पीड़ा, मिचली, सिर दर्द और

इस प्रकार की अन्य तकलीफें हों, तो इस रोग को कष्टार्तव की संज्ञा दी जाती है। जब एक अन्य हारमोन प्रोजेस्ट्रोन का बनना बन्द हो जाता है तो पीड़ा प्रारंभ होती है। इस रोग का सबसे सामान्य रूप वह है जिसमें ऐंठन होती है। पहले दिन अत्यधिक पीड़ा होती है जो आधे घण्टे तक रहती है। पीड़ा रुक रुक कर होती है जिसके कारण कमजोरी बल्कि मूर्छा तक आ सकती है। यह पीड़ा पेट के निचले भाग से प्रारंभ होती है और जंघाओं तक जाती है। पीड़ा और बेचैनी बाएँ भाग में होती है जैसी कि सामान्यतया कब्ज और पेट के ऊपरी भाग में वायु के कारण हुआ करती है। यह इस कारण है कि बड़ी आंत में ऐंठन होती है। ऐसी रोगिणियां कब्ज को दूर करने के लिए जुलाब लेती हैं, लेकिन उससे कोई लाभ नहीं होता बल्कि पीड़ा और बढ जाती है। ऐसे मरीजों को अपने भोजन में कार्बोहाइड्रेट की मात्रा कम कर देनी चाहिए और जुलाब नहीं लेना चाहिए। यह रोग आमतौर पर उन महिलाओं को होता है जो बैठी रहती हैं। यदि वे व्यायाम करें तो उनका कष्ट दूर हो सकता है। यह विश्वास किया जाता है कि मां बनने के बाद कष्टार्तव कम हो जाता है या बिल्कुल हट जाता है क्योंकि गर्भाशय के अन्दर की झिल्ली में बच्चे को जन्म देने के बाद लहू की मात्रा अधिक हो जाती है। इस बात को भी नहीं भूलना चाहिए कि इस रोग के मनोवैज्ञानिक कारण भी हैं। जब कोई युवती पहली बार रजोदर्शन करती है तो वह अपने घर की बड़ी बूढ़ियों को देख कर गलत ढंग से सोचने लगती है। जब वह देखती है कि उसकी मां या फूफी-चाची मासिक धर्म में पीड़ा का अनुभव करती हैं और वह सोचने लगती है कि ऐसा होना तो प्राकृतिक ही है। ऐसे मरीजों को समझाने बुझाने से उनका रोग दूर करने में सहायता होती है।

इस रोग के लिए लाभकारी औषधियों में निम्नलिखित हैं:

बैलाडोना–२०० (इससे ऐंठन और रुकावट दूर होती है; इसका

एक लक्षण यह है कि पीड़ा अचानक प्रारम्भ होती है और अचानक ही समाप्त हो जाती है); इसके साथ ही मैगफास-६ एक्स देना चाहिए (इसकी दस-बारह गोलियां आधा प्याला गर्म पानी में घोल लीजिए और जब तक पीड़ा होती हो, प्रति दस मिनट बाद उसके दो-दो चम्मच पी लीजिए)। अन्य औषधियों में निम्नलिखित हैं: **कॉलोफाइलम** (जब रुक रुककर ऐंठन होती हो; पीड़ा प्रसव पीड़ा के सामान चारों ओर फैलती हो); **लैककैनीनम** (जब मासिक धर्म से पहले छातियों में दर्द होता हो); **पिट्यूटरिन** (यह पीयूष ग्रन्थि से निकलने वाले स्राव से तैयार की जाती है और इससे रक्त स्राव रुकता है और लहू के थक्के घुल जाते हैं; **पलसेटिला** (जब मासिक धर्म देर से प्रारंभ हो और काले रंग का थक्केदार लहू निकले और उसके साथ कमजोरी और थकावट का अनुभव हो); **वाईबर्नम ओपलस** (ऐंठन के साथ ऐसी पीड़ा जिसमें बोझ भी महसूस होता हो और साथ में घबराहट हो); **जेन्थोज़ाइलम** (जलन और बाईं ओर पीड़ा, अत्यधिक रक्तस्राव और मासिक धर्म के पहले स्नायु विकार के कारण सिर दर्द)।

जब मासिक धर्म के दिनों में बहुत अधिक या देर तक रक्तस्राव हो तो उसे **अत्यार्तव** की संज्ञा दी जाती है। जब यह रोग किशोरावस्था में हो तो इसका कारण पीयूष ग्रन्थि या अण्डाशय का विकार होता है। इसके अतिरिक्त इसके मानसिक कारण भी होते हैं और या गले की ग्रन्थि का विकार होता है। कई बार लम्बी बीमारी के बाद भी यह रोग हो जाता है। इसका एक और कारण कैल्शियम की कमी है। बाद में, लूप आदि लगाने, रक्त चापके बढ़ जाने या रसौली के कारण अत्यधिक रक्तस्राव होने लगता है।

एक और प्रकार का अत्यार्तव रोग है—वह तब होता है जब मासिक धर्म के बाद रक्तस्राव हो। यह कई बार लगातार होता है

और कभी कभी रुक-रुक कर। कम आयु की लड़कियों में यह मानसिक तनाव के कारण हो सकता है, परन्तु अधिक आयु की स्त्रियों में इसके जिन कारणों की खोज डाक्टर को करनी पड़ेगी, उनमें से एक है गर्भपात का डर, गर्भाशय के बाहर गर्भाधान, गर्भाशय में रसोलियां, गुर्दे की सूजन या बढ़ी हुई रक्त चाप। इसका इलाज है बिस्तर पर लेटे रहना, भोजन में दूध और फलों के रस की अधिक मात्रा, इसके अतिरिक्त भोजन में सी और डी विटाम्निनों की मात्रा अधिक होनी चाहिए।

होम्मोपैथी में इन कष्टों के लिए जो औषधियां दी जाती हैं उनसे न केवल रक्त स्राव रुक जाता है बल्कि मासिक धर्म भी नियमित हो जाता है। औषधियां हैं : **बोविस्टा** (दो मासिक धर्मों के बीच केवल रात्रि के समय रक्त स्राव और थोड़ा-सा अधिक थक जाने के कारण होने वाला रक्तस्राव); **कोकस** (शीघ्र घबरा जाने वाली और रोने झीकने वाली महिलाओं में हरे रंग का रक्त स्राव); **हैमामैलिस** (काले रंग का अत्यधिक रक्त स्राव जब फोड़े या चोट जैसा दर्द होता हो और थकान का अनुभव होता है); **सबाइना** (चमकीला लाल रंग का लहू जिसमें पीड़ा पीठ से लेकर जंघा तक होता है); **सिकेल कॉर** (दुबली पतली स्त्रियों में बिना पीड़ा के गहरे रंग का दुर्गन्धयुक्त रक्तस्राव); **थ्लैस्पी बरसा पेस्टोरिस** (रसौली से होने वाले रक्तस्राव में लाभकारी या जहां खून में थक्के हों); **ट्रिलियम** (यदि कम पोटेंसी में बार-बार दी जाए तो इससे रक्त स्राव रुक जाता है); **युस्टिलैगो** (चमकीले रंग का रक्तस्राव जिसमें कुछ लहू हो और कुछ थक्के और जहां हाथ लगाने तक से रक्तस्राव प्रारंभ हो जाता हो)।

यद्यपि पुरुषों को यह ('मुसीबत' नहीं होती, उन्हें दो-एक और बातें परेशान करती हैं। उनमें से एक है स्वप्न दोष या रात्रि स्खलन। किशोर रात के समय तुरन्त जाग उठता है तो देखता है कि उसका

पायजामा गीला हो गया है । तब उसे पता चलता है कि सोते-सोते उसका वीर्य स्खलित हो गया है । वह सोचने लगता है कि पता नहीं यह क्या हुआ । मुझे किसी ने बताया क्यों नहीं ? वह सोचता है, परन्तु इसमें चिन्तन की कोई बात नहीं । जवानी के दिनों में ऐसा हो ही जाता है । यदि बार-बार ऐसा हो या उसके बाद दुर्बलता या थकान हो और युवक अपना ध्यान किसी भी काम में केन्द्रित न कर सकता हो तभी डाक्टर के पासजाना चाहिए । इस रोग के लिए होम्योपैथी में जो औषधियां विशेष रूप से दी जाती हैं, वे हैं : **एसिड फॉस** (अत्यधिक दुर्बलता); **सैलिक्स निग्रा** (स्वप्न दोष की बारंबारता को कम करने के लिए इसकी बीस बूंदें प्रति दिन देनी चाहिए); वायोला ट्रिकलर (जब स्वप्न के बाद वीर्य स्खलित होता हो) ।

यदि युवक या युवतियां कामभावना की किसी उलझन में फंस जाएं तो ये 'कठिन वर्ष' और भी कठिन हो जाते हैं । युवक के सामने कामभावना का उदय होने के बाद बहुतसी नई नई वस्तुएं औरउनका सुख होता है और कई बार अपनी अधीरता में वह संयोगवश किसी रोग का शिकार हो जाता है । इन रोगों को रति रोगों की संज्ञा दी जाती है और इनके परिणामस्वरूप न केवल पीड़ा सहन करनी पड़ती है बल्कि शरीर भी विकृत हो सकता है ।अधिकतर रति रोग निम्नलिखित पांच वर्गों में बांटे जा सकते हैं : उपदंश या आतशक, सुजाक, रतिज व्रण, और जंघाओं के जोड़ों में गिलटियां । रति रोग शब्द की व्युत्पत्ति काम की देवी रति के नाम से हुई है । बन्दरगाहों, पहाड़ में बसे स्वास्थ्यवर्द्धक स्थानों, औद्योगिक नगरों और अन्य ऐसे नगरों में जहां लोग आते जाते रहते हैं और जहां वेश्यावृत्ति खूब पनपती है, वहीं पर रति रोग अधिक मिलते हैं । इस रोगी का तुरन्त पता चल जाता है और सभी उसे घृणा की दृष्टि से देखते हैं । हम यहां परदो अधिक प्रचलित रति रोगों—आतशक और सुज़ाक की चर्चा करेंगे ।

सूजाक प्रजनन के अंगों और मूत्र नली के अन्दर की झिल्ली का रोग है और यह सम्भोग के परिणामस्वरूप ही होता है। परन्तु कई बार किसी रोगी की चादर, तौलिए या रूमाल के माध्यम से भी इसके कीटाणु दूसरों तक फैल जाते हैं । जब वह प्रचण्ड रूप में होता है तो पुरुषों की मूत्र नली सूज जाती है और स्त्रियों की मूत्र नली और योनि में सूजन आ जाती है । इन अंगों में पीड़ा, जलन आदि होती है और पीप निकलती है ।यह रोग आस-पास के अंगों तक भी फैल सकता है और जब पुराना हो जाए तो मूत्र नली सिकुड़ कर बन्द हो सकती है। इसके अतिरिक्त घुटने, टखने या कन्धे के जोड़ सूजने के कारण संधि-शोथ हो जाता है। यदि यह रोग छोटे बच्चों तक फैल जाए तो उनकी जननेन्द्रियों में सूजन आ जाती है ।

प्रचण्ड रूप में यह रोग हो, अर्थात बहुत अधिक सूजन हो तो निम्नलिखित औषधियां दी जानी चाहिए : **एट्रोपीन-६ एक्स** (सुजाक में मूत्र नली की अत्यधिक सूजन के लिए यह विशिष्ट दवाई है); **कैनाबिस सैटाइवा** (पतली पीब का बहना और मूत्र त्याग करते समय जलन और पीड़ा; रोगी चलता है तो टांगें चौड़ी कर लेता है) ; **कैन्थारिस** (सुजाक में लिंग के तन जाने से पीड़ा, लहू मिला मूत्र जो जलन के साथ बूंद बूंद करके आता है और मूत्र त्याग करने की इच्छा बराबर बनी रहती है) ; **डोरीफोरा** (बच्चों में मूत्र नली की सूजन जो स्थानीय हो) ; **पैट्रोसीलीनम** (अचानक मूत्र त्याग की इच्छा और मूत्र नली में अत्यधिक खुजली और ऐसा लगता है कि कोई उसे काट रहा है; सफेद पीप) । जो रोग पुराना हो गया हो उसके लिए निम्नलिखित औषधियां हैं : **मैडोरीनम** (यह मध्यवर्ती दवाई के रूप में दी जाती है और उन पुराने रोगों में लाभदायक है जो सुजाक के दवा दिए जाने से उत्पन्न हुए हों) ; **ओलियम संटाली** (यह औषधि चन्दन की लकड़ी के तेल से तैयार की जाती है। इसका लक्षण यह है कि शिशनाग्र पर

सूजन होती है और गाढ़ी पीप निकलती है); थूजा (उन मामलों में जहां बार-बार यह रोग हुआ हो और दबा दिया गया हो; इसमें पीले हरे रंग की पीप निकलती है)।

जहां तक उपदंश या फिरंग रोग का सम्बन्ध है, यह त्वचा से त्वचा के घर्षण के परिणामस्वरूप होता है। यदि स्त्री को यह रोग हो तो उसके गर्भ में पल रहे बच्चे को भी हो जाता है। इस रोग के कीटाणुओं का प्रकोप दस से ९० दिन के भीतर प्रारम्भ होता है।

सबसे पहले जननेन्द्रियों पर, जहां कीटाणुओं का प्रकोप हुआ हो, एक कठोर व्रण हो जाता है। पुरुषों के शिश्न और स्त्रियों के भगोष्टों पर ऐसा व्रण होता है। यह गिल्टी सी होती है और इसमें सामान्यतया पीड़ा नहीं होती और इसी कारण कई बार इसकी उपेक्षा कर दी जाती है। ऐसी गिलटियां कई बार होंठों, छातियों, चूचियों, उंगलियों, जीभ या गुदा पर भी हो जाती हैं और कुछ ही समय बाद समाप्त हो जाती हैं।

इसके बाद तीन से ६ महीने तक व्यक्ति बीमार सा लगता है। उसे सिर दर्द होता है, गला खराब होता है और हल्का हल्का बुखार रहता है। शरीर पर तांबे के रंग के दाने निकल आते हैं, जिनमें खुजली नहीं होती। मुंह में सलेटी रंग के धब्बे से दिखाई देते हैं, जिन पर मैल जमी रहती है, लेकिन जिनमें पीड़ा नहीं होती। हो सकता है कि लसीका-ग्रन्थियां कुछ बढ़ जाएं और मुहासों जैसी गांठें भग के अन्दर बन जाएं। सिर के बाल तो गिरते ही हैं, साथ ही पलकों के बाल भी झड़ सकते हैं। कुछ महीनों के बाद इस रोग के दूसरे लक्षण अचानक प्रारंभ हो जाते हैं। कुछ वर्ष रोगी चैन से रहता है लेकिन उसके बाद रोग अपनी अंतिम अवस्था में पहुंच जाता है, जिसका परिणाम मृत्यु ही होता है।

रोग की तीसरी या अंतिम अवस्था में त्वचा, हड्डियों, जीभ,

मुख्य धमनी, अण्डकोषों, यकृत या अन्य अंगों पर घाव हो जाते हैं। सारा शरीर क्षय की अवस्था में होता है—आंखें और मस्तिष्क काम करना बन्द कर देते हैं और रोगी मौत के मुंह में चला जाता है।

इस रोग के लिए होम्योपैथी में कई औषधियां हैं : **सिनाबरिस** (ऐसे मुहासे जिनसे लहू बहने लगे, फोड़े और शिशनाग्र की सूजन); **जकारांडा** (प्रारंभ में, शिश्न में गर्मी और पीड़ा, शिश्नाग्र की ऊपरी चमड़ी में पीड़ा और सूजन; बाद की अवस्थाओं में संधि-शोथ); **काली आयोड** (अंतिम अवस्था में, जब उपदंश के कारण आंख की पुतली सूज जाए हड्डियों में पीड़ा हो और चमड़ी के नीचे फोड़े हों); **मर्कसोल–२ एक्स** (उपदंश की पहली अवस्था में फोड़ों के लिए विशिष्ट दवाई है) **मर्क प्रोटो–आयोडाइड** (कठोर गिल्टियां जिनमें न तो पीड़ा हो और न पीप निकलती हो; जंघा की संधि में दाईं ओर गिल्टी निकल आए); **नाइट्रिक ऐसिड** (यह औषधि उस दशा में अधिकलाभकारी होती है जब उपदंश के रोग को पारे से बनी दवाइयां अत्यधिक मात्रा में देकर दबाने की चेष्टा की गई हो; मुंह, जीभ और जननेन्द्रियों पर फोड़े, जिनमें जलन और ठीस उठती है और दुर्गन्धयुक्त पीप निकलती है); **स्टिलिंगिया** रोग की दूसरी अवस्था, जिसमें चमड़ी पर दाने निकल आते हैं जिनमें जलन और खुजली होती है और जो हवा लगनेसे बढ़ जाती है; यह औषधि मध्यवर्ती औषधि के रूप में भी लाभकारी है।

चमड़ी के रोग

शरीर पर जो त्वचा मढ़ी है, उसकी मोटाई कुछ मिलिमीटर ही है लेकिन इसमें इस प्रकार की समस्याएं हो जाती हैं कि बढ़ते हुए युवकों के दिन का चैन और रात की नींद हराम हो जाती है।

मुहासे : कई प्रकार के होते हैं और उनके नाना प्रकार के

प्रभाव होते हैं मुहासे पीप से भरे, छोटे-छोटे फोड़े होते हैं जो सारे चेहरे पर निकल आते हैं। जो व्यक्ति साफ सुथरे नहीं रहते, उन्हें काले मुहासे या कील निकलने लगते हैं। मुहासों को न तो खुजाइए और न रगड़िये क्योंकि इससे तकलीफ और बढ़ जाएगी।

होम्योपैथी में न केवल यह देखा जाता है कि मुहासे कैसे हैं बल्कि इस बात का भी ध्यान रखा जाता है कि वे किस कारण हुए हैं। **आर्नीका** उस दशा में दी जाती है जब छोटी छोटी फुन्सियां हो गई हों जिनमें पीड़ा भी होती हो और खुजली भी, और जो मुंह के दोनों ओर एक समान निकली हों। जो मुहासे मासिक धर्म के दिनों में अधिक हो जाएं उनके लिए **यूजीनिया जाम्बोस** दी जाती है। जब न केवल मुंह पर बल्कि शरीर के ऊपरी भाग पर फुन्सियां सी निकल आएं तो **काली ब्रोमाइड** देनी चाहिए। जब कब्ज से पीड़ित लड़कियों में मासिक धर्म से तुरन्त पहले चेहरे और माथे पर मुहासे हो जाएं तो उनकी औषधि है **मैग्नेशियम म्युरैटीकम**। जब मुहासों में पीप हो तो उसकी दवाई **सैप्सिन** है।

यह बात स्पष्ट है कि गलत रहन-सहन और खान-पान से ही मुहासे होते हैं। इसलिए अधिक मिठाइयां और तली हुई वस्तुएं खाना बंद कर देना चाहिए तभी मुहासों का इलाज संभव है। मुहासों के लिए कई प्रकार की मरहम बिकती है, जिसके बारे में यह दावा किया जाता है कि उससे मुहासे दूर हो जाएंगे, लेकिन ये दावे ठीक नहीं होते। ऐसी क्रीमों और मरहमों का प्रयोग नहीं करना चाहिए। नियमित रूप से उपचार करने के बाद मुहासे दूर हो जाएं तो भी त्वचा पर धब्बे रह जाते हैं। होम्योपैथी में इसकी एक दवा **बर्बरिस एकीफोलियम** है। इसकी १५ बूंदें पानी में मिला कर दो या तीन बार ले ली जाएं तो वे धब्बे दूर हो जाते हैं और त्वचा का रंग निखर आता है।

जब लड़का किशोरावस्था से यौवन में प्रवेश करने लगता है तो

उसके चेहरे पर बाल उग आते हैं। मूंछ दाढ़ी निकलने के बाद हजामत बनाने की समस्या आती है। समय समय पर कई बार खुजली हो जाती है जिसे नाई की खुजली की संज्ञा दी गई है। यह रोग केवल दाढ़ी में होता है और इसका कारण यह है कि शेव बनाते समय बालों के रोम कूप सूज जाते हैं। बाल बहुत कड़े लगने लगते हैं। इसकी औषधियां हैं : **क्राइसारबोनिक एसिड** (बहुत खुजली होती हो और चमड़ी की सूखी परतें उतरती हों) ; **सल्फ़र-आयोड** (ऐसी खुजली जो आसानी से ठीक न होती हो)।

कई बार नव युवकों की त्वचा पर हल्के धब्बे पड़ जाते हैं, जिन्हें देख कर वह पीला पड़ जाता है। यह कोई भयंकर रोग नहीं है। त्वचा पर हल्के से सफेद दाग होते हैं जिनके चारों ओर त्वचा का सामान्य रंग होता है। इन धब्बों पर उठे हुए बाल भी सफेद हो जाते हैं। यह रोग बहुधा चेहरे, गर्दन, छाती के बीच का भाग, बाहों और हाथ के पिछली ओर देखा जाता है। यद्यपि यह रोग उन व्यक्तियों में पाया जाता है जिनकी थायरायड ग्रन्थि अधिक सक्रिय हो या एड्रिनल ग्रन्थि काम न करती हो और जिन्हें असाध्य पाण्डुरोग और मधुमेह हो, अभी तक यह पता नहीं चल पाया कि इस रोग का मुख्य कारण क्या है। यह ठण्डे प्रदेशों की बजाय गर्म प्रदेशों में अधिक होता है।

इसकी औषधियां हैं : **आर्ज. नाइट्रिकम** (सदा चिंतित रहने वाले और तनाव से पीड़ित रोगियों में इधर उधर होने वाले धब्बे); **आर्सेनिक सल्फ़** (बढ़ती हुई पोटेंसी में कुछ महीने तक दिन में तीन-तीन बार यह दवा ली जाए तो विशेष लाभ होता है); **सोरोलिया कॉर** (दस-दस बूंदें दिन में तीन बार) ; **सल्फ़र** (जहां खुजली हो) ; **थूजा** (जहां रोगी को कोई रोग से बचने के लिए टीके लगाए गए हों या जिसकी त्वचा पर मस्से हों)। इस रोग के लिए ऐलोपैथी में कोई विशेष दवाई नहीं है। त्वचा के रंग का परिवर्तन धीरे धीरे, परन्तु

नाटकीय ढंग से होता है। सबसे पहले हल्के रंग के धब्बे गुलाबी हो जाते हैं और उसके बाद उन धब्बों पर त्वचा के रंग के छोटे छोटे चिकत्ते दिखाई देने लगते हैं। कुछ महीनों के बाद वे चिकत्ते फैल जाते हैं और धब्बे समाप्त होकर आस-पास की चमड़ी के रंग के हो जाते हैं।

टायफाइड या मोतीझरा

टायफाइड के लगभग आधे रोगियों की आयु १५ और २५ वर्ष के बीच होती है। तीस वर्ष के बाद इसकी संभावना घट जाती है और पचास वर्ष के बाद तो यह ज्वर कभी नहीं होता। गर्म और खुश्क मौसम और कम आयु के रोगी टायफाइड के लक्षण हैं।

टायफाइड ज्वर का विशेष कारण तो एक कीटाणु है, जो मोटे डण्डे जैसा होता है और जिसके सिरे गोल होते हैं। यह कीटाणु अंतड़ियों में पलता है और इसलिए इस रोग को आंत्र ज्वर (अंतड़ियों के बुखार) की संज्ञा भी दी जाती है। यह कीटाणु लहू के तापमान में पलता है और उबले हुए पानी में मर जाता है। सूखने पर भी यह कीटाणु नहीं मरता और इसलिए यह रोग धूल या उन वस्तुओं से फैलता है, जो रोगी के मल से दूषित हो गई हों। यह कीटाणु पीने के पानी में एक से दो सप्ताह तक जीवित रहता है और नाली के पानी और गन्दगी में तीन महीने तक पल सकता है। मानवों की अंतड़ियों, तिल्ली और जिगर में इन कीटाणुओं की बस्तियां सी बस जाती हैं।

मानव प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से यह ज्वर फैलाते हैं। दूध में दूषित जल मिला हो या पानी में नाली का पानी मिल जाए तो यह रोग फैल जाता है। जिन व्यक्तियों को यह ज्वर हो चुका हो उनके मल में कई महीनों तक रुक रुक कर इसके कीटाणु निकलते रहते हैं। ऐसे रोगियों की संख्या पांच प्रतिशत तक होती है। ऐसे लोगों को रोग-

प्रसारक की संज्ञा दी जाती है। और यदि ये भोजन, दूध या पानी पहुं-चाने का काम करते हों, तो दूसरे लोगों के लिए खतरा बन जाते हैं।

कीटाणुओं का प्रकोप कुछ दिन से लेकर दो या तीन सप्ताह सा रहता है और थकावट इतनी होती है कि वह सामान्य रूप से अपना काम नहीं कर सकता। सिर में घोर पीड़ा होती है, मुंह का स्वाद बिगड़ा हुआ होता है, भूख नहीं रहती, कंपकंपी आती है, जिसके बाद हल्कासा बुखार हो जाता है, बाहों और टांगों में विशेष रूप से पीड़ा होती हैऔर कभी कभी नक्सीर फूट जाती है। जब रोगी अधिक कमजोर हो जाता है और उसकी हालत बिगड़ जाती है, तो उसे बिस्तर पर लेटना पड़ता है और डाक्टर बुलाया जाता है।

प्रारंभ में इस रोग को बहुधा ज्वर या इन्फ्ल्युएंजा मान लिया जाता है। यदि इस बात का संदेह हो जाए कि रोगी टायफाइड से पीड़ित है तो तुरन्त चिकित्सा प्रारम्भ कर देनी चाहिए। लहू की एक परीक्षा से जिसे विडाल टेस्ट कहते हैं, लगभग एक सप्ताह बाद इस रोग का ठीक निदान होता है। सबसे मुख्य लक्षण यह है कि बुखार धीरे धीरे बढ़ता रहता है और सवेरे से शाम तक एक-दो डिग्री का फर्क पड़ता है। जीभ पर फफूंद सी जम जाती है, मुंह सूख जाता है और कब्ज होजाती है। पहले सप्ताह के बाद रोगी के गाल लाल हो जाते हैं, होंठ और मुंह सूख जाता है और पेट फूल जाता है जिस पर हाथ लगाने से तनिक पीड़ा होती है। रोगी को दिन में दो या तीन बार पाखाने जाना पड़ता है और उसके मल का रंग हल्के भूरे रंग का और (मटर के रस जैसा दस्त) और मूत्र गहरे रंग का होता है।

दसवें दिन तक गुलाबी रंग के दाने त्वचा पर निकल आते हैं (इसीलिए इसका नाम मोतीझरा है)। दबाने से ये दाने दब जाते हैं, लेकिन फिर उभर आते हैं। सबसे पहले ये दाने पेट पर दिखाई पड़ते

हैं और उसके बाद छाती के निचले हिस्से, बाहों के पीछे और टांगों पर होते हैं।

दूसरे सप्ताह तक बुखार वैसे ही बना रहता है, यद्यपि सबेरे थोड़ा कम हो जाता है। संभव है कि सिर दर्द कुछ कम हो जाए, परन्तु रोगी अधिक कमजोर हो जाता है और दूसरे लक्षण अधिक प्रचण्ड हो जाते हैं : होंठ फट जाते हैं, पेट फूल जाता है और पतले और दुर्गन्धयुक्त दस्त आने की प्रवृत्ति हो जाती है। नाड़ी अधिक तीव्रता से चलने लगती है और टायफाइड की अवस्था अधिक स्पष्ट हो जाती है। रोगी किसी बात की ओर ध्यान नहीं देता—उसमें उदासीनता का भाव भर जाता है।

तीसरे सप्ताह में रोगी की अवस्था में सुधार दिखाई पड़ता है। बुखार कम हो जाता है, जीभ साफ हो जाती है और भूख लगने लगती है। चौथे सप्ताह में संभव है कि शरीर का तापमान सामान्य हो जाए और कुछ समय तक वैसा ही बना रहे। यदि इस रोगका प्रकोप बहुत बढ़ जाए तो रोगी मूर्छित सा हो जाता है, उसकी नाड़ी और हृदय की धड़कन बहुत मद्धिम हो जाती है और कई बार अनायास ही मल-निकल जाता है।

जब इस ज्वर का प्रकोप बहुत अधिक हो तो ज्वर उतरने के बाद स्वास्थ्य लाभ में बहुत समय लगता है। प्रारंभ में तापमान सामान्य से कम हो जाता है और अस्थिर रहता है। हृदय की धड़कन मद्धिम पड़ जाती है और थोड़े से परिश्रम या उत्तेजना के परिणाम-स्वरूप नाड़ी तेज चलने लगती है। लेकिन भूख सामान्य हो जाती है और वजन तेजी से बढ़ने लगता है। एक सामान्य लक्षण यह है कि अत्यधिक दुर्बलता के कारण बाल झड़ जाते हैं।

इस ज्वर के पांच से पन्द्रह प्रतिशत तक रोगियों को पहले दौरे के बाद या उसके एक दो सप्ताह बाद फिर बुखार आने लगता है।

पहले जैसे लक्षण फिर उत्पन्न हो जाते हैं, यद्यपि उनका प्रकोप पहले की अपेक्षा कम होता है। इस बार बुखार शीघ्र ही अपनी सीमा तक पहुंच जाता है, जबकि पहली बार उस तापमान तक पहुंचने में दस से चौदह दिन तक लगते हैं।

ऐसे रोगी को अलग रखना चाहिए और उसके मल-मूत्र और थूक आदि में कृमि नाशक दवाइयां डालनी चाहिए। यह भी आवश्यक है कि रोगी के कपड़े और उसके बिस्तर की चादरों को भी कृमि नाशक दवाइयों से धोया जाय। उसके साथ ही उसके बर्तनों, थर्मामीटर, उसकी हाजती, मूत्र के बर्तन और थूकदान को भी कृमि मुक्त किया जाय। सबसे अच्छा तो यह होगा कि उसके मल-मूत्र में कार्बोलिक एसिड जैसी कोई कृमि नाशक दवाई डाल दी जाए और उसे कई घण्टे तक पड़ा रहने दिया जाय और उसके बाद उसे नाली में फेंका जाय। रोगी को चाहिए कि अपना थूक कपड़े के छोटे छोटे टुकड़ों से पोंछें जिन्हें बाद में जला दिया जाय। रोगी के कपड़े और बिस्तर की चादरें धोबी के पास भेजने से पहले उन्हें कृमि नाशक दवाई से साफ करना चाहिए। नर्सों को रोग से बचने की सावधानी बरतनी चाहिए और स्वयं अपना बचाव करना चाहिए। इस रोग के महामारी के रूप में फैलने को रोकने के लिए यह आवश्यक है कि पीने का पानी कीटाणुओं से मुक्त हो और नालियों की अच्छी व्यवस्था हो। पीने के पानी और दूध को उबाल लेना चाहिए। सलाद और खीरा आदि, जिन्हें उबाला नहीं जाता, नहीं खाने चाहिए।

टी. ए. बी. नाम का एक टीका लगा कर टायफाइड को रोका जा सकता है। या, एक होम्योपैथिक दवाई **टायफायडीनम–२००** की दो-दो खुराकें दो दिन तक देनी चाहिए।

कीटाणुओं से बचने के लिए हर प्रकार की सफाई रखना आवश्यक है। हर चार घण्टे बाद थर्मामीटर लगाकर देखना चाहिए कि

बुखार कितना है और उसका एक चार्ट बनाना चाहिए। रोगी को अधिक समय तक एक ही करवट नहीं लेटना चाहिए, जिससे कि उसकी त्वचा पर फोड़े न हो जाएं। गरिष्ट भोजन नहीं करना चाहिए। हां, थोड़ी थोड़ी मात्रा में दूध पिया जा सकता है। होम्योपैथी में टायफाइड के लिए निम्नलिखित औषधियां हैं : **आर्सेनिक** (अत्यधिक थकावट और दुर्बलता, प्यास जो दो-तीन घूंट पानी पीकर शान्त हो जाती है, होंठ और जीभ का सूखा हुआ होना, मुंह के अन्दर की त्वचा छिली हुई होना और बहुत रंगदार लेकिन कम मात्रा में मूत्र); **बेप्टीसिया** (हर वक्त नींदसी आना, चेहरे से ऐसे लगता है जैस होश न हो और दुर्गन्धयुक्त स्राव); **ब्रायोनिया** (कब्ज, नींद आना और अत्यधिक प्यास); **क्रोटैलस होर** (टायफाइड की बाद की अवस्थाओं में जब रक्त स्राव होता है); **म्यूरैटिक एसिड** (मांस पेशियों की कमजोरी और संभ्रम; जीभ सूखी हुई और चमड़े जैसी लगे)।

वजन :

आज के युग में जब हर बात आंकड़ों के माध्यम से कही जाती है किशोर भी आंकड़ों की ही चिन्ता करते हैं, विशेष कर तब जबवे उनसे संबंधित हों। वे न तो अधिक दुबले दीखना चाहते हैं, न अधिक मोटे— चाहते हैं कि वे वैसे ही लगें जैसा उन्हें लगना चाहिए (चार्ट १)

वजन कैसे बढ़ाया जाय : सबसे पहले तो यह देख लेना चाहिए कि कहीं यक्षमा, पेट के कीड़ों या मानसिक तनाव के कारण तो वजन नहीं घट रहा। यदि इनमें से कोई भी समस्या नहीं है और फिर भी आप अपना वजन बढ़ाना चाहते हैं तो निम्नलिखित औषधियां लीजिए :

अलफलफा (खाने से आधा घण्टा पहले इसकी बीस बूंदें पानी में मिलाकर पी ली जाएं तो पाचन शक्ति बढ़ती है और साथ ही वजन

बच्चे		पुरुष			स्त्रियाँ	
आयु (वर्ष, महीने)	वजन (किलो.)	आयु	कद मझले शरीर का	वजन (किलो)	कद	वजन (किलो) मझले शरीर का
०	३.४	३९ (३ १/४)	१५ ५' १"	५३.५–५८.५	४' ८"	४३.५–४८.५
३ (१/४)	५.७	४२ (३ १/२)	१५.५,५' २"	५४.९–६०.३	४, ९"	४४.५–४९.९
६ (१/२)	७.४	४५ (३ ३/४)	१६ ५' ३"	५६.२–६१.७	४' १०"	४५.८–५१.३
९ (३/४)	८.९	४८ (४)	१६.५ ५' ४"	४७.६–६३	४' ११"	४७.२–५२.६
१२ (१)	९.९	५१ (४ १/४)	१६.९५५' ५"	५९–६४.९	५, ००"	४८.५–५४
१५ (१ ३/४)	१०.६	५४ (४ १/२)	१७.४ ५' ६"	६०.८–६६.७	५' १"	५१.३–५७.२
१८ (१ १/२)	११.३	५७ (४ ३/४)	१७.९ ५' ७"	६२.६–६८.९	५, २"	५१.३–५७.२
२१ (१ ३/४)	११.९	६० (५)	१८.४ ५' ८"	६४.४–७०.८	५' ३"	५२.६–५९
२४ (२)	१२.४		५'०९"	६६.२–७२.६	५' ४"	५४.४–६१.२
२७ (२ ३/४)	१२.९		५'.१०"	६८.०–७४.८	५'०५"	५६.२–६३
३० (२ १/२)	१३.५		५'.११"	६९.–७७.१	५'.६"	५८.१–६४.९
३३ (३)	१४		६'.००"	७१.७–७९.४	५'.७"	५९.९–६६.७
३६ (३)	१४.५					

भी; कॉड मछली के जिगर के तेल से तैयार की गई दवाई **ओलियम जे–६ एक्स** भी सहायक होता है। यह सभी जानते हैं कि कॉड मछली का तेल शक्तिवर्द्धक है और इससे बनी होम्योपैथिक औषधियां कुछ महीने तक दिन में तीन बार ली जाए तो शरीर का वजन बढ़ जाता है।

वजन कम कैसे करना चाहिए : लड़की की कमर एक इंच बढ़ जाए तो उसकी तो जैसे जान ही निकल जाती है और युवक के पेट पर मटका बंध जाए तो उसे चिन्ता होती है। सामान्य से अधिक वजन की समस्या किशोरावस्था से प्रारम्भ होकर मध्यावस्था तक रहती है। वजन कम करने के लिए दूध, लिमिकल विस्कुट, भाप से नहाना जैसे उपायों का सहारा लिया जाता है।

मोटापे के बारे में कुछ बातें जान लेनी चाहिए। कुछ नस्लें, जैसे कि डच, जर्मन और भारतीय सामान्यतया मोटापे का शिकार होती हैं। दूध पीते बच्चों, किशोरों, चालीस वर्ष के बाद पुरुषों और रजो-निवृत्ति और गर्भावस्था के दौरान या उसके बाद महिलाओं में मोटापा आता है। यदि आप शरीर के आधारभूत संतुलन को बिगाड़ देंगे तो आपका मोटा होना अनिवार्य है। दूसरे शब्दों में, यदि आप उससे अधिक खाते हैं जितना कि आपके शरीर के लिए आवश्यक है, तो चर्बी अवश्य बढ़ेगी। इसके अतिरिक्त थायराइड ग्रन्थि, पीयूषग्रन्थि और अण्डकोषों के विकारों के कारण मोटापे की प्रवृत्ति उत्पन्न होती है। चर्बी सामान्यतया पेट, नितम्बों, जंघाओं और हृदय तथा गुर्दे जैसे आंतरिक अंगों पर जमा होती है।

थोड़ासा मोटापा हो तो उसके कोई बुरे लक्षण नहीं होते, परन्तु लोग अपने शरीर को अधिक सुन्दर बनाने के लिए अपना वजन कम करना चाहते हैं। यदि मोटापा आ जाए और अधिक हो तो व्यक्ति के कार्यकलाप में रुकावट आती है। ऐसे लोग यह शिकायत करते सुने

जाते हैं कि उन्हें चलने फिरने में कठिनाई होती है, क्योंकि उनमें इतनी शक्ति नहीं कि अपनी स्थूल काया को लिए लिए फिरें। कुछ और लोग मोटापे में थोड़ा सा श्रम करके ही हांपने लगते हैं। चर्बी की तहें जम जाने के कारण शरीर के कुछ अंग एक-दूसरे से रगड़ खाते रहते हैं और वहां पर एग्जीमा हो जाता है। जिन व्यक्तियों का वजन अधिक हो उन्हें हृदय रोग और मधुमेह होने की अधिक आशंका होती है।

भोजन : अधिकतर लोग इसलिए मोटे होते हैं कि उनकी खाने-पीने की आदतें गलत होती हैं। मोटापा दूर करने के लिए सबसे आवश्यक बात यह है कि अपना खाना-पीना सुधारा जाय। यदि किसी व्यक्ति का वजन थोड़ा सा भी बढ़ा है तो उसके भोजन में कार्बोहाइड्रेट (जैसे चीनी आदि) और घी तथा तेलों की मात्रा कम कर देनी चाहिए और उसे पहले से अधिक व्यायाम करना चाहिए। बैंटिंग चिकित्सा, जो आजकल बहुत लोकप्रिय हो रही है, उसका यही आधार है।

परन्तु जो व्यक्ति बहुत मोटा हो उसके लिए अधिक कठोर कार्रवाई आवश्यक हो जाती है और वह यह है कि एक तो उसे भूखा रखा जाय और दूसरे खाने के लिए केवल फल दिए जाएं।

भूखा रखना : सारा दिन पीने को चाहे कुछ भी दीजिए लेकिन खाने के लिए कुछ मत दीजिए। प्रारंभ में सप्ताह में एक दिन भूखा रहा जाय और उसके बाद अधिक दिन तक। प्रारंभ में ऐसा करने से वजन में एक से दो पौंड तक की कमी होगी और रोगी की भूख भी कम हो जाएगी।

फलों पर जीवित रहना : इसका मतलब यह है कि सीमित मात्रा में फल और सब्जियां खाई जायं। इसमें अधिक कष्ट नहीं होता क्योंकि पेट में कुछ जाता ही है और चीनी आदि के खाने से लहू में चीनी की मात्रा सामान्य से कम नहीं हो जाती। चर्बी (अर्थात् घी और तेल) कम से कम खाई जाए, क्योंकि इसमें बहुत अधिक शक्ति

होती है और मरीज के शरीर पर चर्बी की तहें तो पहले से ही जमी हुई होती हैं । इसलिए मक्खन, मलाई, चाकलेट और तेल नहीं खाने चाहिए ।

ऐसे लोग भी हैं जो नाश्ता और दोपहर का खाना तो जितना खाना चाहिए उतना ही खाते हैं लेकिन रात के समय डट कर खाते हैं। कुछ ऐसे हैं जो दिनभर कुछ न कुछ खाया ही करते हैं। कुछ लोग सिनेमा, या दूरदर्शन देखते समय कुछ न कुछ चबाते रहते हैं । जो लोग तनाव क्रोध, चिन्ता या निराशा से ग्रस्त हों, उनमें भी अधिक खाने की प्रवृत्ति रहती है । इन सहज या भावनात्मक तत्वों के अतिरिक्त हमारे परिवेश में कुछ ऐसे तत्व होते हैं, जो हमारे खाने पीने पर प्रभाव डालते हैं ।

भोजन देख कर या उसकी सुगन्धि से, खाने की किसी वस्तु का विज्ञापन देख कर भूख कुछ चमक उठती है । ऐसे लोग जो इन तत्वों से प्रभावित होते हैं, वे अपने शरीर की आवश्यकता से अधिक खा जाते हैं । जो लोग बहुत जल्दी जल्दी खाते हैं उनमें भी अधिक खाने की प्रवृत्ति होती है । ऐसे लोगों को धीरे धीरे खाना चाहिए ।

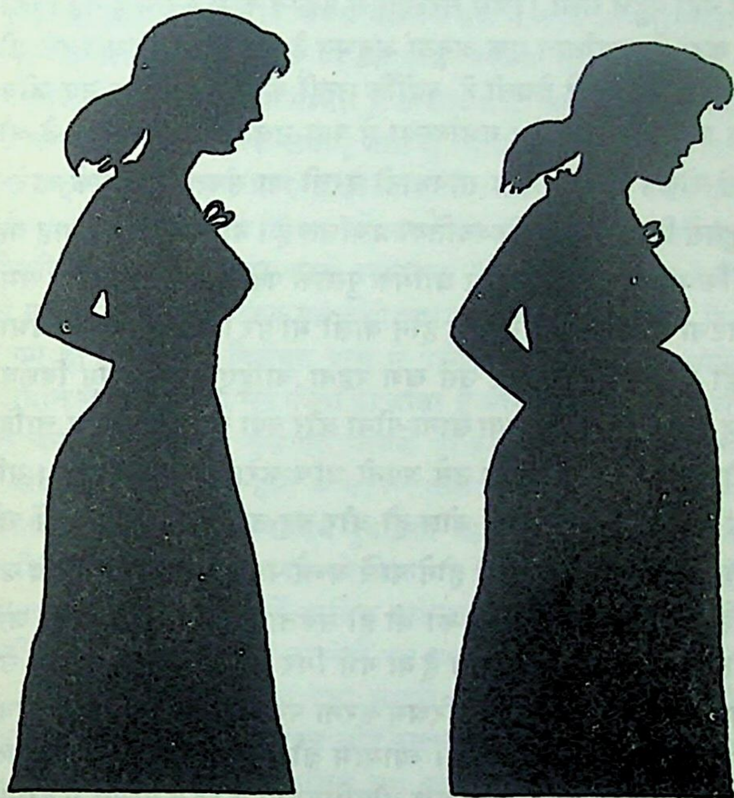
यदि मोटापा थायरायड ग्रन्थि के विकार के कारण हो तो **फयूकस—६** और **थायरोडीनम—६** जैसी औषधियां लेनी चाहिए जिनसे इस ग्रन्थि का विकार दूर हो जाता है और वजन कम हो जाता है। यदि इनकी खुराकें जारी रखी जाएं तो कोई प्रतिकूल प्रतिक्रिया नहीं होती । यदि भोजन करने से पहले **फाइटोलाका बेरी मदर टिंक्चर** की दस से पन्द्रह बूंदों को पानी में मिला कर पी लिया जाए तो भूख कम हो जाती है और अतिरिक्त चर्बी घुल जाती है। लेकिन बहुतसे ऐसे मोटे लोग देखे गए हैं जो अपना इलाज करवाने की बात कभी सोचते ही नहीं । कुछ ऐसे हैं जो बीच में ही इलाज छोड़ देते हैं । जिनका वजन कम हो जाता है वे फिर बड़ी तेजी से मोटे होने लगते हैं । इसलिए मोटापे का इलाज

न केवल वजन घटाने में है बल्कि उसे कम रखने में है। यह तभी हो सकता है जब अपनी रहन-सहन की आदतें बदल ली जाएं।

आने वाले वर्षों और बीते हुए वर्षों की तुलना में किशोरावस्था की यह दस वर्ष की अवधि सम्भवतः सबसे अधिक कष्टों से मुक्त होती है। जीवन का रस इतनी तेजी से दौड़ता है और उसके रास्ते में इतने आकर्षण आते हैं कि छोटे-मोटे रोगों से किशोरों का उत्साह कम नहीं होता। और फिर, ये रोग अधिक गंभीर भी नहीं हैं। बचपन में जो संक्रमण रोग हुआ करते थे उनका समय तो बीत गया और अब छोटी-मोटी तकलीफें हैं जिनसे निपटा जा सकता है परन्तु जब युवक कालेज से पढ़ कर निकलता है, नौकरी तलाश कर लेता है और प्रतिस्पर्द्धात्मक जीवन की दौड़ में लग जाता है, तो उसके बाद वह विवाह कराकर पुरुष के नाते पूरी जिम्मेदारी अपने कन्धों पर ले लेता है। उसके बाद उसके जीवन की एक जटिल अवस्था प्रारम्भ होती है। इसके लिए उसे अनजानी मुसीबतों के लिए तैयारी करनी पड़ती है। उसे न केवल अपने स्वास्थ्य की चिन्ता होती है बल्कि भविष्य में भी भला चंगा रह कर ही जीवन बिताना चाहता है। ऐसा न हो तो वह तीस या पैंतीस वर्ष की आयु के बाद ही ढलना प्रारम्भ कर देगा और उसके जीवन का सारा कार्यकलाप बीस और तीस वर्ष की आयु के बीच के एक दशक तक ही सीमित होकर रह जाएगा। मानव जीवन की यह तीसरी अवस्था सचमुच उत्साहवर्द्धक है।

अध्याय ४

गर्भावस्था



जिन ९ महीनों में बच्चा मां के पेट में पलता है उसे मानव जीवन का सबसे स्वर्णिम काल माना जाता है। इस अवधि में जीवन की कोख में एक नया जीवन पनपता है और एक मानव का रूप धारण करता है। मानव ने विज्ञान के माध्यम से गर्भाधान को मां की कोख से निकाल कर प्रयोगशाला में ले जाने का प्रयत्न किया है। परन्तु वह प्रकृति की गर्द को भी नहीं पहुंच सका। जिस सरलता से प्रकृति काम करती है वह विज्ञान में कहां ? गर्भाधान एक अनूठा अनुभव है, जिसे स्त्रियां आश्चर्य और श्रद्धा की दृष्टि से देखती हैं, क्योंकि उन्हीं की कोख में एक नए जीवन का प्रादुर्भाव होता है। गर्भावस्था में क्या उलट फेर हो सकता है और उसे रोकने के लिए क्या सावधानी बरती जा सकती है, इसके बारे में बहुतसे विश्वास और किंवदंतियां प्रचलित हैं। नानी मां की सलाह यही है कि गर्भिणी उन दिनों में धार्मिक पुस्तकें पढ़े, इसलिए नहीं कि समय काटना है, बल्कि इसलिए कि होने वाली मां पर किसी तनाव का प्रभाव नहीं होना चाहिए और उसे खुश रहना चाहिए। स्त्री रोग विशेषज्ञ यह बताते हैं कि उसे क्या खाना-पीना और क्या व्यायाम करना चाहिए और यह भी कहते हैं कि उसे अपनी जांच कराते रहना चाहिए। यदि मां के मस्तिष्क पर कोई बोझ हो और वह तनाव की अवस्था में रहे, तो उसका कुप्रभाव उसके होने वाले बच्चे पर पड़ सकता है। यदि उसे कोई रोग हो तो वह बच्चे को भी हो सकता है। कोई दुर्घटना हो जाए तो बच्चा विकृत हो सकता है या गर्भ गिर सकता है। इस प्रकार उस क्षण की तैयारी में काफी परिश्रम करना पड़ता है, जब एक नया जीवन संसार में पदार्पण करता है। व्यायाम और पथ्य से प्रसव में सहायता होती है, परन्तु उसके लिए कुछ औषधियां भी हैं। इस मामले में होम्योपैथी एक दयावान और समझबूझवाले डाक्टर की भूमिका निभाती है

और मां को प्रसव से उत्पन्न होने वाली समस्याओं का सामना करने में सहायता कर सकती है।

गर्भाधान से पहले

सबसे पहले होने वाली मां को ही पता चलता है कि कोई असाधारण बात हो गई है, विशेष कर तब जब वह पहले किसी बच्चे की मां बन चुकी हो। लेकिन जिस युवती को अभी तक मां बनने का अवसर प्राप्त न हुआ हो और वह देखे कि उसके मासिक धर्म में कोई अनियमितताएं उत्पन्न हो गई हैं, उसके लिए यह अनुमान लगाना कठिन हो जाता है कि उसे गर्भ रह गया है। इस मामले में डाक्टर से ही सलाह लेनी चाहिए कई बार हारमोन के टीके लगाए जाते हैं जिससे एक सप्ताह में—यदि गर्भ न हो—मासिक धर्म प्रारम्भ हो जाता है। लेकिन ऐसा देखा गया है कि इस टीके से कोख में पल रहे बच्चे को हानि पहुंच सकती है। गर्भिणी के मूत्र की परीक्षा करके स्पष्ट रूप से पता चल सकता है कि उसे गर्भ है या नहीं। लेकिन यह तभी चलता है जब गर्भ रहे ४५ दिन हो गए हों। स्त्री रोग विशेषज्ञ हाथ से परीक्षा कर सकता है, क्योंकि गर्भाधान में गर्भाशय का मुंह नीला हो जाता है और गर्भाशय पिलपिला और बड़ा हो जाता है। कुछ ऐसे मामले भी होते हैं, जहां स्त्रियां गर्भ की संभावना से चिंतित होने के कारण अनायास ही मासिक धर्म से वंचित हो जाती हैं। अविवाहित युवतियां पहले इधर उधर की बात करती हैं, जुकाम और सिर दर्द की शिकायत करती हैं और फिर उन्हें बताना ही पड़ता है कि उन्हें मासिक धर्म नहीं हुआ है और डाक्टरसे पूछती हैं कि कहीं उन्हें गर्भ तो नहीं रह गया।

गर्भ है या नहीं इसका पता लगाने के लिए होम्योपैथी में दो औषधियां, **काली फास–६ एक्स** और **पलसाटिला–३०** दी जाती हैं। कुछ ही समय बाद या तो मासिक धर्म प्रारम्भ हो जाएगा और या इस बात की पुष्टि हो जाएगी कि गर्भ रह गया है।

गर्भाधान के दौरान

मान लीजिए कि गर्भ है या नहीं इसकी परीक्षा कर ली गई है और यह पता चल गया है कि गर्भ है। सुविधा के लिए हम ९ महीनेकी इस अवधि को तीन भागों में बांटेंगे।

पहले तीन महीने

जन्मजात रोग : पहले तीन महीने की अवधि अत्यन्त महत्वपूर्ण होती है, क्योंकि इन्हीं दिनों मस्तिष्क की विकृति और जन्मजात हृदय रोग मां से उसके बच्चे तक पहुंचते हैं। इसलिए अच्छा यही है कि इस काल में तीव्र प्रभाव डालने वाली कोई औषधि न दी जाए, जब तक कि डाक्टर और विशेषज्ञ इसकी राय न दें। इन्हीं तीन महीनों में सम्भोग भी नहीं करना चाहिए, विशेषकर उन स्त्रियों को जिनमें गर्भपात की प्रवृत्ति हो। गर्भावस्था के अतिम दो महीनों में भी संभोग से बचना चाहिए, क्योंकि इन्हीं दिनों रोग के कीटाणु पेट में पल रहे बच्चे तक पहुंच सकते हैं। परन्तु यही वह समय है जब होम्योपैथी की सहायता से मां के शरीर के आधारभूत ढांचे को बदलने के लिए औषधियां देनी चाहिए, जिससे कि उसकी रोग से लड़ने की शक्ति बढ़ाई जा सके, उसकी कोख में पलने वाले बच्चे को रोग मुक्त रखा जा सके और मां से बच्चे तक किसी पुश्तैनी रोग के पहुंचने को रोका जा सके।

यह किस प्रकार होता है? हम पहले ही बता चुके हैं कि होम्योपैथी में कौनसी तीन मूल अवस्थाएं हैं, जिन्हें रोग की जड़ माना जा सकता है। वे हैं उपदंश, साइकोसिस और सोरा। इन्हें दोष की संज्ञा दी जाती है और ये मानव शरीर में बसे रहते हैं। माता-पिता से उनके बच्चों तक इन्हीं का प्रभाव पहुंचता है और विभिन्न प्रकार के रोगों को जन्म देता है। मां से बच्चे तक पहुंचने वाले रोगों की शृंखला को तोड़ने का सबसे उपयुक्त समय वह है, जब वह गर्भिणी हो। यदि आधारभूत

दोष को दूर करने की औषधि उस समय मां को दे दी जाए तो उससे उत्पन्न होने वाला रोग बच्चे तक नहीं पहुंचेगा। उपदंशजनित दोष का निराकरण करने के लिए दो औषधियां हैं : नेट्रम मरक्युरियस और नाइट्रिक एसिड। साइकोसिस के लिए नैट्रम सल्फ और थूजा का प्रयोग किया जा सकता है, जबकि सोरा का प्रभाव सोरीनम और सल्फ़र दूर करती हैं।

गर्भपात : गर्भ के पहले तीन महीने का समय बड़ा महत्वपूर्ण होता है क्योंकि इसी काल में खेड़ी (वह झिल्ली जिसमें शिशु लिपटा रहता है) बनती है। यह आवश्यक है कि इस काल में गर्भिणी आराम करे और कठोर परिश्रम न करे जिसकी उसे आदत नहीं है, क्योंकि गर्भपात का खतरा रहता है। गर्भपात के बहुत से कारण हैं परन्तु सबसे बड़ा कारण पल रहे बच्चे के शरीर में विकृतियां हैं और प्रकृति ऐसी विकृतियों का निराकरण करने के लिए गर्भपात में सहायक होती है। परन्तु कुछ स्त्रियों को बार-बार गर्भपात होता है और उस दशा में डाक्टर के लिए एक समस्या उत्पन्न हो जाती है। होम्योपैथी की सहायता से न केवल गर्भपात पर नियंत्रण रखा जा सकता है, बल्कि उसकी प्रवृत्ति को भी दूर किया जा सकता है। इसके लिए कौनसी दवाई दी जाए, यह इस बात पर निर्भर करता है कि वह किस प्रकार का है और उसका कारण क्या है।

उदाहरण के लिए,
भय के मारे गर्भपात के लिए **एकोनाइट**
कमजोरी के कारण गर्भपात के लिए **एलिट्रिस**
चोट लगने के बाद गर्भपात के लिए **आर्निका**
अधिक परिश्रम करने के बाद गर्भपात के लिए **ऐरिग्नोन**
उत्तेजना के बाद होने वाले गर्भपात के लिए **जेलसीमियम**

एकोनाइट देना उस दशा में लाभकारी होगा, जब रास्ता चलते

कोई धक्का पहुंचा हो। मान लीजिए कि कोई गर्भिणी सड़क पार करते करते एकदम डर गई है, क्योंकि वह किसी कार से टकराते टकराते बची है। कार उससे बाल भर की दूरी पर रुक गई है और उसे चोट नहीं पहुंची। इस प्रकार के धक्के स गर्भपात हो सकता है, परन्तु यदि उसे तुरन्त **एकोनाइट** दे दिया जाए, तो गर्भपात का खतरा नहीं रहेगा।

परन्तु यदि उसे चोट पहुंची हो और लहू बहने लगा हो तो आर्निका अधिक उपयुक्त होगी, क्योंकि यह शारीरिक चोट है, मानसिक आघात नहीं।

जिन स्त्रियों में बार-बार गर्भपात की प्रवृत्ति रहती है, उनके लिए **कालोफाइलम** लाभकारी पाई गई है। जिन स्त्रियों में उपदंश की प्रवृत्ति हो, उन्हें **मरक्युरियस** अधिक लाभ करती है और यदि उनके गर्भपात का खतरा हो तो **सबाइना** देनी चाहिए।

जी मिचलाना : गर्भाधान का एक सामान्य लक्षण बहुधा यह होता है कि सवेरे जी मिचलाता है। लेकिन यह बात याद रखनी चाहिए कि गर्भ में सदा जी नहीं मिचलाता। जब गर्भ हुए कुछ ही दिन हुए हों तो थोड़ा बहुत जी मिचलाता है, लेकिन इसमें चिन्ता की कोई बात नहीं। परन्तु यदि यह प्रवृत्ति बनी रहे तो उपचार करना आवश्यक हो जाता है। होम्योपैथी में इसके लिए बहुत सी दवाइयां हैं, लेकिन रोग के लक्षणों के अनुसार सर्वोत्तम दवाई का चुनाव करना आवश्यक है। यदि रसोई से आने वाली व्यंजनों की सुगन्ध गर्भिणी के लिए इतनी असह्य हो जाए कि वह उठ कर घर से बाहर चली जाए तो **कोलकियम** अधिक लाभकारी है। **एपिकाक** इसी नाम के एक पौधे की जड़ से तैयार की जाती है जिससे एमिटीन नाम का क्षारद्रव्य तैयार किया जाता है। एलोपैथी में एमिटीन से बनी दवाइयां पेचिश (आमातिसार) के लिए दी जाती है। परन्तु होम्योपैथी की यह दवाई लगातार जी मिचलाने के लिए लाभकारी है, जब थूक बहुत आता हो लेकिन जीभ साफ हो।

लैक्टिक एसिड पीले चेहरे वाली ऐसी स्त्रियों के लिए गुणकारी है, जिनके शरीर में खून की कमी हो और जिन्हें कुछ खा लेने से जी मिचलाने से मुक्ति मिलती हो। **सिम्फोरीकार्पस रेसमोसा**–३० तब देनी चाहिए जब रोगिणी को खाद्य पदार्थों के प्रति अनिच्छा का भाव हो, कब्ज़ रहती हो और जिसका लगातार जी मिचलाता हो। ऐसी रोगिणी को चलने-फिरने से अधिक उल्टी आने लगती है।

दूसरी और तीसरी तिमाही :

गर्भाधान की दूसरी तिमाही में सामान्यतया कम समस्याएं होती हैं। इन दिनों लहू और मूत्रादि की कई परीक्षाएं करवा लेनी चाहिए जिससे कि लहू के **आर. एच.** तत्व, **वी. डी. आर. एल.,** और **रक्त चाप** का पता चल सके। इन परीक्षाओं से यह पता चल जाएगा कि कहीं गुर्दे का कोई रोग तो नहीं और रक्त चाप बढ़ी हुई तो नहीं? मां को कोई रोग हो तो उसका कुप्रभाव उसकी कोख में पलनेवाले बच्चे पर पड़ सकता हो, चाहे वह रोग पुश्तैनी हो या मां को हुआ हो। उदाहरण के लिए, यदि होने वाली मां को जर्मन खसरा या चेचक निकल आए तो उसका गर्भपात हो सकता है। यदि उसे पीलिया हो जाए तो मरा हुआ बच्चा पैदा हो सकता है। यदि मां को कोई रतिरोग हो, तो संभव है कि बच्चा जन्मजात उपदंश का रोगी हो। मधुमेह के कारण बच्चे के विकास में बाधा हो सकती है। होम्योपैथी से इन सभी रोगों का इलाज किया जा सकता है। इसी प्रकार गर्भाधान के अन्य कष्टों जैसे कि कब्ज, अम्लता, बवासीर, पीठ का दर्द, नसों का नीला हो जाना आदि।

पीठ का दर्द : गर्भावस्था के कुछ अंतिम महीनोंमें बच्चा गर्भ में ही हिलने डुलने लगता है क्योंकि वह संसार में पदार्पण करने की तैयारी कर रहा होता है। बच्चे के बोझ से मां के शरीर का निचला भाग आगे

को झुक जाता है और वह अपने पेडू को थोड़ा और ऊपर उठाकर उस बोझ को वहन करने की चेष्टा करती है। उसके साथ ही वह अपनी पीठ को तनिक पीछे को झुकाती है जिस कारण पीठ में दर्द होने लगता है। होम्योपैथी में गर्भिणी के पीठ दर्द के लिए **एस्क्यूलस, काली कार्ब, रस टॉक्स** और अन्य दवाएं दी जाती हैं। **एस्क्यूलस** तब दी जाती है जब पीठ दर्द के साथ-साथ शरीर के निचले अंग भारी लगें। **काली कार्ब** देने का समय तब है, जब पीठ के निचले हिस्से में कमजोरी का आभास हो। **रस टॉक्स** उन मामलों में उपयोगी है, जब चलने से पीठ का दर्द बढ़ जाता है, लेकिन कुछ समय चलते रहने से कम हो जाता है। गर्भिणी बैठे रहने के बाद उठती है तो पीठ में दर्द होता है, लेकिन जब वह डग भरने लगती है तो दर्द गायब हो जाता है।

कब्ज : गर्भिणी स्त्रियों को कब्ज इस कारण होती है कि गर्भ के कारण फूले हुए गर्भाशय का दबाव गुदा पर पड़ता है। इसके कारण पेडू के क्षेत्र में बहने वाले रक्त की मात्रा कम हो जाती है। होने वाली मां को पानी बहुत पीना चाहिए और सलाद खाना चाहिए जिससे कब्ज में लाभ होगा और जुलाब लेने से बचना चाहिए। **पैराफीन** जैसे कुछ जुलाब तो हानिकारक माने जा सकते हैं, क्योंकि वे आमाशय की तह से चिपट जाते हैं और भोजन को पचाने में कठिनाई होती है।

ऐसे मामलों में यदि जुलाब से कब्ज दूर की जाय, तो मां को चाहे लाभ हो, लेकिन उसकी कोख में पलने वाला बच्चा विटामिनों और खनिज तत्वों से वंचित हो जाता है। गर्भिणियों की कब्ज दूर करने के लिए होम्योपैथी का सहारा लिया जाए, तो उन्हें बार बार अनीमा देने की आवश्यकता नहीं होती, जिसके कारण बहुधा गुदा के आस-पास दरारें पड़ जाती हैं या मांस फट जाता है। इस कष्ट के लिए निम्नलिखित होम्योपैथिक दवाइयां दी जाती हैं : **एल्यूमीना** (जहां पतले मल के निष्कासन के लिए भी बहुत जोर लगाना पड़े); **ओपियम** (जब कई

दिन तक शौच की हाजत न हो और मल कठोर काले रंग की गेंदों के समान हो) ; **सिना** (ऐलोपैथी में बहुत सी जुलाब की दवाओं में यह पदार्थ डाला जाता है। परन्तु यदि इसे तीसरी पोटेंसी में दिया जाय तो पेट साफ हो जाता है और कोई अन्य कष्ट नहीं होता) ; **सीपिया** (इसका लक्षण यह है कि पेट ठस हो गया हो और ऐसा लगे कि गुदा में कोई गेंद फंसी हुई है और मल बड़ी बड़ी कठोर मींगनों के रूप में बाहर आए जो देखने में ऐसे लगे मानों गोंद से जोड़ दी गई हों) ।

दांतों का क्षय : गर्भिणियों में दांतों के क्षय की थोड़ी प्रवृत्ति रहती है जिस कारण बार-बार दांतों में पीड़ा होती है। इसका कारण यह है कि मां की कोख में पल रहे बच्चे को कैल्शियम की अधिक आवश्यकता होती है। यदि गर्भावस्था में दांत निकलवाने की आवश्यकता पड़े तो इसके बीच की अवधि में या उससे पहले, बेहोश करने वाली दवाई देकर ही दांत निकालना चाहिए, लेकिन साढ़े चार-पांच महीने के बाद दांत निकालवाना ठीक नहीं है। हां, दांतों की सफाई आदि या उनके छेद भरने की क्रिया किसी भी समय की जा सकती है। खतरा दांत निकलवाने में नहीं है बल्कि इस बात में है कि बेहोश करने वाली दवाई कहीं कोख में पलने वाले बच्चे की सांस न रोक दे। गर्भावस्था में दांत और मुंह सदा साफ रखना चाहिए। दांतों के कष्टों के लिए होम्योपैथी में गर्भिणी के लिए निम्नलिखित औषधियां दी जाती हैं : **कैमोमिला** (जब वह दांतों की असह्य पीड़ा के कारण चिड़चिड़ी हो और पीड़ा कोई गर्म चीज पीने से बढ़ जाती हो) ; **कॉफ़िया** (जब ठण्डे पानी का घूंट भर लेने से पीड़ा कुछ समय के लिए कम हो जाए), **क्रियोसोट** (जब दांत का दर्द उसमें कीड़ा लग जाने से हो) ; **मग्नेशिया कार्ब** (जब पीड़ा रात में और कोई ठण्डी चीज पीने से बढ़ जाए) ; **प्लैनटैगो** (यह दवाई दांतों पर लगाई जाए तो पीड़ा कम हो जाती है) ।

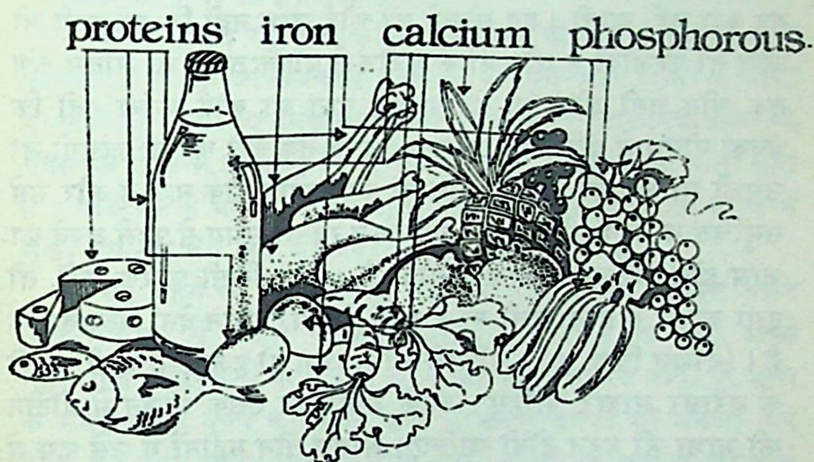
अम्लता : जब गर्भावस्था म हारमोन का स्तर बढ़ जाने के

परिणामस्वरूप आमाशय में अम्लता बढ़ जाए तो उसके लिए **नैट्रम फास–६ एक्स** और **नक्स वामिका** देनी चाहिए, विशेषकर उस समय जब छाती में जलन हो, जो खाने के बाद बढ़ जाए लेकिन ठण्डा दूध घूंट घूंट पीनेसे कम हो जाए ।

बवासीर : गर्भावस्था में होनेवाला एक और कष्ट बवासीर है, या गुदा और उसके मार्ग में आने वाली नसें फूल जाती हैं। इससे बड़ी बेचैनी और पीड़ा होती है और कई बार रक्त स्राव भी हो सकता है। इस कष्ट के लिए होम्योपैथी में **एस्क्यूलस हिपोकास्टानम** और **कोलिन-सोनिया कैनाडेनसिस** दी जाती हैं। इन दोनों का लक्षण यह है कि मल कठोर और सूखा हुआ होता है और ऐसा आभास होता है कि गुदा में कोई लकड़ी फंसी है या रेत पड़ी है। **एस्क्यूलस** का एक लक्षण यह है कि बवासीर के साथ साथ पीठ में हल्का हल्का दर्द भी हो ।

टेटांनस : बहुत से डाक्टर यह राय देते हैं कि सातवें, आठवें और नवें महीने में टेटानिस रोकने का टीका लगा दिया जाए, जिससे कि बच्चे को यह रोग होने का खतरा न हो । परन्तु यदि तिम तीन महीनों में होम्योपैथिक औषधि **लिडम पाल–२००** की दो -दो खुराकें प्रति मास ले ली जाएं तो ऐसा खतरा नहीं रहता ।

फूली हुई नसें : गर्भावस्था में गर्भाशय के फैल जाने के परिणाम-स्वरूप टांगों में लहू की मात्रा के स्थिर रहने के कारण नसों के फूल जाने की संभावना भी रहती है। इस कारण गर्भिणी को टांगों में पीड़ा और भारीपन महसूस होता है और पिंडलियों नें ऐंठन होती है । यदि **कॅलकेरिया फ्लोर–६ एक्स** और **मैग फ़ास–६ एक्स** मिलाकर दे दी जाएं तो ऐंठन कम हो जाती है और रक्तवाहिनी नाड़ियें फिर से लचीली हो जाती हैं । **पलसाटिला** तब देनी चाहिए जब टांगों में भारीपन हो और दर्द एक अंग से दूसरे अंग तक जाए या टांगें लटका कर बैठने से भारीपन अधिक हो जाए । **वाइपेरा** (यह औषधि जर्मनी के एक सांप



चित्र ४.१ गर्भावस्था में क्या खाना चाहिए

के विष से बनाई जाती है) देने का समय तब है जब टांगें लटकाने से जलन महसूस हो। यह भी फूली हुई नसों के लिए लाभकारी है।

गर्भिणी को क्या करना चाहिए

होनेवाली मां के लिए उपयुक्त भोजन और सुनियोजित व्यायाम के कार्यक्रम का अत्यधिक महत्व है। कई बार बच्चे पर कुप्रभाव इस कारण नहीं पड़ता कि वह क्या खाती है, बल्कि इस कारण पड़ता है कि वह क्या नहीं खाती। यह सोचने का कोई लाभ नहीं कि वह नन्ही सी जान तो परजीवी है और मां के शरीर से पोषक तत्वों का अंतिम कण तक छीन लेगी और इस कारण इस बात का कोई खतरा नहीं कि बच्चा पोषण से वंचित रह जाएगा। बच्चे तक वही खुराक पहुंचेगी जो उसकी मां खाएगी। परन्तु यदि मां का आहार ठीक नहीं है और उसे समुचित मात्रा में पोषक तत्व नहीं मिल रहे तो समय से पहले बच्चे का जन्म होने का डर वास्तव में होता है। और किसी कारण नहीं, तो इसी कारण से होने वाली मां के खाने पीने पर ध्यान देना अत्यावश्यक है। (देखिए चित्र ४.१) गर्भिणी को लगभग दो हजार पांच सौ कैलरी के बराबर आहार चाहिए। उसके अतिरिक्त उसके भोजन में प्रोटीन की मात्रा भी बहुत होनी चाहिए। अंतिम तीन महीनों में उसे कम से कम बीस मिलीग्राम लोहा चाहिए जिसकी कमी पालक, अण्डों, मछली और मांस से पूरी की जा सकती है। लेकिन फिर भी कई बार चिकित्सा करना आवश्यक हो जाता है। जिन स्त्रियों का हीमोग्लोबिन (रक्त का एक तत्व) बारह ग्राम से कम हो उन्हें होम्योपैथिक दवाई **फैरम मैट–३०** और **फैरम फॉस–६ एक्स** देनी चाहिए। इससे रक्त का यह अभाव दूर हो जाएगा। इस दशा के लिए एलोपैथी में लोहे के तत्व से बनी गोलियां दी जाती हैं, जिनका दुष्परिणाम सिर दर्द, मिचली और कब्ज होता है या इसी दवाई के टीके दिए जाते हैं जिनसे घाव जैसा दर्द

होता है, लेकिन उपरोक्त होम्योपैथिक औषधियों में लोहे की जो मात्रा है, वह आसानी से पच जाती है और उसमें कोई खतरा नहीं। **फैरम फॉस–६ एक्स** की एक गोली का वजन ०.०५ ग्राम होता है और यह अनुमान लगाया गया है कि उसमें केवल ०.००१६८ ग्राम लोहा और फास्फेट होता है। यह इतनी कम मात्रा है कि इससे शरीर को कोई हानि नहीं पहुंचती परन्तु दवाई के रूप में यह बहुत लाभकारी है, जैसा कि परीक्षणों से प्रमाणित हो गया है।

कोख में पल रहे बच्चे को अपने विकास के लिए कैल्शियस और फास्फोरस की भी आवश्यकता होती है, जो दूध और अण्डों से प्राप्त हो सकता है। इसलिए इनके साथ-साथ गर्भिणी को **कलकेरिया फ़ास–६ एक्स** भी ले लेनी चाहिए, जिसमें कैल्शियम और फ़ास्फ़ोरस दोनों होते हैं। यदि मां के भोजन में इन दोनों तत्वों का अभाव हो तो बच्चे में सूखा रोग या दंत क्षय की प्रवृत्ति उत्पन्न हो जाती है।

यह कहने की आवश्यकता नहीं कि गर्भिणी को सिगरेट आदि और मद्यपान से बचना चाहिए, क्योंकि ये दोनों उसके लिए अच्छे नहीं। एक अध्ययन से पता चला है कि जो मांएं सिगरेट पीती हैं, जन्म के समय उनके बच्चे का वजन अन्य माओं के बच्चों की अपेक्षा कम होता है। उसी प्रकार सिगरेट पीने वाली मांओं के बच्चे के समय से पहले उत्पन्न होने की संभावना अधिक होती है।

गर्भावस्था में दैनिक भोजन

प्रति दिन २५०० कैलरी

प्रोटीन : १०० ग्राम प्रति दिन

दूध, पनीर, मुर्गे का मांस, अन्य मांस और मछली और अण्डे

खनिज पदार्थ :

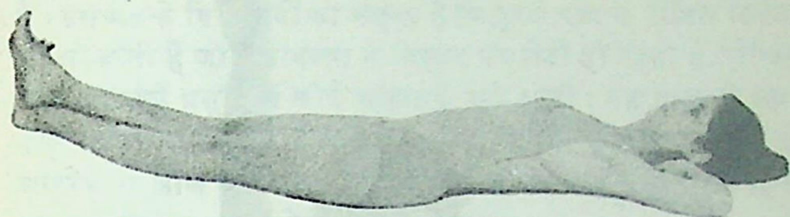
लोहा ३०=६० ग्राम प्रति दिन

कलेजी, पत्ते वाली सब्जियां, काला अंगूर
और मांस

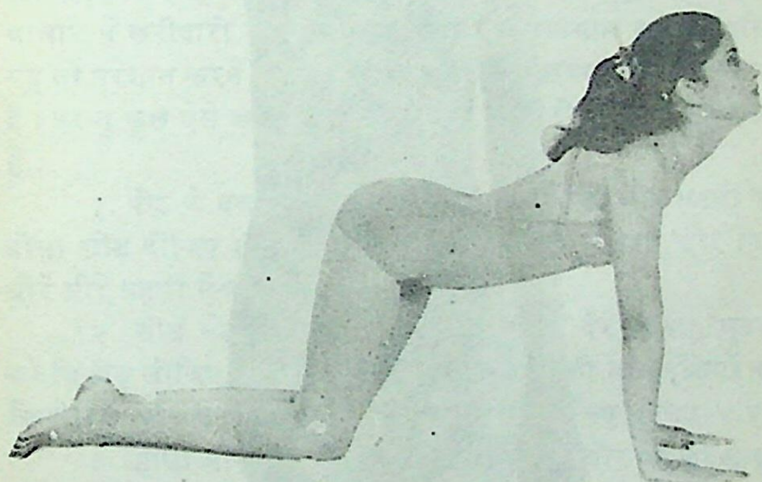
कैल्शियम और फास्फोरस	कम से कम लगभग आधा लिटर दूध
सब्जियां, अण्डे, दूध, फल और मछली	

विटामिन	जो गर्भिणी न हो	गर्भिणी
संतुलित प्राकृतिक आहार जिससे गर्भिणी की आवश्यकता पूरी हो सके		
विटामिन ए (अंतर्राष्ट्रीय इकाई)	४०००	+२०००
विटामिन बी–२ (मिलिग्राम)	२.०	+०.३
विटामिन बी–१२ (मिलिग्राम)	३.०	+०.५
विटामिन सी (मिलिग्राम)	४०	+३०
विटामिन डी अन्तर्राष्ट्रीय इकाइयां)	४००	
विटामिन ई अन्तर्राष्ट्रीय इकाइयां)	४	+३

व्यायाम के माध्यम से चिकित्सा करने वाले विशेषज्ञ गर्भिणी को यह राय देंगे कि उसे अपनी मांस पेशियों को सशक्त बनाए रखना चाहिए। उसे इतना आराम नहीं करना चाहिए कि मांस पेशियां ढीली पड़ जाएं और प्रसूति के समय उनकी दुर्बलता के कारण उसे कष्ट हो। इस विषय पर काफी मतभेद है। ये विशेषज्ञ प्रसूति से पहले कुछ व्यायाम करने की सलाह देते हैं और उनका कहना है कि इसे जन्म के समय



चित्र ४.२



चित्र ४.३



चित्र ४.४

मां को अधिक पीड़ा नहीं होती और बच्चा आसानी से बाहर आ जाता है। इस मत के विरोधियों का कहना है कि हृदय रोग से पीड़ित स्त्रियां भी तो होती हैं जो गर्भावस्था में बिस्तर पर लेटी ही रहती हैं, लेकिन फिर भी उन्हें प्रसूति में कोई कठिनाई नहीं होती। यह बात तो सदा कही जाती है कि स्त्री रोग विज्ञान नया विज्ञान है। मांएं सृष्टि के आरम्भ से आज तक बच्चे जनती आई हैं और वे प्रसूति से पहले व्यायाम करें या नहीं, कोई भेद नहीं पड़ता।

लेकिन व्यायाम का सबसे बड़ा जो लाभ देखा गया है वह यह है कि ऐसी महिलाएं अपने आपको भला चंगा महसूस करती हैं। जो गर्भिणी दिनभर घर में फूंक फूंक कर कदम रखती है जिससे कि उसकी कोख में पल रहे बच्चे को कोई ठेस न पहुंचे, वह जब खुली हवा में सैर करने जाती है तो उसकी तबीयत खुल जाती है। कहा जाता है कि बाजार से खरीदारी करने के लिए जाना कोई व्यायाम नहीं है, बल्कि यह तो परेशान करने वाली बात है। सबसे अच्छा व्यायाम सैर करना है। परन्तु कुछ ऐसे व्यायाम हैं जो घर में आसानी से किए जा सकते हैं :

१. पीठ के बल लेट जाइए और अपने नितम्बों और घुटनों को ढीला छोड़ दीजिए। नितम्ब जितने ऊंचे उठ सकें उठाइए और फिर धीरे धीरे पहली स्थिति में आ जाइए।

२. सीधे लेट कर एक पैर के ऊपर दूसरा पैर रखिए, घुटनों को सिकोड़ लीजिए साथ ही जंघाओं और नितंबों की मांस पेशियों को सिकोड़िए और अपने पेट को अन्दर की ओर खींचिए (चित्र ४.२)

३. हाथों और घुटनों के बल खड़ी हो जाइए और पेट को अन्दर की ओर खींचिए। उसके बाद सांस छोड़िए (चित्र ४.३)

४. बाहें ऊपर उठाइए और उन्हें गोले में घुमाइए। (चित्र ४.४)

ज्यों ज्यों प्रसव का समय समीप आता है, होने वाली मां आशंका से भर जाती है। जो पहली बार मां बनने वाली हों, उन्हें प्रसव की संभावना से तनिक डर भी लगता है। उन्होंने बड़ी बूढ़ियों से जो कहानियां सुन रखी होती हैं, उन्हें याद करके डरती हैं। इस प्रकार के डर वास्तविक समस्या की अपेक्षा अधिक हानिकारक हो सकते हैं। इसके लिए प्रसव पीड़ा प्रारंभ होते ही **काली फास–३०** की कुछ खुराकें दे देनी चाहिए।

प्रसव के दौरान

प्रसव के साथ पीड़ा होती है। पीड़ा की एक लहर सी आती है और फिर कुछ क्षण के लिए रुक जाती है। कई बार यह पीड़ा प्रसव की सूचक नहीं होती और गर्भिणी को अस्पताल से वापस लाना पड़ता है, जिसे कुछ ही समय पहले भागते भागते अस्पताल पहुंचाया गया था। यदि पीड़ा प्रसव की सूचक न हो तो गर्भिणी को अनीमा दे दिया जाय और कुछ खुराकें **पलसोटिला** की। यदि उसे कोई और कष्ट न हो तो प्रसव पीड़ा प्रारम्भ होते ही हर १५ मिनट बाद **कलकेरिया फ्लोर-६ एक्स** और **कालोफाइलम–३०** की खुराकें दीजिए। प्रसव के दौरान कुछ समस्याएं उत्पन्न हो जाती हैं। सबसे अधिक यह समस्या आती है कि गर्भाशय का मुंह न खुले या गर्भाशय में निश्चलता रहे।

गर्भाशय का मुंह न खुलना : प्रसव के दौरान यह संभव है कि गर्भाशय बारी-बारी से सिकुड़ और फैल रहा हो, परन्तु उसका मुंह न खुले बल्कि कठोर हो जाए। ऐसी दशा में **कोलोफाइलम** (ऐंठन के साथ तीव्र पीड़ा, जो चारों ओर फैलती है, परन्तु प्रसव नहीं होता) और **जेलसीमियम** (जब गर्भाशय का मुंह कठोर हो और पीड़ा पीठ तक होने के साथ साथ ऐसा लगता हो, मानो कोई गर्भाशय को पकड़ कर दबा रहा है) दी जाती है। इससे स्थिति सामान्य हो जाती है और प्रसव में सहायता होती है। मां के लिए तो यह औषधियां दैवी वरदान से कम नहीं, क्योंकि यदि गर्भाशय का मुंह नहीं खुलता, तो एलोपैथ तुरन्त

आपरेशन करने पर विवश हो जाते हैं। ऐसे मामलों में उस समय उपस्थित लेडी डाक्टर ही फैसला कर सकती है कि आपरेशन होना चाहिए या नहीं, क्योंकि यदि आपरेशन में देरी कर दी जाए तो बच्चे की सांस रुक जाती है और उसकी जान खतरे में पड़ सकती है।

गर्भाशय का निश्चल होना : कई बार गर्भाशय ठीक से काम नहीं करता और प्रसव के समय बारी बारी से सिकुड़ता और फैलता नहीं। इस स्थिति को गर्भाशय की निश्चलता की संज्ञा दी गई है। सामान्यतया डाक्टर लोग नाड़ी के माध्यम से ग्लूकोज़ या नमक मिला पानी चढ़ाते हैं कि जिससे कि गर्भाशय सिकुड़ने लगे। झिल्लियोंको अप्राकृतिक ढंग से चीर दिया जाता है। या फोरसैप्स नाम के उपकरण की सहायता से बच्चे को बाहर निकाला जाता है। उसमें यह खतरा रहता है कि बच्चे के मस्तिष्क को उस चिमटी से चोट पहुंच सकती है। जब गर्भाशय बारी-बारी से सिकुड़ने और फैलने से इन्कार करे तो **पिट्युट्रिन** का प्रयोग करना चाहिए जो पीयूष ग्रन्थि के स्राव से तैयार की जाती है इसके लक्षण यह हैं कि यद्यपि गर्भाशय का मुंह खुल जाता है परन्तु बच्चा बाहर नहीं आता और पीड़ा भी बहुत कम होती है। इसमें यह सावधानी बरतना चाहिए कि यह तभी दी जाय जब बच्चा बाहर निकलने के लिए तैयार हो, उससे पहले नहीं। एक दूसरी औषधि **सिकेल कार** है जिसका आवश्यक तत्व अरगट नाम का पदार्थ है जो पुराने जमाने में गर्भपात के लिए प्रयुक्त किया जाता था। इसके देनेसे बच्चे के बाहर निकलने में सहायता होती है और प्रसूति के लिए किसी अप्राकृतिक प्रक्रिया के अपनाने की आवश्यकता नहीं होती।

प्रसूति के बाद

बच्चे का जन्म होने के बाद कोई समस्या दिखाई नहीं देती। कहा जा सकता है कि कष्ट टल गया—या अभी शुरू हुआ है यह तो अपने अपने दृष्टिकोण पर निर्भर है। अगले कुछ महीनों में मां बच्चे को

दूध पिलाना बन्द कर देगी और कुछ छोटी छोटी समस्याएं हैं, जिनका निराकरण समय रहते उपर्युक्त उपचार करके किया जा सकता है। यदि प्रसूति के बाद पहले तीन-चार दिन तक **आर्नीका**–२०० की चार-चार खुराकें दी जाएं तो उससे स्वास्थ्य लाभ में बहुत सहायता मिलती है। सम्भव है कि मां को अपने पेट और गर्भाशय की मांस पेशियों में पीड़ा का अनुभव होता हो। उस दशा में **बैलिस पैर** तीसरी पोटेंसी में देनी चाहिए।

छातियों की देखभाल और दूध

गर्भावस्था में ही छातियों की समुचित रूप से देखभाल करना आवश्यक है (चित्र ४.५) कई स्त्रियों की चूचियां अन्दर को धंसी हुई होती हैं। उन्हें चाहिए कि प्रति दिन चूचियों को पकड़ कर धीरे-धीरे कुछ समय तक बाहर की ओर खींचती रहें। इस अवधि में जो अंगिया पहनी जाय वह न तो बहुत तंग हो और न बहुत ढीली। छातियों को साफ रखना बहुत आवश्यक है। बच्चे को दूध पिलाने से पहले कुनकुने पानी में साफ रूई का फाहा भिगोकर उससे चूचियों को अच्छी तरह से पोंछ देना चाहिए।

प्रसूति के बाद छातियों में दूध की उत्पत्ति की कुछ समस्याएं हो सकती हैं। कई माओं की छातियों में बहुत कम दूध उतरता है या दूध आता ही नहीं। इस रोग का इलाज होम्योपैथी में **एसेफटिडा** (जो हींग से बनाई जाती है) है। इसका लक्षण यह है कि छातियां दूध से भरी हुई, भारी लेकिन हाथ लगाने से दुखती हैं। इसके अतिरिक्त **पलसाटीला** ऐसी रोगिणियों के लिए जो सदा चिंतित रहती हों और जरा सी बात पर रो पड़ें; एक लक्षण यह है कि छातियां सूजी हुई होती हैं, उनमें पीड़ा होती है और दूध बहुत कम निकलता है)। जब दूध बहुत बहता हो तो **बोरैक्स** देनी चाहिए। इसका लक्षण यह है कि चूची बहुत गर्म लगती है और जब बच्चा एक ओर की चूची से दूध पी रहा

बच्चे को दूध पिलाना

गलत तरीका





ठीक तरीका

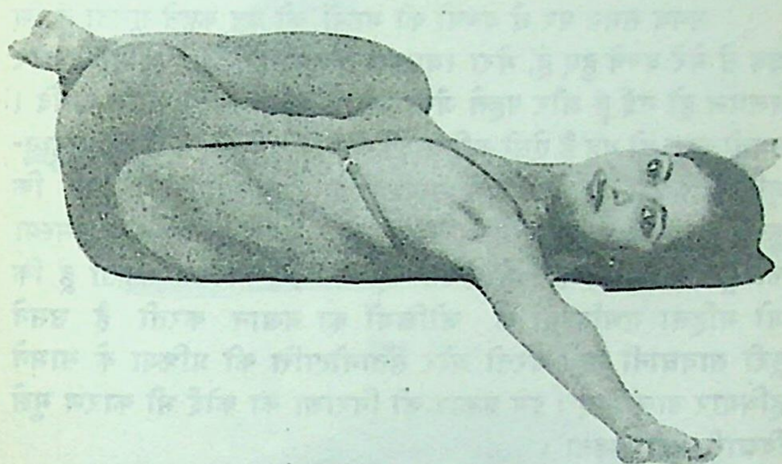
चित्र ४.५

होता है तो दूसरी चूची में पीड़ा का अनुभव होता है। इसी संदर्भ में **मैडयूसा** का उल्लेख भी आवश्यक है जो एक प्रकार की मछली से बनाई जाती है। जब मां बच्चे को दूध पिलाना बन्द करना चाहे तो **लैक कैन** (यह दवा कुतिया के दूध से बनाई जाती है) देनी चाहिए जिससे दूध सूख जाता है। यदि दूध पिलाने की अवधि में चूचियों की त्वचा फट जाए–ऐसा बहुधा होता है–तो इसका इलाज **राटनहिया–३०** की कुछ खुराकें है। जब चूचियां दुखती हों और फटी हुई हों तो **ग्रेफाइट्स** से बनी हुई मरहम लगाई जानी चाहिए। ऐसे मामलों में चूचियोंको कपड़े की रगड़ से बचाने के लिए उन पर गर्म कपड़े का गिलाफ चढ़ा देना चाहिए।

प्रसूति के बाद के व्यायाम

अब ९ महीने का समय किसी प्रकार बीत गया और बड़ी बूढ़ियों से जो कुछ सुना था वह सब गलत निकला। एक हंसता खेलता सुन्दर शिशु पालने में पड़ा है। लेकिन अब मां का क्या हाल है? कुछ स्त्रियों में प्रसूति के बाद मोटे होने की प्रवृत्ति होती है। उनका पेट बढ़ कर बाहर की ओर लटक जाता है। पेट की मांस पेशियां गर्भावस्था में फैल गई थीं, लेकिन अब वे वापस पहली अवस्था में नहीं आतीं। उनमें लचक की इस कमी के कारण आगे को बढ़ा हुआ पेट बड़ा भद्दा लगता है। इसी संदर्भ में प्रसूति के बाद के व्यायाम लाभकारी सिद्ध होते हैं। वे मांस-पेशियां जो पेट के अगले भागको उठाए रखती हैं और योनी तथा गुद्दा को अपने उचित स्थान पर रखने वाली मांस पेशियां ढीली पड़ जाती हैं। उसी प्रकार प्रसूति के बाद छातियां ढल कर आगे को लटक जाती हैं। गर्भावस्था और बच्चे को दूध पिलाने के काल में ऐसी अंगिया पहननी चाहिए जो छातियों को संभाले रखे। इस संदर्भ में कुछ व्यायाम भी सहायक

होते हैं। उनका मुख्य प्रयोजन यह है कि पेट और उसको उठाए रखने वाली मांस पेशियां को सशक्त बनाया जाय, भोजन की मात्रा कम की जाय और बैठने उठने में अपने शरीर को ठीक ढंगसे रखा जाय। ये व्यायाम कम से कम ६ सप्ताह तक दिन में दो बार करने चाहिए। प्रारंभ में १५ या बीस बार करना काफी होगा लेकिन बीस से पच्चीस बार कर लिया जाय तो बहुत अच्छा हो।



चित्र ४.६

१. प्रसव से पहले जो व्यायाम करने का सुझाव दिया गया है, उन्हें फिर से कीजिए।
२. पीठ के बल लेट जाइए और अपनी टांगों को पहले बारीबारी से और फिर दोनों को इकट्ठी उठाइए।
३. लेट कर कभी इस करवट और कभी उस करवट झूलिए। अपने घुटनों और नितम्बों को सिकोड़ कर बाहों को कन्धे तक ऊंचा उठाइए और दायें से बायें झूलिए। (चित्र ४.६)

४. पीठ के बल लेट कर टांगों को ऐसे चलाइए मानो साइ-
किल चला रही हों। (चित्र ४.७)

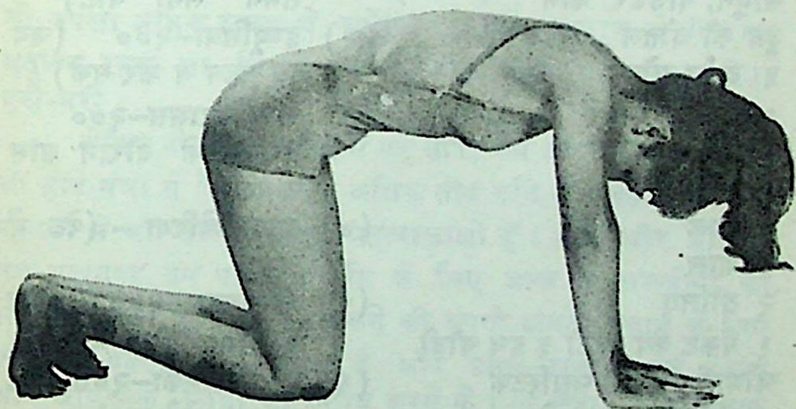
५. हथेलियों और घुटनों के बल खड़ी हो जाइए। पेट को अन्दर की ओर सिकोड़िए और अपनी पीठ को कमान जैसा बना लीजिए। (चित्र ४.८)

× × × ×

समय समय पर मैं बच्चों की माओं को यह कहते सुनता हूं कि जब से मेरे बच्चे हुए हैं, मेरा स्वास्थ्य बिगड़ गया है ; मैं मोटी और थलथल हो गई हूं और पहले जैसी जवान नहीं लगती, आदि आदि। सच्ची बात तो यह है ऐसी महिलाओं के प्रति मुझे लेशमात्र भी सहानुभूति नहीं है। गर्भावस्था से सुन्दरता समाप्त नहीं होती जैसा कि कुछ महिलाएँ समझती हैं। चिकित्सा और विज्ञान में इस समस्या का पूरा समाधान है। मैं केवल यही निष्कर्ष निकाल सकता हूं कि जो महिला गर्भावस्था के जोखिमों का बखान करती है उसने पूरी सावधानी नहीं बरती और संतानोत्पत्ति की प्रक्रिया के सामने हथियार डाल दिए। इस प्रकार की निराशा का कोई भी कारण मुझे दिखाई नहीं पड़ता।



चित्र ४.७



चित्र ४.८

प्रसूति के लिए आवश्यक सामान

मां के लिए	औषधियां
५ पैकेट सेनेट्री टावल	(१) आर्निका –२०० (प्रसव के तुरंत बाद जिससे कि पीड़ा न रहे)
३ पौंड रूई १ बोतल क्रिमिनाशक दवाई एक दर्जन सुईपिन तीन बांधने के कपड़े	(२) कलकेरिया फ्लोर – ६ एक्स और कालीफाइलम –३० जिससे कि प्रसव आसानीसे हो
६ पट्टियां नहाने-धोने का सामान (साबुन, तेल आदि)	(३) कालीफास–३० जिससे प्रसव के दौरान चिन्ता न हो
	(४) पलसाटिला–२०० (जब पीड़ा हो परन्तु प्रसव न हो)
बच्चे के लिए	औषधियां
मालिश का तेल, साबुन, पाउडर, क्रीम	(१) आर्निका–३० (प्रसव के समय लगी चोट)
दूध की बोतल ३ दर्जन पोतड़े	(२) इथ्यूसिया–२०० (जब दूध सहन न कर सके)
१२ छोटी चादरें ६ बनियानें ६ बनियानें	(३) लाओसेरासस–२०० (प्रसव के दौरान सांस रुकना)
६ फ्राक २ शाल	(४) माइक्रोमेरिया – (पेट में वायु
२ तौलिए १ पैकेट क्रेप पट्टी ३ इंच चौड़ी	(५) नैट्रमसल्फ–२०० (प्रसूति के समय सिर में चोट)
चौथाई गज गर्म प्लास्टिक एक लिटर मिल्टन सोल्यूशन	(६) नक्सवामिका–२०० (पेट खराब होने पर)

अध्याय ५

श्रम जीवियों की समस्याएं

मानव के इतिहास में ऐसा समय अवश्य आया होगा जब उसकी दिनचर्या में श्रम का एक उपयुक्त स्थान होगा। पहले लोग जल्दी जाग जाया करते थे और भरपेट नाश्ता करने के बाद घर का स्वामी अपने कारखाने या खेत के लिए चल देता था। वह दिनभर जीतोड़ परिश्रम करता था और दोपहर के भोजन के समय ही थोड़ा आराम करता था। सूर्य पश्चिम में होता तो यह इस बात का संकेत था कि काम का समय समाप्त हो गया। संध्या के समय वह अपने मित्रों या मधुशाला में जाकर समय बिताता था और या किसी अन्य तरीके से मन बहलाता था। इसमें संदेह नहीं कि पुराने जमाने में लोग आज की अपेक्षा अधिक स्वस्थ थे, क्योंकि काम और आराम के बीच एक संतुलन रहता था, जिससे स्वास्थ्य ठीक रहता था और तबीयत हरी-भरी।

लेकिन बीसवीं शताब्दि में यह सारा क्रम बदल गया है। मानव की होड़ यंत्रों से है, जो उससे अधिक तीव्र गति से चलते हैं या अन्य मानवों से जो उससे अधिक महत्वाकांक्षी हैं। गति और प्रतिष्ठा नए मापदण्ड बन गए हैं। गति के लिए आज के श्रमजीवी को विभिन्न प्रकार के काम कर सकने की अपनी क्षमता बढ़ाने के लिए लगातार प्रयत्न करना पड़ता है और उसके साथ ही कई संकटों और आवश्यक विषयों का निर्णय करने के लिए तैयार रहना पड़ता है। इस बात पर बहुत बल दिया जाता है कि वह नए नए काम सीखे,

जिससे कि वह विभिन्न प्रकार के कामों को भली भांति कर सके। प्रतिष्ठा पाने के लिए तो बहुत ही विकट होड़ लगी रहती है, जो चिन्ता और तनाव को जन्म देती है। किसी कंपनी में काम करने वाला प्रबन्धक सदा इस टोह में रहता है कि उसके सहयोगी बाज़ी न मार जाएँ और उसकी अपेक्षा अधिक उन्नति न कर लें। वह अपने से ऊँचे अधिकारियों और ग्राहकों की नज़र पहचानने में दक्ष हो जाता है। उसे इस बात का प्रमाण देना पड़ता है कि वह अपने काम में पूरी रुचि रखता है और उसके लिए हर समय परिश्रम करने को तैयार है। इसके लिए वह अपने मालिकों और ग्राहकों—दोनों के इशारे पर नाचने के लिए हर समय तैयार रहता है।

तो फिर, वह आराम कैसे करेगा ? इसम संदेह नहीं कि आराम करना आवश्यक है—यदि समय मिले तो कोई फिल्म देखी जा सकती है; समुद्र तट पर नहाने या घूमने के लिए जाया जा सकता है, कोई मनोरंजक पुस्तक पढ़ी जा सकती है। परन्तु उसे किसी बैठक में जाना हो तो वहां तो समय पर पहुँचना ही पड़ेगा। इस कारण जब हम देखते हैं कि आधुनिक युग में इस प्रकार के रोग हैं, जो काम में हर समय लगे रहने बल्कि उलझे रहने का परिणाम हैं, तो कोई आश्चर्य की बात नहीं। इनमें से बहुत से रोग केवल प्रकृति के नियमों के अनुसार जीवन बिता कर दूर किए जा सकते हैं। मानव शरीर एक नाज़ुक मशीन के समान है, जो अप्राकृतिक दबावों से बिगड़ सकती है। आप किस प्रकार सोचते हैं, इसका भी शरीर की क्रियाओं पर बुरा प्रभाव पड़ता है। इसके अतिरिक्त ग़लत समय पर ग़लत ढंग का खाना खाया जाता है और यह क्रम आयुभर चलता है। इन दोनों को दूर करने के लिए—यदि ये पहले ही नियंत्रण से बाहर नहीं हो गए—पहली आवश्यकता तो यह है कि व्यक्ति में उस दबाव और चिन्ता को पहचानने की इच्छा हो जो जीवन के लिए स्वाभाविक

नहीं है। दूसरी आवश्यकता इस बात को स्वीकार करने की है कि अस्थायी रूप से इलाज करने के लिए ली गई दवाएँ या बहुत तीव्र प्रभावों वाली दवाएँ लेकर रोग के लक्षणों को दबा देने से काम नहीं चलता। स्थायी रूप से इलाज तभी हो सकता है, जब रोग के आधार-भूत दोष की ओर ध्यान दिया जाए, अपने रहन-सहन का तरीका बदल लिया जाए और ऐसी औषधियां ली जाएँ, जिनका शरीर पर प्रतिकूल प्रभाव न पड़े। होम्योपैथी में बहुत सी ऐसी दवाइयां हैं जिनमें से कुछ के बारे में तो यह कहा जा सकता है कि ये व्यापार और वाणिज्य में लगे प्रबन्धकों के लिए ही तैयार की गई हैं।

नक्स वामिका नाम की जड़ी औषधियों में काम आती है। यह भारत में ही उत्पन्न हुई और यहीं से विदेशों में गई। इसे देसी भाषा में कुचला और अंगरेजी में **प्वायजन नट** (विषैला काष्ठ फल) कहते हैं। होम्योपैथी में यह औषधि उन परिस्थितियों के लिए सर्वोत्तम औषधि मानी जाती है, जो आज के जीवन से उत्पन्न होती हैं। होम्योपैथी के ग्रन्थों में कहा गया है कि **नक्स वॉमिका** का रोगी दुबला पतला, तेज़ चलने वाला, सक्रिय, चिड़चिड़ा और घबरा जाने वाला होता है। वह मस्तिष्क से बहुत काम लेता है, उसके मन पर कई बोझ रहते हैं और वह बैठे रह कर ही काम करता है। वह पढ़ता ज़्यादा है और अपने काम पर ही ध्यान केन्द्रित रखता है और उसी की चिन्ताओं में ग्रसित रहता है। कमरे में बैठे रहने और मानसिक तनाव के कारण उसे उत्तेजक पदार्थों की आवश्यकता पड़ती है जैसे कि काफी और शराब। वह संभवतः इन्हें अधिक मात्रा में लेता है और या तम्बाकू पीकर अपनी उत्तेजना को शान्त करने की चेष्टा करता है। खाने बैठता है तो गरिष्ट और उत्तेजक पदार्थ पसन्द करता है। वह दिनभर की थकान को भुलाने के लिए महिलाओं के

साहचर्य और शराब का सहारा लेता है। इस कारण वह रात को देर तक जागता है और सबेरे उठता है तो सिर भारी होता है, अपच होता है और बात बात पर काटने दौड़ता है। अब वह कोई विरेचक औषधि, यकृत के लिए कोई गोलियां या औषधियुक्त पानी पीता है और धीरे धीरे उसे इन वस्तुओं की आदत पड़ जाती है।

नक्स वॉमिका के रोगी आपको कंपनियों, विज्ञापन एजेंसियों और अन्य व्यापारों में मिलेंगे। वे जिन कष्टों की शिकायत करते हैं, वे हैं सिर दर्द, आधे सिर का दर्द और पाचन से संबंधित समस्याएँ, जैसे कब्ज, दस्त और पेट में अल्सर। इसके अतिरिक्त ऐसे लोगों को बवासीर, बढ़ी हुई रक्त चाप और चिन्ताजनित स्नायु रोग हो जाते हैं। अत्यधिक संवेदनशीलता और वहम—दोनों मिल जाते हैं तो उन्हें और भी कई रोगों की शिकायत हो जाती है। अब हम आपको बताएँगे कि इन समस्याओं का क्या उपचार है।

मद्यपान

हम सभी जानते हैं कि मद्यपान की क्या बुराइयां हैं, विशेष रूप से तब जबकि इसकी आदत पड़ जाए। चूंकि अलकोहल तो अधिकतर लोग जानबूझ कर पीते हैं, यह बात बड़ी आश्चर्यजनक लगती है कि इसके लिए होम्योपैथी में कोई औषधि हो, क्योंकि होम्योपैथी में सभी दवाइयां अलकोहल में मिलाकर बनाई जाती हैं।

यह तो सभी जानते हैं कि दस प्रतिशत से कम अलकोहल जिस पेय में होगा, उसका प्रयोग चिकित्सा के प्रयोजनों के लिए किया जा सकता है। परंतु जिस तरल पदार्थ में अल्कोहल की मात्रा १५ प्रतिशत से अधिक हो, वह हानिकारक होगा। विभिन्न प्रकार की शराबों में अल्कोहल की मात्रा चार प्रतिशत से ५५ प्रतिशत तक होती है।

देखना यह है कि मानवके शरीर पर इस प्रकार के तरल पदार्थों का क्या प्रभाव पड़ता है और इसमें होम्योपैथी कहां तक सहायक हो सकती है।

(१) **आमाशय और अंतड़ियां :** जिस मदिरा में लगभग १५ प्रतिशत अल्कोहल हो, उसके पीने से आमाशय के अन्दर की परत को हानि पहुँचती है और उसमें सूजन का डर रहता है। उसके परिणाम स्वरूप मिचली आती है और उल्टी होती है। अल्कोहल के कारण आस-पास के ऊतकों से चरबी हट कर जिगर पर जमा हो जाती है। किसी को लम्बे समय से मदिरापान की आदत हो तो जिगर में रोग की अवस्था पैदा हो जाती है और वह पिलपिला न रह कर कड़ा हो जाता है।

इन रोगों में सामान्यतया **आर्सेनिक और कैप्सीकम** नाम की औषधियां दी जाती हैं। वैसे तो जिन्हें शराब की लत हो, उनके पाचन सम्बन्धी रोगों के लिए **नक्स वॉमिका** अच्छी औषधि है। यह प्रवन्धक वृत्ति के लोगों को अधिक अनुकूल बैठती है जो पार्टियों आदि में जाकर वहुत मद्यपान करते हों।

(२) **हृदय और रक्तवाहिनी नाड़ियां :** अल्कोहल के कारण चमड़ी में रहने वाली रक्तवाहिनियां फैल जाती हैं जिसके कारण उसे शरीर में गर्मी का संचार होता महसूस होता है। इसके कारण रक्त चाप अस्थायी रूप से वढ़ जाती है और हृदय की धड़कन भी बढ़ जाती है। इस रोग में **नक्स वॉमिक** से तैयार किए एक क्षार पदार्थ से बनी औषधि **स्ट्रिक्निया मेट** लाभदायक है।

(३) **स्नायु व्यवस्था :** स्नायुओं पर अल्कोहल का विभिन्न चरणों में भिन्न भिन्न प्रकार का प्रभाव पड़ता है।

(क) प्रारंभ में सरूर रहता है, जब चिन्ता से मुक्ति मिल जाती है। इस अवस्था में होम्योपैथी में **कनाबिस इंडिका** नाम की

औषधि दी जाती है जो भांग से तैयार की जाती है। इस दवाई से अत्यधिक सरूर आता है और हर चीज और हर भावना सर्वोत्कृष्ट रूप में दिखाई पड़ती है। चूंकि मद्यपान के पहले चरण में मिलने वाले सभी लक्षण इससे मिलते हैं इसलिए **केनाबिस इंडिका** लाभ दायक सिद्ध होती है।

(ख) अल्कोहल के प्रभाव में आकर व्यक्ति किसी चीज को पहचानने या उसे सुनने में सामान्य की अपेक्षा अधिक समय लेता है। अधिकतर दुर्घटनाएँ इसी अवस्था का परिणाम होती हैं। **अर्जेन्टम नाइट्रिकम** (जो चांदी और शोरे से तैयार की जाती है) के लक्षण मिलते -जुलते हैं और इसलिए इस अवस्था में वही अधिक काम करती है।

(ग) अल्कोहल के कारण मांस-पेशियों में परस्पर तालमेल नहीं रहता और इसीलिए व्यक्ति लड़खड़ाता है। इस अवस्था में **जेलसीमीनियम** काम करती है जिसके लक्षण हैं सिर चकराना, नींद आना, कुछ समझ में न आना और कंपन।

(घ) उसके बाद शराबी में मार-पीट की प्रवृत्ति जागती है। उस स्थिति में **बैलाडोना, हायोसाइमस** और **स्ट्रामोनियम** जैसी औषधियां लाभकारी हैं।

(ड) यदि किसी ने अत्यधिक मद्यपान कर लिया हो तो वह बेहोश हो जाता है, ऐसा लगता है कि बहुत गहरी नींद में है। उसे पसीना बहुत आता है और हिलान-डुलाने या बुलाने पर भी नहीं जागता। उस अवस्था में **ओपियम** देनी चाहिए।

जो व्यक्ति शराब छोड़ना चाहता हो लेकिन छोड़ न पाता हो, उसका इलाज भी होम्योपैथी में है। **एंजेलिका, सल्फ्यूरिक एसिड** और **कुइरकस** (तीनों दवाओं की दस-दस, पन्द्रह-पन्द्रह बूदें तीन गुने अल्कोहल में मिला कर) कुछ सप्ताह तक दी जाएँ तो उससे मद्यपान

की इच्छा कम हो जाती है। शराब छोड़ने के परिणामस्वरूप जो कष्ट होते हैं, उन्हें भी होम्योपैथी की सहायता से दूर किया जा सकता है। यदि मद्यपान का परित्याग करके नींद आनी बन्द हो जाए तो **एवैना सेटाइवा** मदर टिंक्चर लाभकारी सिद्ध होती है। अन्य कष्टों के लिए **अगारीकस** देनी चाहिए।

चिन्ताजनित स्नायु रोग

चिन्ता से जो स्नायु रोग उत्पन्न होते हैं उनके लक्षणों से सभी लोग परिचित हैं। ऐसे रोगी को तनाव की किसी भी स्थिति का सामना करना पड़े जैसे कि उसे किसी भेंट या सभा के लिए जाना हो तो वह आतंकित हो उठता है। उसके साथ ही दुर्बलता, पसीना, धड़कन, मिचली और उल्टी के लक्षण भी होते हैं। रोगी पर इतना अधिक मानसिक तनाव होता है कि वह यह सोचने लग जाता है कि उसके शरीर में कोई भयंकर रोग हो गया है। कई बार चिन्ता के इस दौर को थायराइड ग्रन्थि का विकार या हृदय रोग समझ लिया जाता है।

ऐसा सोचना गलत है, क्योंकि चिन्ताजनित विकार मानसिक भी हैं और शारीरिक भी। यह सामान्यतया अपरिपक्व व्यक्तित्व वाले लोगों को होता है, जिन्होंने अपने अन्तर्द्वन्द्वों को दबा रखा हो और जिनका मन स्थिर न हो। होम्योपैथी में इस विकार से ग्रसित अंग के लक्षणों को देखते हुए औषधि दी जाएगी। **एथ्यूसिया-२००** उन लोगों के लिए लाभकारी सिद्ध होगी जो किसी साक्षात्कार के लिए जाने से पहले या परीक्षा में जाने से पहले आतंकित हो उठते हैं। **अर्जेन्टम निट** चिन्ताग्रस्त, बेचैन और अधीर लोगों के लिए अच्छी है। अर्जेन्टम का व्यक्तित्व सदा जल्दी में होता है; किसी डाक्टर के पास जाएगा तो अपनी बारी आने तक बाहर के बरामदे में चक्कर

लगाता रहेगा। **जेलसीमियम** के लक्षण हैं चिन्ता के समय सिर चकराना, नींद-सी आना और हाथ-पांव में कंपन। **कैली फ़ास-१२ एक्स** उत्तेजित स्नायुओं को शान्त करती है। स्नायु विकार का कोई रोगी बहुत दिनों तक इसका प्रयोग करता रहे तो भी इस औषधि के कोई अप्रिय प्रभाव नहीं होते। **पलसाटिला** उन व्यक्तियों के लिए है, जो अत्यधिक तनाव से पीड़ित हों, चिंतित हों और जो अस्थिर चित्त हों। **स्कटेलारिया** का गुण यह है कि यह स्नायुओं को शान्त करती है। इसकी दस से बारह बूंदें तक दिन में तीन बार लेनी चाहिए।

यदि लम्बे समय तक नींद लाने वाली ऐलोपैथिक दवाइयों का उपयोग किया जाय, तो उसका दुष्परिणाम यह होता है कि रोगी अवसाद से पीड़ित हो जाता है और उसके हाथ-पांव में कंपन आ जाती है।

अंतड़ी की सूजन और मरोड़

कुछ लोग तनिक अधिक खा लें या कोई नया व्यंजन खा लें तो उन्हें दिन में कई बार पाखाने जाना पड़ता है। मजबूर होकर उन्हें अपनी खाने-पीने की आदत बदलनी पड़ती है और वे ऐसा भोजन खाते हैं जिससे उनका पेट ठीक रहे। लेकिन फिर भी उनका वजन घटता चला जाता है और उन्हें मल त्याग की सदा चिन्ता रहती है।

इसे पेट खराब होना कहिए या कुछ और, वास्तव में यह अमातिसार के लक्षण हैं, जिसे अंगरेजी में अमीबाजनित पेचिश कहते हैं। कंपनियों आदि के प्रबन्धक जो बहुत काम करते हैं, इससे विशेष रूप से पीड़ित होते हैं, क्योंकि उनकी दिनचर्या समय पर और ठीक ढंग से भोजन करने में बाधक होती है। यद्यपि यह कहा जाता है कि पेचिश गर्म प्रदेशों का रोग है, यह पीने के अशुद्ध पानी, ग़लत ढंग का भोजन करने से उत्पन्न अपच, कब्ज़, गन्दे परिवेश और निराशा के प्रभाव से भी हो जाती है।

पेचिश दो प्रकार की होती है। एक खूनी और दूसरी बादी यहां हम बादी या अमीबाजनित पेचिश की बात कर रहे हैं। जिसका कारण **एंटामीबा हिस्टोलाइटिका** नाम के कीटाणु होते हैं। ये खाने-पीने की चीज़ों के माध्यम से शरीर में प्रवेश करते हैं। यह पेचिश धीरे धीरे होती है। कीटाणुओं का आक्रमण होने के तीन सप्ताह से तीन महीने के भीतर इसका प्रकोप प्रारम्भ होता है। शुरू में दो या तीन दस्त आते हैं, जिनमें आंव या थोड़ा लहू हो सकता है, जिसकी ओर बहुत ध्यान नहीं जाता। यदि उस समय इसका उपचार न किया जाय तो रोग बिगड़ जाता है और पुराना हो जाता है।

जब यह रोग प्रचण्ड रूप में हो, तो पेट में भयंकर पीड़ा और कई बार बुखार भी हो जाता है। जब यह रोग आगे बढ़ता है तो रोगी का वजन कम हो जाता है, चमड़ी सूख जाती है, भूख नहीं रहती और शरीर में लहू की कमी हो जाती है। यह रोग इतना अधिक पाया जाता है कि कुछ रोगी तो इसे सामान्य बात समझने लग जाते हैं और सोचते हैं कि यह कष्ट तो बना ही रहेगा। कई व्यक्तियों के शरीर में इस रोग के कीटाणु रहते हैं, परन्तु रोग के लक्षण दिखाई नहीं देते। यह विशेष रूप से हानिकारक बात है, क्योंकि अन्दर ही अन्दर रोग पलता रहे तो कई बार जिगर में फोड़ा हो जाता है।

बहुत से रोगियों को बिना किसी इलाज के ही तनिक आराम आ जाता है, परन्तु बहुधा यह रोग बार-बार होता है और पुराना पड़ जाता है। यदि आपको संदेह हो कि आपको यह रोग हो गया है तो अपने मल का प्रयोगशाला से परीक्षण करवा लीजिए। यदि उसमें इस रोग के कीटाणु निकलें, तो पता चल जाएगा लेकिन दुर्भाग्यवश कीटाणुओं का अभाव इस बात का प्रमाण नहीं है कि आप इस रोग को अपने शरीर में लिए नहीं घूम रहे और उसे दूसरों तक नहीं पहुँचा रहे।

प्रबन्ध कार्य में लगे अधिकारियों को बहुधा होने वाला एक और रोग अन्तड़ी की सूजन है, जिसमें बादी पेचिश के समान पेट में दर्द और मल के साथ आंव और लहू आने के लक्षण होते हैं। बड़ी आंत के अन्दर की झिल्ली में सूजन आ जाए तो यह रोग हो जाता है। यह सूजन या तो आंव के कारण होती है और या किसी व्रण के कारण। आंवजनित रोग का प्रकोप हो जाए, तो उसका कारण भोजन में किसी विषैले पदार्थ का होना होता है। पुराने रूप में यह रोग बहुधा उन लोगों को होता है जो कब्ज़ न होने पर भी विरेचक दवाइयां खाते रहते हैं। व्रण के कारण अन्तड़ी में जो सूजन आती है उसका प्रकोप अधिक भयंकर होता है। उसका कारण यह होता है कि अंतड़ी में अत्यधिक सूजन आ जाती है और गुदा द्वार से पीप या लहू निकलता है। एक ४५ वर्षीया महिला को पेट में दर्द रहता था और हर बार पाखाने के साथ लहू आता था। यह रोग कई वर्ष तक रहा और परीक्षण से पता चला कि उसकी बड़ी आंत में अल्सर या व्रण है। रक्त स्राव के कारण उसके शरीर में लहू की कमी हो गई थी, दुर्बलता आ गई थी और वह बड़ी आसानी से थक जाती थी। इसके साथ ही उसके टखनों के आस-पास भी सूजन थी। **फास्फोरस**, जो उसके स्वभाव के अनुकूल औषधि थी, उसे दी गई, तो एक सप्ताह में ही लहू आना बन्द हो गया। लम्बे समय से चले आ रहे रक्त स्राव से उत्पन्न दुर्बलता के लिए उसे **चाइना** दी गई। उसका वजन बढ़ गया और उसे साधारण भोजन पचने लगा। उसके बाद उसके पाखाने में कभी पीप या लहू नहीं आया। (देखि चित्र ५.१)

होम्योपैथी में बहुत सी ऐसी औषधियां हैं, जो पेचिश और अंतड़ी की सूजन-दोनों रोगों में लाभदायक हैं: **आर्सेनिक एल्ब** (अत्यधिक बेचैनी और प्यास, जो दो-चार घूंट पानी पीकर बुझ जाती हो और बहुत अधिक दुर्बलता। पाखाने में जमा हुआ काले रंग का

पुरानी पेचिश या मरोड़

रोगियों की संख्या–१२६

क) लक्षण	कितने रोगियों में
१) पेट में दर्द	६२
२) भूख न लगना	३२
३) दुर्बलता	५०
४) जीभ पर मैल और मुह का बिगड़ा स्वाद	३६
ख) निशानियां	
१) पाखाने में रक्त	१८
२) छूने से पीड़ा	३१
३) जिगर बढ़ा हुआ	२०
ग) प्रयोगशाला परीक्षण	
१) पाखाने में अमीबा	१०२
सात दिन में आराम	१२६
फिर कष्ट होना	४८
तीन वर्ष तक फिर रोग न होना	८५

सात दिन नें रोग की तीव्रता में १००% मामलों में कमी हुई
३८% मामलों में फिर रोग के लक्षण उत्पन्न हुए
६७% रोगियों कोतीन वर्ष तक फिर रोग नहीं हुआ

चित्र ५.१

लहू आता है।); **शपारो अमरघोसो** (मरोड़ के साथ आंव मिला पाखाना); **मर्क कॉर** (पेट में अत्यधिक पीड़ा, मानों कोई काटे दे रहा हो या किसी ने पेट को जकड़ रखा हो); **नक्स वामिका** (अनावश्यक विरेचक औषधियां लेने के बाद; कभी दस्त लगते हों और कभी कब्ज हो जाती हो; हर समय हाजत होती हो, परन्तु पाखाना न आता हो और आता भी हो तो ऐसा लगे कि और आने वाला है); **ट्राम्बीडियम** (जब अंतड़ी में सूजन हो और पाखाने में लहू आता हो।)

अवसाद

प्रबन्ध या प्रशासन कार्य में लगे अधिकारियों को यह शिकायत बहुधा हो जाती है। ऐसा लगता है जैसे कुछ खो गया हो, जैसे दुनिया सूनी-सूनी सी हो और यह इच्छा हो कि स्थिति अधिक अच्छी होनी चाहिए। इस अनुभूति को अवसाद की संज्ञा दी गई है। यह अनुभूति अपने साधारण रूप में तो दिन प्रति दिन हो सकती है, परन्तु जब यह प्रचण्ड रूप धारण कर ले, तो उसका कारण तनाव, अपने पेशे में असुरक्षा की भावना, रुपये पैसे की चिन्ता आदि होती है। कई बार यह प्रवृत्ति पुश्तैनी होती है, लेकिन सम्भव है कि इसका वास्तविक कारण मन के किसी कोने में छिपा बैठा हो।

मनोरोगजनित अवसाद अधिक भीषण होता है और उसके प्रारंभ में पागलों जैसी प्रवृत्ति होती है। रोगी प्रसन्नचित्त होता है, अत्यधिक सक्रिय होता है और योजनाएँ बनाता रहता है। लेकिन जब योजनाएँ सफलीभूत नहीं होती, तो अवसाद उसे आ घेरता है। उसके बाद भूख लगनी बन्द हो जाती है, सिर और कमर में पीड़ा होती है, नींद नहीं आती, कब्ज़ हो जाती है और अन्य बहुतसे लक्षण सामने आते हैं। रोगी को किसी भी बात में रुचि नहीं रहती उसका

विवेक जाता रहता है और वह यथार्थ से अपना नाता तोड़ लेता है। जब इस रोग का प्रकोप बढ़ जाए तो संभव है कि रोगी आत्महत्या की बात सोचने लगे।

अन्य रोगों के समान इसका इलाज भी होम्योपैथी में मौजूद है। यदि किसी मानसिक आघात से अवसाद प्रारंभ हुआ हो तो **इग्नाशिया-३०** की चार-चार खुराकें प्रति दिन देने से लाभ होता है। इसका लक्षण यह है कि रोगी अस्थिर चित्त होता है, उसे अपनी भावनाओं पर कोई नियंत्रण नहीं रहता और हर समय ठण्डी साँसें भरा करता है। यदि रोग का कारण किसी मानसिक क्लेश का प्रकोप हो और रोगी अलग रहना चाहे तथा मिलने जुलने की इच्छा न रखता हो, तो उसे **नेट्रम म्यूर** देनी चाहिए। **सीपिया** ऐसी स्त्रियों के लिए है, जो उदास और उपेक्षाशील हों और किसी से मिलना-जुलना न चाहें।

इस रोग के अंतिम चरण में जब रोगी में आत्महत्या की इच्छा जाग उठती है तो **ऑरम** (जो सोने से तैयार की जाती है) अत्यन्त लाभकारी है। किसी ने ठीक ही कहा है कि स्वर्ण के अभाव में व्यक्ति आत्महत्या पर तुल जाता है, लेकिन उसी धातु से तैयार की गई होम्योपैथिक दवाई उसे जीवन और आशा का दान देती है।

फिशर या दरार

यह रोग गुदा मार्ग में दरार या कटाव और झिल्लियों के कटाव से उत्पन्न होता है। जिन रोगियों पर मानसिक तनावों का बोझ रहता है और जिनमें कब्ज़ की प्रवृत्ति रहती है, उन्हीं को यह रोग होने की अधिक आशंका होती है।

जब यह रोग अधिक प्रचण्ड होता है तो रोगी को पाखाना करते समय या उसके बाद तीव्र पीड़ा होती है। यह कुछ मिनट से लेकर कुछ घण्टे तक हो सकती है और इसकी प्रचण्डता इस बात पर निर्भर

है कि दरार कितनी गहरी है। मरीज एक बड़े गलत चक्र में पड़ जाता है क्योंकि पीड़ा की कल्पना करते ही वह अपना पाखाना रोक लेता है जिसके कारण कब्ज और बढ़ जाती है। वही कब्ज रोग को बढ़ा देती है।

जब यह रोग पुराना हो जाता है तो समय समय पर दरारें अपने आप ठीक हो जाती हैं और फिर पड़ जाती हैं। पाखाना करते समय पीड़ा भी होती है और थोड़ी पीप भी निकलती है। पाखाने के साथ लहू की एक धारी सी लगी रहती है। सम्भव है कि आंव वाली झिल्ली का छोटासा टुकड़ा गुदा से बाहर लटक जाए और गांठ सी बन जाय जिसे संतरी बवासीर की संज्ञा दी गई है क्योंकि यह गांठ गुदा द्वार पर प्रहरी के समान खड़ी रहती है। कई रोगियों के इस गांठ के आस-पास फोड़ा हो जाता है और यदि वह फट जाए तो नासूर बन जाता है, जिसे फिस्टुला की संज्ञा दी जाती है।

ऐसे मामलों में सबसे पहले तो यथाशीघ्र कब्ज का इलाज करना चाहिए। जब कब्ज हो, पाखाने के साथ लहू आता हो, जलन हो और दरार में टीस सी उठती हो तो **नेट्रम म्योर** देनी चाहिए। जब गुदा में फांस चुभने का दर्द हो, तो उसके लिए **नाइट्रिक एसिड** ही उचित औषधि है। यदि पाखाने के बाद घण्टों तक पीड़ा बनी रहे तो **राटनहिया** दी जानी चाहिए।

नासूर या नाडी व्रण

नासूर या नाड़ी व्रण, जिसे फिस्टुला कहा जाता है, शरीर के ऐसे दो अंगों के बीच असामान्य सम्बन्ध है, जो एक-दूसरे से बिल्कुल अलग हैं। इसकी तुलना ऐसी नाली से की जा सकती है, जो दोनों ओर से खुली है और जो अन्दर से द्रवों को बाहर की ओर लाती है। यह नासूर गुदा, मूत्राशय, योनि और थूक पैदा करने वाली ग्रन्थियों में अधिक होता है।

सबसे अधिक यह रोग गुदा में होता है और गुदा के लगभग २५ प्रतिशत कष्ट या रोग इसी के कारण होते हैं। यह उस रोगाणुओं का परिणाम है, जिनका आक्रमण गुदा की नाली में प्रारभ हुआ हो और वहां से नासूर शुरू होकर चमड़ी तक आ गया हो। ऐसा रोगी आकर यह बताता है कि उसे गुदा के आसपास फोड़े निकलते रहे हैं। कई दिन तक इस नासूर का मुंह खुल जाता है और इसमें से पीप और मल निकलता रहता है। उसके बाद यह अपने आप बन्द हो जाता है और महीनों तक नहीं होता। इस रोग के लिए सामान्यतया आपरेशन कराया जाता है। परन्तू कुछ मामलों में उसके बावजूद फिर यह रोग हो जाता है। बहुतसे रोगियों को होम्योपैथी की छोटी छोटी सफेद गोलियों से स्वास्थ्य लाभ होता है। जहाज कंपनियों के एक मालिक ने पिछले ६ साल में तीन बार नासूर का आप्रेशन करवाया। बार-बार आप्रेशन करते कराते गुदा अपना साधारण रूप और आकार खो चुकी थी। लेकिन फिर वहां पर फोड़ा हो गया और चौथी बार नासूर बन गया। उसे चार महीने तक **सिलिशिया** दी गई—प्रारंभ में ३० की शक्ति में और उसके बाद उससे अधिक शक्ति में। नासूर बिल्कुल सूख गया और उसका कोई निशान भी नहीं रहा कुछ सफेद गोलियों ने वह कमाल दिखाया जो आपरेशन नहीं कर पाया था। लेकिन रोग के बढ़ने से पहले ही चिकित्सा करवा लेनी चाहिए और इसलिए गुदा में फोड़े आदि हो जाएँ तो तुरन्त उनका इलाज करवाइए। इस रोग में स्वच्छता की भी बड़ी आवश्यकता है। गुदाके आस-पास यथासंभव सफाई रखनी चाहिए। उसे कुनकुने पानी से धोकर दिन में दो बार **कैलेंडुला** से साफ करना चाहिए। इसके साथ ही **साइलीशिया, कलकेरिया सल्फ़—६ एक्स** और **सैली शिया—६ एक्स** देने से नासूर ठीक होगा और पीप आनी भी बन्द हो जाएगी। इस रोग में दी जाने वाली अन्य औषधियां हैं : **कलकेरिया**

फ़ास (गुदा के समीप छोटा सा फोड़ा; बिना पीड़ा के पीप या लहू का आना; नासूर के साथ-साथ छाती का भी कोई रोग होना और वह इस प्रकार कि नासूर ठीक हो जाए तो छाती में तकलीफ हो और छाती की तकलीफ ठीक हो तो नासूर फिर उभर आए) और फ्ल्यूरिक एसिड (यह दांतों के नासूर में विशेष रूप से गुणकारी है; इसका रोगी गर्मी के कारण अधिक कष्ट पाता है और ठण्ड से उसे आराम मिलता है— ये लक्षण सिलीशिया के लक्षणों के बिल्कुल विपरीत हैं)।

बवासीर

बवासीर या अर्श एक ऐसा रोग है जिसकी चर्चा करते भी लोग शर्माते हैं। इसके परिणामस्वरूप कोई गंभीर रोग नहीं होता, लेकिन इसमें पीड़ा बहुत होती है और यह बढ़ जाए तो आदमी कोई काम करने योग्य नहीं रहता। कुछ डाक्टरों का कहना है कि इस प्रचलित विश्वास के विपरीत कि यह रोग केवल बूढ़ों और दुर्बल व्यक्तियों को ही होता है, यह युवा लोगों में भी हो सकता है। इस वात का भी प्रमाण मिलता है कि आज गति के युग में जव हर काम जल्दी से करना पड़ता है, तनाव रहता है और कुर्सी में बैठे बैठे दिन विताया करते हैं, अपने खानेपीने का ध्यान नहीं रखते, यह रोग अवश्य हो जाता है। लेकिन ववासीर है क्या? इस रोग में वे नाड़ियां फूल जाती हैं जो गुदा से मल निकालने में सहायक होती हैं। स्वस्थ व्यक्ति में यह नाड़ियां लचीली होती हैं और प्रातः शौच के बाद फिर अपनी सामान्य स्थिति पर आ जाती हैं। परन्तु यदि कब्ज का प्रकोप हो और ग़लत प्रकार का भोजन करने की आदत के कारण इन पर बोझ पड़े, तो इनकी लचक समाप्त हो जाती है और शौच के बाद भी इनमें लहू की मात्रा अधिक रहती है। कई बार ये नाड़ियां फट जाती हैं जिससे रक्त स्राव होता है और कई बार वे गुदा से बाहर लटक जाती हैं जिसमें अत्यधिक पीड़ा होती है और हिलना डुलना असम्भव हो जाता है।

बवासीर

रोगियों की संख्या—१७५

Symptoms	Present in no. of cases
Bleeding	117
Itching	25
Pain	92

चित्र ५.२

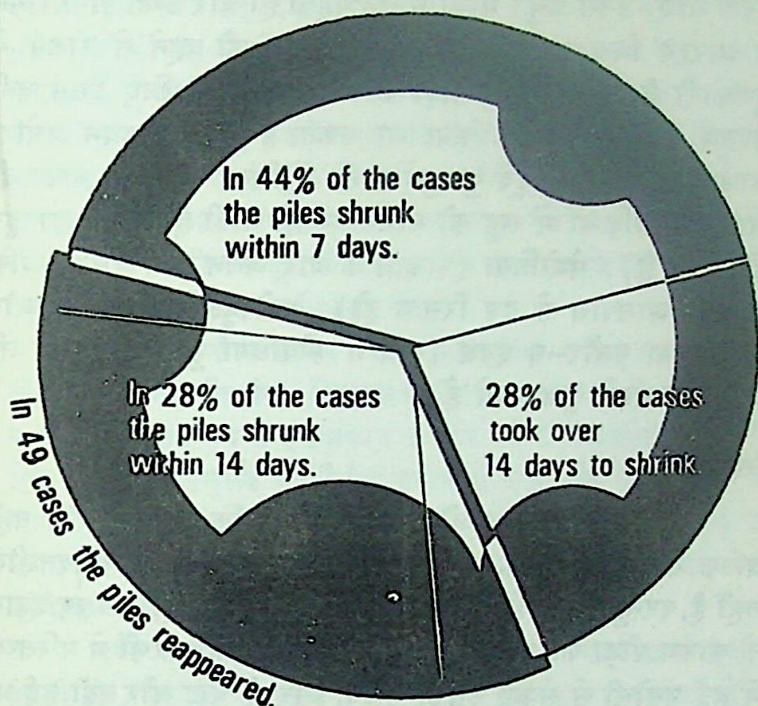
लक्षण	कितने रोगियों में
रक्त आना	११७
खुजली	२५
पीड़ा	९२

सौभाग्यवश इस रोग में होम्योपैथी बहुत अधिक सफल होती है। अन्य चिकित्सा पद्धतियां में इलाज संतोषजनक नहीं, क्योंकि इसमें बाहर लगाने की दवाइयों से लेकर चीर-फाड़ तक का विधान

है। आपरेशन से भी अस्थायी रूप से ही आराम मिलता है (चित्र ५.२) । यह रोग कठोर परिश्रम करने वाले को भी हो जाता है, जैसे कि बैठे रहने वालों को। इस बात को भी ध्यान में रखना चाहिए कि गुदा रोगों के कुछ मनोवैज्ञानिक पहलू भी हैं, क्योंकि यह देखा गया है कि अस्थिर मन वाले और घबरा जाने वाले लोगों में यह रोग होने की प्रवृत्ति अधिक होती है।

बवासीर का वर्गीकरण रोग की स्थिति, उसके लक्षणों और उसके प्रसार के आधार पर किया जा सकता है। बवासीर अन्दरूनी भी हो सकती है और बाहरी भी। गुदा को सिकोड़ने वाली मांसपेसी के ऊपर भी रक्तवाहिनी नाड़ी होती है और उसे आन्तरिक की संज्ञा दी जाती है जबकि इस मांस पेशी के नीचे की नाड़ी को बाहरी कहा जाता है। जहां तक रोग की तीव्रता का सम्बन्ध है, यह पहले, दूसरे या तीसरे चरण में हो सकता है। कई बार गुदा के बाहर लहू का थक्का बन जाता है जिसके कारण अत्यधिक पीड़ा होती है। अधिकतर डाक्टर तुरन्त आपरेशन कराने की सलाह देते हैं, लेकिन होम्योपैथी में इसका निश्चित इलाज है। एक व्यक्ति को एक बार अचानक गुदा में अत्यन्त तीव्र पीड़ा होने लगी। सर्जन ने यह कहा कि रक्तवाहिनी नाड़ी के बाहर लहू का थक्का बन गया है और उसने तुरन्त आपरेशन कराने की सलाह दी। रोगी होम्योपैथी के पास इलाज के लिए आ गया क्योंकि उसे दो-तीन दिन में आवश्यक काम से बाहर जाना था और आपरेशन कराके स्पताल में रहने का उसके पास समय नहीं था। उसे **पयोनिया** की कुछ खुराकें दी गई जिससे उसकी पीड़ा दूर हो गई और वह अपने काम से बाहर जाने योग्य हो गया। (चित्र संख्या ५.३)

बवासीर का इलाज करते समय सबसे पहले इसके मुख्य कारण को दूर करना आवश्यक है। वह है कब्ज और मल त्याग में जोर लगान



चित्र ५.३

की प्रवृत्ति। बहुधा ऐसा होता है कि बवासीर का तो इलाज हो गया लेकिन एक भी बार कड़ा मल आ गया तो किए कराए पर पानी फिर जाता है। इसलिए यह आवश्यक है कि उचित प्रकार का भोजन किया जाय और नियमित रूप से पाखाना आता रहे। इसके लिए सम्भवतः सबसे अच्छा सुझाव यह है कि रात को सोते समय **नक्स वॉमिका** की एक खुराक ले ली जाए और सवेरे उठते ही **सल्फर** की। अन्य औषधियां हैं : **एलोज** (जब मस्से अंगूर के गुच्छे के समान बाहर

लटक आएँ, उनसे प्रचुर मात्रा में लहू वहता हो और ठण्डा पानी लगने से आराम मिलता हो); **हैमामैलिस** (लहू को वहने से रोकने में गुणकारी है; सूजन और पीड़ा को काम करने के लिए इससे वनी मरहम का उपयोग भी किया जा सकता है); **नेगुण्डियम अमेरिकानम** (इसकी दस बूदें कुनकुने पानी में मिला कर प्रति घण्टा दी जाएँ तो नाड़ियों में लहू की मात्रा कम हो जाती है और पीड़ा दूर हो जाती है); **पैयोनिया** (पाखाने के बाद जलन और चुभन जबकि गुदा के आसपास से द्रव रिसता हो); **स्क्रोफ्युलेरिया नोडोसा** और **कलकेरिया फ़्लोर–६ एक्स** (यदि ये औषधियां कुछ महीने तक ली जायँ तो मस्से सूख जाते हैं)।

सिर दर्द

इस सम्बन्ध में पहली वात तो यह है कि सिर दर्द रोग नहीं वल्कि उसका लक्षण मात्र है। मस्तिष्क अपने आप में संवेदनशील नहीं है, परन्तु उसकी झिल्ली में स्नायुओं के तन्तु होते हैं, जिन पर दबाव के कारण पीड़ा का अनुभव होता है। सिर दर्द के कारणों में मस्तिष्क में हुई रसोली से लेकर उसकी सूजन, सिर में चोट और बढ़ी हुई या घटी हुई रक्त चाप भी है। यहां हम उस सिर दर्द की वात कर रहे हैं जो काम काज की चिन्ताओं से ग्रसित व्यक्ति को होता है, जिसे इनमें से कोई रोग नहीं है। उसका रोग तो उसका रहन-सहन और दिनचर्या है, जिसके परिणामस्वरूप वह दिन-प्रति-दिन सिर दर्द की शिकायत करता रहता है।

आवश्यकता से अधिक खाने और पाचन क्रिया के ठीक न होने के कारण सिर दर्द होता है जिसे पित्तजनित सिर दर्द की संज्ञा दी जाती है। इस प्रकार का सिर दर्द जिसमें पेट खराब हो और मितली आती हो **आयरिस वर्सिकलर** के देने से ठीक हो जाता है। बहुधा सिर

दर्द का दोष कब्ज को दिया जाता है। यह विश्वास किया जाता है कि बड़ी आंत में मल के इकट्ठा होते रहने से विषैले पदार्थ लहू में प्रवेश कर जाते हैं और उनके कारण सिर दर्द होता है। सम्भव है कि यह बात निराधार ही हो, क्योंकि ऐसे लोगों को भी सिर दर्द की शिकायत होती है जो व्रत रखते हैं। और फिर, शौच के तुरन्त बाद सिर दर्द का जाते रहना मानसिक प्रभाव के कारण जनित रोग का लक्षण है। लेकिन यदि किसी को भूख के कारण सिर में पीड़ा हो रही हो तो उसे सल्फ़र देने से आराम मिलता है।

नींद की कमी के कारण भी सिर दर्द हो जाता है। संचार उद्योग-जैसे कि फिल्म निर्माण, विज्ञापन और पत्रकारिता—में काम करने वालों को विशेष रूप से इस प्रकार के सिर दर्द की शिकायत रहती है। ऐसे लोगों का अनुभव यह है कि कई घण्टे तक सोने के बाद भी वह जागते हैं तो ताजगी का अनुभव नहीं करते, बल्कि सिर दर्द उस समय भी उन्हें परेशान किए रहता है। ऐसे रोगियों के लिए नक्स वॉमिका सर्वोत्तम दवाई है।

लम्बे समय तक ऐसे स्थान में काम करना जहां ताज़ी हवा न आती हो, सिर दर्द को जन्म दे सकता है। कुछ प्रकार के पेशों में भी यह रोग पाया जाता है। यह विशेष रूप से उन लोगों को होता है जो एक ही स्थिति में बैठे रहते हैं, जैसे टाइपिस्ट। गर्दन की किसी मांस पेशी में बल पड़ जाता है या वह कड़ी हो जाती है तो उस भाग म रक्त के संचार मे तनिक कमी आने के कारण सिर दर्द होने लगता है।

आधे सिर का दर्द जो बहुत कष्टप्रद हो, सामान्यतया उन लोगों को होता है जो पूर्णतावादी हों, अर्थात हर काम नपे तुले ढंग से करना चाहते हों। यह पीड़ा अत्यधिक होती है और रोग पुराना पड़ जाता है। लगभग दस प्रतिशत भारतीय इससे पीड़ित हैं। इसके साथ साथ मतली, उल्टी, और दृष्टिभ्रम जैसे लक्षण भी होते हैं। म्यो क्लीनिक

में जो अध्ययन किए गए हैं, उनसे पता चला है कि जो व्यक्ति रक्त चाप (ब्लड प्रेशर के रोगी हैं उन्हें इस प्रकार का दर्द अन्य रोगियों की अपेक्षा पांच गुना अधिक होता है। इसका कारण विशेष रूप से यह है कि लहू के दौरे में रुकावट होती है। मेरा अपना अनुभव यह है कि इस रोग के लिए जो औषधियां दी जाती हैं, उनमें लैक डीफ्लोरेटम सबसे अधिक लाभप्रद औषधि है। यह औषधि मलाई निकले दूध से तैयार की जाती है। इसके लक्षण ये हैं कि रोगी को कब्ज के साथ टीस जैसा दर्द उठता है। प्रकाश और शोर शराबे में दर्द बढ़ जाता है और सिर पर कस कर पट्टी बांधने से आराम मिलता है। अन्य औषधियां हैं: मैनिसपरमम (जब रोगी को बेचैनी होती हो और स्वप्न बहुत आते हों) निकोलम; यह रांगे से तैयार की जाती है और उन रोगियों में विशेष रूपसे लाभप्रद है जो दुर्बल हों और जरा सी बात पर घबरा जाते हों। उन्हें समय समय पर आधे सिर के दर्द की शिकायत रहती है); ओनोसमोडियम (बाईं ओर का सिर दर्द जो आंखोंपर बोझ डालने या लैंगिक दुर्बलता से उत्पन्न हो)। उल्लेखनीय बात यह है कि आधे सिर के दर्द के रोगियों के अध्ययन से पता चलता है कि यह रोग विशेष रूपसे उन लोगों को होता है जो अत्यधिक महत्वाकांक्षी होते हैं और लगातार अथक परिश्रम करके थोड़े ही समय में सफलता पाने की सामर्थ्य रखते हैं।

लेकिन यदि आप ऐसे किसी रोगी से कह दें कि उसके सिर दर्द का कारण तनाव है तो वह हँस कर कह देगा : "क्या मैं? तनाव का रोगी हूँ? " तनाव आज हमारे जीवन का अभिन्न अंग बन गया है और हम में से बहुतसे इसको पहचान तक नहीं पाते। पुरुष काम पर जाते हैं तो उस तनाव को स्वीकार कर लेते हैं और महिलाओं को घर में ही तनाव का सामना करना पड़ता है। बच्चे भी स्कूल से लौटते हैं तो वहां का तनाव अपने साथ ले आते हैं। एक बार एक रोगी

मेरे पास आया जिसकी सारी खोपड़ी में दर्द हो रहा था। वह एक वर्ष से इसे सहन करता आ रहा था और किसी भी दवाई या अपने खान-पान में परिवर्तन करने से उसे कोई लाभ नहीं हुआ था। उसका इतिहास यह था कि उसके पिता सामाजिक कार्यकर्ता थे जिनकी कथनी और करनी में धरती आकाश का अन्तर था। अपने घर में उनका व्यवहार अत्याचारी राजाओं जैसा था, जो अपनी पत्नी से बात तक नहीं करता था और अपने परिवार की भावनाओं की उसे बिल्कुल चिन्ता न थी। पूछ-ताछ करने पर पता चला कि यह रोगी अत्यधिक नाजुकमिजाज और असुरक्षा की भावना से पीड़ित था। मैं इस निष्कर्ष पर पहुँचा कि उसके सिर दर्द का कारण उसके अव-चेतन में कहीं छिपा बैठा है। मेरा अनुमान ठीक ही निकला, क्योंकि वह कुछ महीने बाद एक सुशील और प्यार करने वाली लड़की से शादी करके अलग घर बसाने योग्य हो गया तो उसका सिर दर्द जाता रहा।

होम्योपैथी में इस बात को स्वीकारा गया है कि तनाव चेतन पन में ही या अवचेतन में कहीं छिपा बैठा हो, उसके कारण सिर दर्द हो सकता है। **एसिड फ़ास** मानसिक थकावट में लाभदायी है; **काफ़ी** ऐसे सिर दर्द में, जो मानसिक उत्तेजना से प्रारंभ हुआ हो; **इग्नेशिया** ऐसे सिर दर्द में जो शोक से उत्पन्न हुआ हो; और **नक्स वॉमिका** क्रोध के प्रभाव से उत्पन्न सिर की पीड़ा में लाभदायी होता है।

काम करने वाले अधिकतर व्यक्ति सिर दर्द को अपने काम से उत्पन्न तनावों का एक अंग मानने लगते हैं और पीड़ा दूर करने वाली दवाइयां खाते रहते हैं। परन्तु हर प्रकार के सिर दर्द की उपेक्षा नहीं करनी चाहिए और न हर मामले में स्वयं ही उसका इलाज करन बैठ जाना चाहिए। एक भीषण और गंभीर प्रकार का सिर दर्द शरीर में छिपे किसी रोग के कारण हो सकता है। एक उदाहरण मस्तिष्क

में हुई किसी रसौली या फोड़े से उत्पन्न होता है, जिसे उपन्यासकारों और फिल्म वालों ने बहुत लोकप्रिय बना दिया है। सच तो यह है कि सिर की पीड़ा के केवल एक प्रतिशत रोगी मस्तिष्क की रसौली से पीड़ित होते हैं। यदि मस्तिष्क में रसौली हो तो इसके निम्नलिखित लक्षण होते हैं: बार-बार उल्टी के दौरे, दिखाई न देना, टांगों और बाहों में दुर्बलता और बात समझने में कठिनाई। यदि ये लक्षण हों तो तुरन्त किसी डाक्टर के पास जाना चाहिए।

रक्त चाप या ब्लड प्रेशर अधिक या कम हो जाए—बहुधा कम्पनियों के प्रबन्धकों में यह रोग पाया जाता है—तो भी सिर दर्द होने लगता है। यदि ब्लड प्रेशर अधिक हो तो कनपटियों में नब्ज के धड़कने के साथ-साथ पीड़ा का अनुभव होता है और यदि वह कम हो जाए तो मद्धिम-सा दर्द सारे सिर में होता है, रोगी पर आलस्य छाया रहता है, वह बहुत थका हुआ और अवसाद से पीड़ित होता है। जब सिर में दर्द किसी चोट के कारण हो तो **आर्नीका** देनी चाहिए। किसी विषय पर ध्यान केन्द्रित करने की असमर्थता, अनिद्रा और चिड़चिड़ापन)। यदि चोट पुरानी हो और सिर दर्द होता ही रहा हो तो **नेट्रम सल्फ़** देनी चाहिए। लेकिन अच्छा यही है कि पहले रोगी के दांतों और कानों की जांच कर ली जाय, क्योंकि इन अंगों में रोग कीटाणुओं के कारण भी सिर में पीड़ा होने लगती है। यदि नज़र कमज़ोर हो या रोगी बहुत अधिक पढ़ता हो तो उसे रूटा, देने से लाभ होगा।

खोपड़ी में कहीं कहीं पर जो रिक्त स्थान हैं उनकी सूजन के कारण होने वाली पीड़ा को **साइनससाइटिस** की संज्ञा दी गई है। इसके कारण भी सिर दर्द होने लगता है। यद्यपि यह सभी वर्गों के लोगों में पाया जाता है, कंपनियों के प्रबन्धकों आदि को इसके होने की अधिक संभावना होती है। ऐसे रोगी से पूछा जाय तो पता चलता



चित्र ५.४

है कि उसे जुकाम होता रहा है, नाक बन्द होती रही है और छीकें आती रही हैं। ऐसा सिर दर्द समय समय पर होता रहता है और साइनस के क्षेत्रों में हाथ लगाने से भी दर्द होता है।

यदि नाक से पानी बहता हो और बहुत छीकें आती हों तो आर्सेनिक एल्ब उपयुक्त औषधि है। यदि रोग पुराना हो तो रोगी के स्वभावानुसार औषधि देनी चाहिए। ऐसा सिर दर्द धूप में बढ़ जाय और रोगी की नाक से बहुत पानी बहता हो तो उसे नैट्रम म्योर देने की आवश्यकता है। जब नाक से बहने वाले पानी से दुर्गन्ध आती हो और साइनस में पीप पड़ने लगी हो तो पाइरोजीनियम लाभकारी सिद्ध होती है। बाईं ओर के दर्द में स्पाइजीलिया ठीक रहती है और दाईं ओर के दर्द में सैंग्वीनेरिया देनी चाहिए।

जब सिर दर्द गर्दन के पिछले भाग से सिर तक पहुँचा हो और उसके साथ ही कन्धों और बाहों में भी पीड़ा का अनुभव हो या चक्कर आते हों और कई बार रोगी मूर्छित होने को हो तो उसकी पीठ का एक्स-रे कराना चाहिए। यदि एक्सरे-से पता चले कि रीढ़ की हड्डी के दो जोड़ों के बीच का अन्तर कम हो गया है तो सिर दर्द का कारण स्पोंडीलोसिस नामक रोग होता है। यह अचानक कोई झटका लगने, भारी वजन उठाने या हड्डी के किसी रोग के कारण है। एक ऐसा रोग है, जिसमें हड्डियों में छोटे छोटे छिद्र हो जाते हैं। इस प्रकार के सिर दर्द के लिए बड़ा साधारण इलाज है और पीड़ा चाहे कितनी ही तीव्र क्यों न हो, चली जाती है। लेकिन लोग अपनी गर्दन खिचवाते हैं, बिजली से सेक करवाते हैं या कुत्तों के समान गले में पट्टा बांधे रहते हैं जिससे कि उन्हें इससे थोड़ी राहत मिले। रस टाक्स (यह मांसपेशियों के ऊतकों पर प्रभाव डालती है और कलकेरिया फ्लोर–६ एक्स और मैग फास–६ एक्स) इन दोनों औषधियों से मांसपेशियों की ऐंठन कम हो जाती है और पीड़ा कम करने में सहायता मिलती

है। इस रोग के लिए अन्य औषधियां हैं: कॉक्युलस (जहां इस रोग के साथ सिर चकराता हो) हाइपेरिकम (जहां स्नायुओं में पीड़ा होती हो); लेबुरम (गर्दन अकड़ जाए, गर्दन के पिछले भाग से खोपड़ी तक अत्यधिक तीव्र पीड़ा हो, सिर चकराता हो और मतली आती हो); और लैकनान्थस (जब गर्दन में बहुत अधिक अकड़न हो)।

औषधियों के साथ साथ घर में ही कुछ मिनट तक कुछ व्यायाम कर लिए जाएँ तो उससे इस प्रकार के सिर दर्द को दूर करने में सहायता मिलती है। वे व्यायाम निम्नलिखित हैं:

१—धीरे धीरे अपनी गर्दन बाएँ से दाएँ या दाएँ से बाएँ घुमाइए।

२—अपनी गर्दन को गोलाई में पहले दाएँ से बाएँ और फिर दाएँ से बाएँ घुमाइए।

३—पेट के बल लेट कर अपने हाथ पीठ के पीछे ले जाकर जोड़ लीजिए और फिर अपना सिर उठाइए।

४—बाहों को इस प्रकार से जोड़िए कि दायां हाथ बाईं कुहनी के नीचे और बायां हाथ दाहिनी कुहनी के नीचे आ जाए। उसके बाद धीरे धीरे अपने कन्धे उचकाइए। (देखिए चित्र ५.४)।

५—यदि पीड़ा बहुत अधिक हो तो जिस कन्धे में पीड़ा हो उसे गोलाई में बाएँ ओर दाएँ से बाएँ घुमाइए। चित्र (५.५) यदि पीड़ा अधिक न हो तो दोनों कन्धों को इसी प्रकार गोलाई में घुमाइए।

ऊँचा ब्लड प्रेशर ?

मुझे बहुत सी चिट्ठियां आती हैं जिनमें निराश रोगी यह पूछते हैं कि क्या ब्लड प्रेशर का कोई स्थायी इलाज ढूंढ़ लिया गया है? सच तो यह है कि तेज गति के इस युग में यह रोग एक साधारण बात हो गई है और सभी लोग इसकी चर्चा करते हैं। होम्योपैथी की दृष्टिसे



चित्र ५.५

इस रोग का विशेष महत्व है, क्योंकि इसमें यह प्रमाणित किया जा सकता है कि इलाज रोग का नहीं, रोगी का किया जाना चाहिए। इसका कारण यह है कि प्रत्येक रोगी के ऊँचे ब्लड प्रेशर का अलग कारण हो सकता है।

कई लोग जन्म से ही इस रोगके शिकार होने की प्रवृत्ति रखते हैं। यह बहुधा उन लोगों में पाया जाता है जो अधेड़ उम्र में पहुँच रहे हों और जिनमें चिन्ता करने की प्रवृत्ति हो, जो हर बात में गम्भीर पहलू ही देखते हों और जिनका स्वभाव जल्दी उत्तेजित होने का हो। यदि किसी का रहन-सहन ऐसा हो कि उसके मस्तिष्क या भावनाओं पर लगातार बोझ पड़ता हो तो उसमें भी ऊँचे ब्लड प्रेशर की प्रवृत्ति होती है। ऐसे ही लोगों में बराबर मद्यपान और बहुत अधिक सिगरेट पीने की आदत होती है। ऊँचे ब्लड प्रेशर का तात्कालिक कारण तो यह होता है कि धमनियों में तनाव के कारण लहू के बहने में अधिक कठिनाई होती है और यदि यह रोग बना रहे तो गुर्दे और हृदय की बीमारियां हो सकती हैं।

ऊँचा ब्लड प्रेशर दो प्रकार का होता है : एक तो हल्का या सुदम्य अर्थात् जिसे आसानी से ठीक किया जा सकता हो और दूसरा दुर्दम्य या असाध्य। साध्य ब्लड प्रेशर की समस्या केवल लहू का दबाव बढ़ जाने से उत्पन्न होती है और उसका कारण शरीर के भीतर छिपा हुआ कोई रोग नहीं होता। इसके लक्षण सुसाध्य होते हैं, यह धीरे धीरे बढ़ता है और इसमें गुर्दे को कोई हानि नहीं पहुँचती। हो सकता है कि इसके लक्षण कई वर्ष तक प्रकट न हों और डाक्टरी परीक्षा कराते समय संयोगवश इसका पता चल जाय। सिर में भारीपन और धड़कन सी होती है, कभी-कभी हल्का-सा चक्कर आता है, कानों में सांय सांय होती है, मुंह लाल हो जाता है, नींद नहीं आती, दिल धड़कता है, नींदसी आती रहती है और रोगी जल्दी ही थक जाता

है। ये सब इस रोग के प्रारंभिक लक्षण हैं। इसके साथ ही यह भी सम्भव है कि याद रखने की क्षमता कम हो जाय, अकारण खीझ आती रहे और रोगी को अपनी भावनाओं पर कोई नियंत्रण न रहे। इलाज से ये लक्षण दूर हो जाते हैं, लेकिन कभी-कभी बिना दवाई के भी ठीक हो जाते हैं। लेकिन इसका यह मतलब नहीं कि रोग समाप्त हो गया है। यह कई बार, कई वर्षों के बाद भी फिर उभर आता है। परन्तु यदि इसे रोका न जाय तो हृदय और गुर्दे के रोगों के लक्षण उत्पन्न हो जाते हैं। कई बार मतली, उल्टी और दस्त जैसी बीमारियां भी हो जाती हैं।

यदि यह रोग कई वर्ष तक बना रहे तो असाध्य हो जाता है। एक दिन अचानक ही गम्भीर लक्षण दिखाई देने लगते हैं और रोग बिगड़ जाता है। भूख और वजन कम हो जाता है, सिर दर्द, खून की कमी और गुर्दे की कोई न कोई बीमारी हो जाती है।

इस रोग का इलाज यह है कि दवाई लेने से पहले अपने रहन-सहन का ढंग बदला जाए, आराम किया जाय, उचित भोजन और हल्के व्यायाम का सहारा लिया जाय। इसमें योगासनों और ध्यान लगाने से बहुत लाभ होता है। जिन व्यक्तियों का वजन अधिक हो, उन्हें अपने खाने-पीने में सावधानी बरत कर वजन घटाना चाहिए। भोजन में नमक की मात्रा न्यूनतम कर देनी चाहिए और जो व्यक्ति बहुत नाजुक मिजाज हों उन्हें चाय, काफी, तम्बाकू और अल्कोहल की मात्रा घटा देनी चाहिए क्योंकि इन पदार्थों से हृदय और सांस से संबंधित अंग उत्तेजित होते हैं। होम्योपैथी में ब्लड प्रेशर के मरीज के संपूर्ण व्यक्तित्व का अध्ययन किया जाता है और ऐसी औषधि दी जाती है जो उसकी प्रकृति के अनुकूल हो। यदि ऐसी औषधि का चुनाव करने में सफलता मिल जाय तो रोग सदा के लिए चला जाता है। होम्योपैथ इस बात का विशेष रूप से ध्यान रखते हैं कि कहीं

रोगी को चर्म रोग होने पर ऐसी औषधियां तो नहीं दी गईं जिन्होंने उसके रोग को दबा दिया हो। एक बार एक ६५ वर्षीया वृद्धा मेरे पास ब्लड प्रेशर के इलाज के लिए आई। उसका ब्लड प्रेशर २००/१०० था। उसकी छाती में पीड़ा होती थी और हृदय में खून की कमी के लक्षण उत्पन्न हो रहे थे। मैंने महिला के पैरों की ओर देखा तो उन पर गहरे रंग के धब्बे दिखाई दिए। वहां पर एग्ज़ीमा था जो दबा दिया गया था। उसे सल्फ़र दी गई जिससे एग्ज़ीमा उभर आया और उससे पानी बहने लगा। लेकिन १४ दिन के बाद छाती की पीड़ा गायब हो गई और कार्डियोग्राम (हृदय की गति दिखाने वाला चार्ट) लिया गया तो पता चला कि उनका हृदय ठीक है और ब्लड प्रेशर १३०।८० हो गया। (चित्र ५.७)

रोगी की प्रकृति के अनुसार औषधि का चुनाव करना चाहिए लेकिन साथ ही निम्नलिखित औषधियां भी लाभदायक हैं: **एमिल नाइट्रोसम** (इस औषधि से धमनियां खुल जाती हैं। इसकी दो से पांच बूंद तक रूमाल में डालकर सूंघा ली जाएँ तो धमनियां खुल जाती हैं और खून का दबाव कम हो जाता है); **औरम म्यूर** (जब धमनियों के कड़ा हो जाने के कारण ब्लड प्रेशर बढ़ गया हो); **बरायटा म्यूर** (यह औषधि विशेष रूप से ऐसे वृद्ध रोगियों के लिए लाभदायक है जिनके अधिकतम और न्यूतनग ब्लड प्रेशर में बहुत अधिक अन्तर हो। उदाहरण के लिए, जिस रोगी का ब्लड प्रेशर २००/८० हो उसे इस दवाई से बहुत लाभ होगा); **बैलाडोना** (जब सिर में चसक होती है जो प्रकाश और शोर-शराबे से अधिक हो); **विरेट्रम विरडी** (जब ब्लड प्रेशर दुर्बलता के कारण हो और साथ में जी मिचलाता हो तो इसके देने से ऊपरी और निचली दोनों सीमाएँ कम हो जाती हैं।

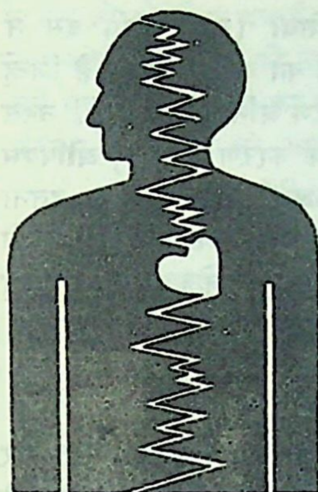
कुछ व्यक्ति पांच घण्टे की नींद लेकर ही भले चंगे रहते हैं।

कुछ को आठ घण्टे की नींद चाहिए और उसके वाद उन्हें दोपहर में भी थोड़ी देर सोने की इच्छा होती है। लेकिन सबसे अधिक कष्ट तो उन लोगों को होता है जिन्हें नींद आती ही नहीं। अनिद्रा के अस्थायी कारणों में एक तो यह है कि चारपाई नई हो या ऐसी आवाज़ें आती हों जिन्हें सुनने का अभ्यास न हो। इसके अतिरिक्त पेट में वायु या पीड़ा, मस्तिष्क की झिल्ली के शोथ जैसे रोग या मूत्र-जनित विषाणुओं का प्रभाव और मद्यपान भी अनिद्रा को जन्म दे सकते हैं।

अनिद्रा

लेकिन अनिद्रा का सबसे महत्वपूर्ण एक कारण मानसिक होता है। वह है चिन्ता जिसके कारण रोगी नींद लाने की गोलियां खाने लगता है। इसके कारण उसका तनाव कम हो जाता है, लेकिन सबसे अच्छा यह है कि व्यक्ति आराम करे और चिन्ता न करे। यदि अनिद्रा रोग जारी रहे तो स्नायुविकार अवश्यंभावी है। नींद लाने की गोलियों से तो अस्थायी रूप से लाभ हो सकता है, रोग का जड़ से उखड़ना संभव नहीं। यह बात समझ लेनी चाहिए कि शरीर की अन्य क्रियाओं के समान नींद का भी अपना एक चक्र या लय होती है। यदि यह चक्र बार-बार टूटता रहे – जो लोग पारियों में काम करते हैं–या जैसे विमानों में काम करने वाली परिचारिकाएँ होती हैं––तो अनिद्रा रोग हो जाता है।

इस रोग की निम्नलिखित औषधियां हैं: **अवेना सेटाइवा** (की १५ से ३० बूंदें पानी में मिला कर देने से ऐसे लोगों को गहरी नींद आ जाती है जो मानसिक थकावट के शिकार हों); **कॅम्फ़ोरा मोनोब्रोमाटा–३ एक्स** (जहां रोगी बहुत अधिक चाय पीता हो); **कोका–६** (अत्यधिक मानसिक काम करने और रातों को देर तक



आयु	स्त्री/पुरुष	होम्योपैथिक इलाज से पहले प्रेशर कम करने की दवाइयों के साथ (+) या उनके बिना (–)		होम्योपैथिक इलाज के बाद, औषधियां जारी/बंद	
३५	पु.	१४५।१००	+	१२०।८०	बंद
६०	,,	२१०।११०	+	१६०।९०	,,
२०	स्त्री	१४०।१००	–	१२०।९०	,,
५५	पु.	१८०।११४	–	१५०।९०	,,
४०	स्त्री	१८०।९६	–	१४०।८४	,,
४५	पु.	२२०।१२०	+	१६०।१०४	जारी
४९	,,	१७०।१०४	–	१२०।९०	बंद
५२	स्त्री	१९०।१००	–	१२०।९०	,,
५२	,,	१९०।१००	–	१४०।९६	,,
६४	पु.	२१०।१२०	+	१५०।८०	जारी
५७	स्त्री	२००।१२४	–	१२०।९०	बंद

चित्र ५·७

जागने से नींद में बेचैनी हो); **इग्नोशिया** (सोते समय दस से बारह बूदें ले ली जाएँ तो ऐसे रोगियों को लाभ मिलता है जिन्हें अचानक किसी मानसिक आघात के कारण अनिद्रा रोग हो); **नक्स वामिका** (नशीले पदार्थों की अधिकता के कारण अनिद्रा) **ओपियम** (जहां रोगी ऊंघता हो परन्तु नींद न आती हो; बिछौना इतना गर्म लगे कि रोगी करवट बदलता रहे: अत्यधिक संवेदनशील हो और दूर से आने वाली आवाज़ों को भी सह न सके); **सम्बुल** (जब अत्यधिक मद्यपान के कारण यह रोग हुआ हो)।

गुर्दों के विकार

गुर्दों के विकार उनके अपना काम ठीक से न कर पाने से लेकर उनकी सूजन तक हैं। परन्तु काम करने वाले लोगों में जो बीमारी सबसे अधिक होती है, वह हैं पथरी। इस बीमारी का सबसे पहला लक्षण यह होता है कि पेशाब करने में कठिनाई का अनुभव होता है। पीड़ा अचानक पीठ में शुरू होती है और वहां से पेड़ू और अण्डकोषों तक फैल जाती है। प्रसव पीड़ा और दांत के दर्द के बाद यह सबसे अधिक तकलीफ देने वाला दर्द है। कई बार इतनी तीव्र पीडा होती है कि रोगी लोटने लगता है। पीड़ा के समय उसका चेहरा पीला पड़ जाता है, मतली आती है और पसीने के साथ-साथ नाड़ी की गति वढ़ जाती है। एक्स-रे करने से गुर्दे या मसाने में पथरी दिखाई देने लगती है। यह पथरी कैल्शियम, यूरिक एसिड या फ़ास्फ़ेट से बनी होती है। कैल्शियम कड़ा और खुरदरा होने के कारण पथरी से पीड़ा होती है और कई बार मूत्र के साथ लहू भी आ जाता है। यह पथरी सामान्यतया या तो गुर्दों के मुंह में होती है और या गुर्दे को मूत्राशय से मिलाने वाली नली में। कई बार मूत्राशय में भी पथरी बन जाती है। मूत्राशय में जो पथरी हो उससे पीड़ा तो अधिक होती है,

परन्तु होम्योपैथिक दवाई से उसे बाहर निकालना बहुत आसान है। जब कोई पथरी गुर्दे की नली में हो और उसने रास्ता रोक रखा हो तब गुर्दा खराब होने का डर होता है और उसी दशा में आपरेशन कराना आवश्यक हो जाता है।

एक बार एक व्यक्ति को, जब वह घर से बाहर था, पेट में बड़े जोर का दर्द उठा। दर्द अचानक हुआ था और कुछ ही देर बाद समाप्त हो गया और उसने यह सोच कर इसकी ओर ध्यान नहीं दिया कि पेट में वायु के कारण पीड़ा उठी थी। कुछ सप्ताह बाद फिर उसे इतने जोर का दर्द हुआ कि वह भूमि पर लोटने लगा। उसके मूत्र की परीक्षा की गई तो उसमें आर०बी०सी० (लहू के लाल कण) और कैल्शियम आक्सीलेट के कण पाए गए। एक्स-रे करने से पता चला कि दायीं ओर की मूत्र नली में मटर के दाने जितनी पथरी है। उसे **लाइकोपोडियम–१०००, बर्बरिस बी०–२०० बर्बरिस बी– मदर टिंक्चर** एक सप्ताह तक दिया गया। दस दिन बाद उसकी नसों में नीला रंग भरकर एक्स-रे लिया गया तो पथरी का निशान नहीं था और मूत्र की परीक्षा करने पर पता चला कि उसमें भी कोई लक्षण नहीं हैं। इससे न केवल रोगी को बल्कि एक्स-रे करने वाले को भी आश्चर्य हुआ कि पथरी गई कहां। होम्योपैथी की दवाइयों में उस पथरी को तोड़ कर उसके कण मूत्र के रास्ते बिना किसी कष्ट के निकालने की सामर्थ्य है। लेकिन कुछ मामलों में बड़े आकार की कोई पथरी पेशाब के रास्ते निकलती है तो बहुत दर्द होता है, बल्कि कई बार खून भी आ जाता है।

होम्योपैथी में यह विश्वास किया जाता है कि गुर्दे की पथरी के लिए आपरेशन कोई इलाज नहीं। चीर-फाड़ करके पथरी निकाल देने से पीड़ा का इलाज हो जाएगा, परन्तु फिर से पथरी के बनने की

संभावना खत्म नहीं होगी। इसकी तुलना गन्दे पानी के पाइप से की जा सकती है जो बन्द हो गया हो। लेकिन सफाई के बाद भी वह फिर बन्द हो सकता है। यह संभावना तो तभी समाप्त होगी जब उसमें से बहने वाले पानी में कोई गंदगी न हो, जो जमा होकर उसे बन्द कर सके। होम्योपैथी में रोगी की प्रकृति के अनुरूप दवाई दी जाती है जिससे पथरी के बनने की प्रवृत्ति समाप्त हो जाती है और साथ ही, पथरी को बाहर निकालने में भी सहायता मिलती है।

इसकी विशेष दवाई है **बर्बेरिस बल्गेरिस**–Q। यदि इसकी दस-दस बूंदें दिन में तीन बार आधा प्याला पानी में मिलाकर ले ली जाएँ तो पथरी निकल जाती है। दूसरी औषधियां हैं **कैन्थारिस** (पेशाब करने की उत्कट इच्छा, परन्तु बूंद बूंद करके आता है: पेशाब से पहले और बाद में ऐसी असह्य वेदना होती है मानो कोई काटे दे रहा हो। बाईं ओर पीड़ा अधिक होती है; मूत्र में लहू मिला हुआ होता है); **लाइकोपोडियम** (सामान्यतया ऐसे मामलों में जब पथरी दाईं ओर हो; मूत्र धीरे धीरे आए और रोगी को बहुत जोर लगाना पड़े; मूत्र से पहले पीठ में पीड़ा हो; पथरी भारी हो और उसके लाल रंग के कण टूट टूट कर पेशाब में निकल रहे हों); **नक्स वॉमिका** (विशेषकर तब लाभदायक है जब पथरी बाईं ओर हो; मूत्र करने की इच्छा हो, परन्तु दो-चार ही बूंद निकलें); **सारसापैरिला** (पीड़ा दायें गुर्दे से नीचे की ओर जाये: पेशाब करने से पहले और करते समय घोर पीड़ा हो; पेशाब बहुत कम और पतली धार के साथ आए और उसमें लहू और पथरी के कण आते हों)।

इस इलाज के साथ-साथ रोगी को दिन में दस से बारह गिलास तक पानी या अन्य पेय पीने चाहिए। जौ का पानी इसके लिए बहुत अच्छा है। उसे गुठलीदार फल और सब्जिया, जैसे टमाटर और बैंगन, नहीं खानी चाहिए। जिस रोगी की पथरी कैल्शियम या

फ़ास्फ़ेट की हो, उसे अण्डे या दूध जैसी वस्तुएँ नहीं लेनी चाहिए, जिससे कि उसके भोजन में केल्शियम की मात्रा कम हो जाय और फिर से पथरी न बने।

आमाशय के अल्सर

पेट को मानवीय भावनाओं का परिचायक कहा जाय, तो उपयुक्त ही होगा। यह बात सर्वविदित है कि लगभग प्रत्येक भावना का प्रभाव पाचन क्रिया पर पड़ता है। इसी लिए तो स्वास्थ्य विशेषज्ञ इस बात पर बल देते हैं कि भोजन तनाव रहित और शान्त वातावरण में करना चाहिए। इस कारण जो लोग लगातार तनाव की परिस्थितियों में रहते हैं उन्हें पेट की कोई गंभीर बीमारी हो जाय तो उसमें आश्चर्य ही क्या है? इन बीमारियों में सबसे अधिक तो अल्सर की बीमारी है, जिसे विज्ञापन विशेषज्ञों की बीमारी कहा जाता है।

पेट के अल्सर की दशा में शरीर पर मन का भाव स्पष्ट रूप से दिखाई पड़ता है। आज के समाज में जहां चारों ओर तनाव ही तनाव हैं, यह बीमारी बढ़ रही है। तीन हज़ार व्यक्तियों का परीक्षण किया गया तो पता चला कि उनमें से १५ प्रतिशत को अल्सर थे। म्यो क्लीनिक में अपच के पन्द्रह हज़ार रोगियों की परीक्षा की गई तो उनमें से १५.५ प्रतिशत के शरीर में ऐसे विकार आ गए थे, जो पेट के अल्सर के कारण थे। चार हज़ार रोगियों की शव परीक्षा की गई तो यह पाया गया कि उनमें से २.२ प्रतिशत के पेट में अल्सर थेऔर ३.८ प्रतिशत को ग्रहणी (जहां पक्वाशय का मुंह आंत में खुलता है) में पुराने अल्सर थे।

इस रोग का ब्यौरा देने से पहले इसके बारे में प्रचलित कुछ गलत धारणाओं को दूर करना आवश्यक है। बहुतसे लोग यह सोचते

हैं कि पेट में मेदा ही एक अंग है। ऐसी बात नहीं है। मेदा वास्तव में एक छोटी थैली-सी है जो पेट के बाईं ओर हृदय से नीचे लटकी होती है। दूसरी गलत धारणा यह है कि मेदा सारे उस भोजन को नहीं पचाता है जो उसमें पहुँचता है। इसका मुख्य काम तो भोजन को छोटे-छोटे टुकड़ों में तोड़ देना होता है और जब इस प्रकार मलीदे जैसा भोजन अंतड़ी में प्रवेश करता है तो वहां से भोजन के विभिन्न तत्व शरीर का अंग बनते हैं। अल्सर एक छोटा-सा क्षेत्र है जहां मेदे या ग्रहणी की झिल्ली छिल या घिस गई हो और वहां पर सूजन आगई हो। जब मेदे का तेज़ाब या पाचक रस सूजन वाले उस क्षेत्र पर से गुजरते हैं तो पीड़ा होती है। यदि अल्सर गहरा हो जाय तो मेदा फट सकता है और अल्सर का आकार आलपिन के सिर से लेकर पचास पैसे के सिक्के जितना होता है।

मेदे के अल्सरों की तुलना में ग्रहणी के अल्सर तिगुने या चार गुने मिलेंगे। मेदे के अल्सर के पुराने रोगी महिलाओं में भी उतने ही हैं जितने कि पुरुषों में। परन्तु ग्रहणी के अल्सर स्त्रियों की अपेक्षा पुरुषों में चार गुना होते हैं। पुराना अल्सर बच्चों में बहुत कम पाया जाता है यद्यपि एक अध्ययन के परिणामस्वरूप यह पता चला कि जिन बालकों की परीक्षा की गई, उनमें से बारह प्रतिशत को यह रोग था। इन बालकों की आयु १४ और २० वर्ष के बीच थी। पचास की आयु के बाद बहुत कम लोगों को अल्सर होते हैं। स्त्रियों में अल्सर की औसत आयु २६ है और पुरुषों की ४५। ग्रहणी के अल्सर की औसत आयु स्त्री-पुरुषों, दोनों में ३८ वर्ष है।

यह रोग धीरे धीरे होता है और इसके पहले लक्षण तब दिखाई देते हैं जब किसी व्यक्ति ने बहुत खा लिया हो या ऐसा भोजन किया हो जो आसानी से पचता नहीं है। इसमें मेदे के बीचों बीच जलन और तीव्र पीड़ा होती है जो दूध पी लेने से शान्त हो जाता है। पीड़ा भोजन के

तुरन्त बाद प्रारंभ होती है और आधे घण्टे बाद अपने आप समाप्त हो जाती है। बढ़ते हुए दर्द के साथ वमन होने लगता है और पेट से अम्ल और थोड़ा सा पचा हुआ भोजन उल्टी के रास्ते निकलता है। रोगी को भूख सामान्यतया ठीक लगती है, परन्तु वह डर के मारे कम खाता है। उसे कब्ज़ भी रहता है और उसका वज़न घटने लगता है।

ग्रहणी का अल्सर पुराना पड़ जाय तो भोजन के लगभग तीन घण्टे बाद बेचैनी होती है और ऐसा लगता है मानो पेट बहुत भर गया है। उसके बाद दर्द होने लगता है। यह दर्द भोजन के एक से चार घण्टे के भीतर होता है। इसका क्षेत्र नाभि के आस-पास का क्षेत्र है। इसे सामान्यतया भूख से होने वाली पीड़ा कहा जाता है, क्योंकि इस पीड़ा के साथ ही भूख लगती है और खाने से पीड़ा कम हो जाती है। ये लक्षण कई बार कई सप्ताह तक नहीं होते, लेकिन चिन्ता, ठण्ड लग जाने, आवश्यकता से अधिक खाने और बहुत अधिक तम्बाकू या शराब पीने से फिर इस रोग के लक्षण उभर आते हैं।

पेट का एक्स-रे कराने या पाखाने की जांच कराने से अल्सर का पता चलता है। अस्सी प्रतिशत रोगी दवाई खाकर ठीक हो जाते हैं और केवल दस प्रतिशत मामलों में आपरेशन आवश्यक होता है। ऐसे रोगी को तनाव से बचना चाहिए, जी भर कर सोना चाहिए और सप्ताह में कम से कम एक दिन आराम करना चाहिए, जिससे कि उसे अपने काम की कोई चिन्ता न हो। उसे दूध पीना चाहिए या हल्का भोजन करना चाहिए। धूम्रपान और मद्यपान जितना कम किया जाय उतना ही अच्छा है। रोगी को चाहिए कि भोजन को भलीभांति चबा चबाकर और धीरे धीरे खाए। फलों और गिरियों के छिलके उतार देने चाहिए और खुरदरे पदार्थ नहीं खाने चाहिए। इसके साथ ही मिर्च मसालों और अचार आदि का निषेध कर देना चाहिए।

ऐसे रोगी को चाहिए कि अपनी दिनचर्या को सुधारने के साथ-

साथ अपनी भावनाओं को सुनियंत्रित रखे और चिन्ता आदि के बोझ से बचे। यह बहुत आवश्यक है कि वह दिन-प्रति-दिन की समस्याओं के तनाव से प्रभावित न हो, और सुख चैन से रहे। होम्योपैथी में जो दवाइयां दी जाती हैं वे निम्नलिखित हैं : **एनाकार्डियम–२००** (खाली पेट पीड़ा जो खाने से कम हो जाय); **सल्फ़र** (दिन मे ग्यारह बजे के लगभग भूख के साथ पीड़ा।) ये दो औषधियां ग्रहणी के अल्सर के लिए हैं। मेदे के अल्सर के लिए : **आर्सेनिक एल्ब** (जलन और पीड़ा, जो गर्म पदार्थ पीने से कम होती हो; भोजन के बाद बेचैनी और वमन); **कांडुरांगो** (भोजन से पहले इसके टिंक्चर की आठ बूंदें लेने से पीड़ा कम होती है; यदि कब्ज हो और उल्टी के साथ छाती में जलन और पीड़ा हो और यह लगे कि मानो भोजन वहीं पर रुका पड़ा है, तो यह औषधि तीसरी पोटेंसी में देनी चाहिए) **जरेनियम मैक–टिंक्चर** (मेदे के अल्सर में उल्टी को कम करता है); **नक्स वॉमिका** (जब भोजन के तुरन्त बाद कष्ट बढ़ जाय); **आर्नीथोगेलम** (जब अल्सर से खून आता है और उल्टी पिसी हुई काफी के रंग की हो)।

पीठ का दर्द

बहुत से लोग कुर्सी में बैठे बैठे दिन बिताते हैं। उनकी कमर के निचले हिस्से में पीड़ा होने लगती है जिसे बैठने की स्थिति के कारण होने वाली पीड़ा कहा जाता है। टाइपिस्ट लोग जो दिन भर एक ही स्थिति में बैठे रहते हैं, उनके कन्धों की हड्डी के बीच पीड़ा होने लगती है। ऐसे रोगियों को **ओक्ज़ेलिक एसिड–६** देने से लाभ होता है (इसके लक्षण ये हैं कि बैठने का ढंग बदलने से पीड़ा कम होती है और उसकी बात सोचने से बढ़ती है)। अन्य औषधियां हैं : **काली कार्ब** (जब कमर के नीचे दुर्बलता का अनुभव हो); **रस टॉक्स** (ऐसा लगता है जैसे पीठ टूट गई हो; रोगी उठकर चलने लगता है तो थोड़ी देर को पीड़ा बढ़ जाती है, लेकिन थोड़ा चलने से आराम मिलता है); **मैग फॉस–६**

एक्स और **कलकेरिया फ़्लोर–६** एक्स देने से ऐंठन दूर होती है। इन औषधियों के अतिरिक्त रोगी को कड़ी चारपाई पर सोना चाहिए और काम करते समय सीधे बैठना चाहिए। साथ ही थोड़ी-थोड़ी देर बाद उसे अंगड़ाई लेनी चाहिए।

शियाटिका

शियेटिक नाड़ी जंघा के पीछे से लेकर पैर तक जाती है। जब इसमें सूजन हो तो बड़े ज़ोर की पीड़ा होती है जो नितम्ब से लेकर पैर तक जाती है। इस पीड़ा का मुख्य लक्षण यह है कि यह कमर से शुरू होकर जंघा तक पहुंचती है। यदि कोई व्यक्ति घण्टों तक कुर्सी पर बैठा रहे या अचानक नीचे को झुक जाए तो पीड़ा उठती है।

आरंभ में पीड़ा हल्की होती है लेकिन जल्दी ही बहुत बढ़ जाती है। इसमें ऐसा लगता है जैसे कोई नाड़ियों को खींच रहा हो। यह झुकने से, खांसने से या बिस्तर में करवट बदलने से बढ़ जाती है और आराम करने से कम हो जाती है। जब यह रोग बहुत दिन तक रहे तो पिंडली की मांस पेशियां सूखने लगती हैं, पैरों की उंगलियां मुड़ती नहीं हैं, वे कई बार सुन्न हो जाती हैं और कभी-कभी उनमें झनझनाहट होती है।

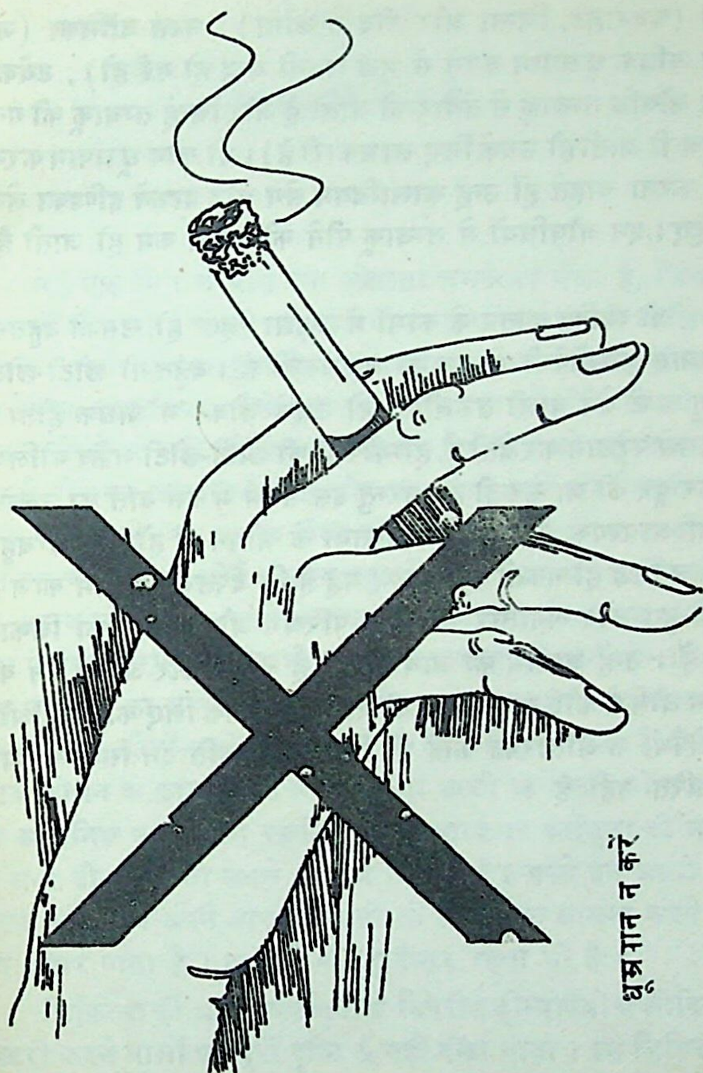
इस रोग की औषधियां हैं : **एकोनाइट** (सूखे या ठण्डे मौसम में टीस जैसी तीव्र पीड़ा); **ब्रायोनिया** (सुई चुभने जैसा दर्द, कमर के निचले भाग में अकड़ाहट; दर्द जो दबाव डालने या हिलने डुलने से बढ़ता हो); **कोलोसिन्थ** (नितम्ब से घुटने तक बाई ओर का ऐसा दर्द जैसे वह अंग फटे जा रहे हों; दबाव डालने और सेंकने से पीड़ा कम होती हो और हल्के से छूने से बढ़ जाती हो); **नाफ़ालियम** (कभी तो अंग सुन्न हो जाए और कभी पीड़ा हो); **हाइपेरिकम** (जब यह रोग गिर पड़ने या चोट लगने से हो।) **लाइकोपोडियम** (दाईं ओर

पीड़ा अधिक हो, जिसमें कभी तो अंग सुन्न हो जाए और कभी झनं-झनाहट का अनुभव हो; रात को बिस्तर में लेटे लेटे पिंडलियों और पैर की उंगलियों में ऐंठन या मरोड़ हो); **रस टाक्स** (जंघाओं में नीचे की ओर तीव्र पीड़ा जो ठण्ड या पानी लगने से बढ़ जाय और रात में अधिक हो : प्रारंभ में पीड़ा हो, लेकिन कुछ देर चलने पर कम हो जाय)।

धूम्रपान

इस बात पर आसानी से विश्वास नहीं किया जा सकता, परन्तु यह सच है कि हमारे समाज में जहां कोई कम सिगरेट पीता है और कोई अधिक, होम्योपैथी के मौलिक सिद्धान्त का अनुसरण करके धूम्र-पानजनित रोगों का बड़ी आसानी से इलाज किया जा सकता है। अत्यधिक धूम्रपान करने से श्वास की नली पर बुरा प्रभाव पड़ता है, गले में सूजन आ जाती है, खांसी हो जाती है, यक्षमा और श्वास लेने में कठिनाई का अनुभव होने लगता है। कई बार तो धूम्रपान से कैंसर, अत्यधिक चिंता और अनिद्रा रोग भी हो जाते हैं। होम्योपैथी एक-एक करके इन सभी रोगों का इलाज करने की क्षमता रखती है।

धूम्रपान करने वालों के लिए निम्नलिखित औषधियां हैं: **औरम ट्रिफ़. रम** (गला सूजा हुआ, आवाज़ बैठी हुई और गले में अवरोध-सा लगना और ऐसा लगना कि गला छिल गया है); **कैप्सीकम** (गला सूखा हुआ और उसमें जलन); **हैपर सल्फ़** (जब रोगी बार-बार खंगारता रहे): **कोकस कैक्टी** (गाढ़ी बलगम, जब गले में खुजली सी हो); **काली बाइक्रोमिकम** (जब प्रातः उठ कर पतली और रेशेदार बलगम निकलती हो)। इन दवाइयों से धूम्रपान करने वालों की खांसी को आराम होता है। अन्य दवाइयां निम्नलिखित हैं : **एंटिम क्रूड** (जब जीभ पर मैल जमी हो); **असारम** (मुंह में कड़वाहट हो); **इग्नाशिया** (सिगरेट बीड़ी पीने से सिर दर्द होता हो); **काली फ़ॉस–६**



धूम्रपान न करें

एक्स (घबराहट, चिन्ता और नींद न आना); **नक्स वॉमिका** (जब बहुत अधिक धूम्रपान करने से भूख लगनी बन्द हो गई हो); **टबैकम** (यह औषधि तम्बाकू से तैयार की जाती है और जिन्हें तम्बाकू की गन्ध से मचली आती हो उनके लिए लाभकारी है)। जो लोग धूम्रपान करना बन्द करना चाहते हों उन्हें **कालाडियम सेग** और **दाफने इण्डिका** लेनी चाहिए। इन औषधियों से तम्बाकू पीने की इच्छा कम हो जाती है।

× × × × ×

जो व्यक्ति दफ्तर के कामों में उलझा रहता हो, उसकी बहुतसी समस्याएं होम्योपैथी से हल की जा सकती हैं। बहुत सी छोटी-छोटी परन्तु कष्ट देने वाली तकलीफ़ें, जो उसके जीवन में बाधक होती हैं और उसे परेशान कर देती हैं, होम्योपैथी की छोटी-छोटी सफ़ेद गोलियां खाकर दूर की जा सकती हैं। परन्तु इस संदर्भ में इस बात का उल्लेख करना आवश्यक है कि ऐसे व्यक्तियों के जीवन में होम्योपैथी बहुत अनुकूल सिद्ध हो सकती है। कारण यह है कि दफ्तरों के काम काज में उलझे हुए लोग लगातार मानसिक परिश्रम और तनावों का शिकार होते हैं। उन्हें आराम की आवश्यकता है और कठोर आदेश देने की बजाय धीमे से कोई बात समझा दी जाय वही उनके लिए काफी है, और होम्योपैथी के अतिरिक्त कोई भी चिकित्सा पद्धति इन सिद्धान्तों पर आधारित नहीं है।

अध्याय ६

घर की ही बात है

मेरे एक मित्र के पास एक छोटासा चमड़े का थैला है, जिसमें अन्दर की ओर चमड़े की ही पट्टियां लगाकर उनमें दवाओं की शीशियां रखने का स्थान बनाया हुआ है। वह **आर्नीका, नक्स वॉमिका, लीडम, आरसैनिक, ब्रायानिया, कैलेन्डुला** और अन्य दवाइयोंकी छोटी छोटी, सफेद गोलियों से भरी शीशियां रखता है। मेरे मित्र को वहुधा अपने काम से दौरे पर जाना पड़ता है और उसे चाहे जाने की कितनी ही जल्दी क्यों न हो, वह अपना थैला ले जाना नहीं भूलता। **आर्नीका** अचानक चोट लगने, कोई आघात पहुंचने या अनिद्रा के लिए है और यदि खराब भोजन या उसकी विषाक्तता का सामना करना पड़ जाय–सफर में ऐसी परिस्थितियां कभी न कभी उत्पन्न हो ही जाती हैं–तो वह **नक्स वामिका** का प्रयोग करता है। **लीडम** से वह मच्छर, मधुमक्खियों वैसे ही अन्य कीड़ों-मकोड़ों से बचने के लिए तैयार रहता है। यदि खराब भोजन के कारण दस्त लग जाएं या उल्टी आने लगे, तो उसकी दवा **आर्सैनिक** उसके पास रहती है। घाव आदि पर **कलेंडुला** की मरहम लगा दी जाय, तो उससे आराम मिलता है। अपने इन अस्त्रों के कारण मेरा मित्र अपने आप को किसी भी स्थिति का सामना करने के लिए तैयार पाता है। वास्तव में वह तैयार रहता भी है।

चिकित्सा की अन्य प्रणालियों के विपरीत होम्योपैथी में शौकिया डाक्टरी करने वालों को बुरी दृष्टि से नहीं देखा जाता। इस चिकित्सा पद्धति में ऐसी सरलता है कि थोड़ा-सा पढ़ लिख कर कोई भी व्यक्ति

अपने या अपने परिवार के लिए कुछ साधारण दवाइयां बेखटके दे सकता है। जब कोई आपात स्थिति उत्पन्न हो जाए और डाक्टर आस-पास न हो तो भी ये दवाइयां काम आती हैं। होम्योपैथी की दवाइयों में इस बात का खतरा नहीं रहता कि कोई दवाई आवश्यकता से अधिक मात्रा में खाई जाएगी, जैसा कि अन्य चिकित्सा पद्धतियों में होता है। इसका कारण यह है कि इन दवाइयों में मूल तत्व तो होता ही नहीं और यदि गलत दवाई खा ली जाय तो भी कोई बुरा प्रभाव नहीं पड़ता हां, यह अवश्य है कि गलत दवा बीमारी पर असर ही नहीं करे।

यह स्पष्ट है कि इन दवाइयों का इस्तेमाल घर में ही किया जाता है। सच तो यह है कि होम्योपैथी घर ही में शुरू की जा सकती है। कोई भी कुशल गृहणी थोड़ी-सी होम्योपैथिक दवाइयां लेकर अपने प्रिय-जनों की छोटी-मोटी परन्तु परेशान करने वाली तकलीफ़ों का निराकरण कर सकती है। पहले तो हम उन रोगों की चर्चा करेंगे, जिनका प्रभाव शरीर पर होता हैं उसके अन्दर नहीं। इनमें से अधिकतर रोग चमड़ी के हैं और इनकी संख्या बहुत अधिक है—एलर्जी हो सकती है, फोड़े निकल सकते हैं या शरीर पर छाले पड़ सकते हैं जिन्हें हरपीज़ कहा जाता है। इन रोगों में से कुछ तो शरीर के भीतर छिपे हुए कारणों से उत्पन्न होते हैं परन्तु होम्योपैथी, जिसका प्रभाव ऊपरी नहीं होता, इन समस्याओं का निराकरण करने में सक्षम है। होम्योपैथिक दवाइयों का प्रभाव चमड़ी पर नहीं पड़ता यद्यपि रोग चमड़ी का ही होता है।

एलर्जी

बचपन में एक चूहे के बारे में कविता पढ़ी थी जिसे सदा छींकें आती रहती थी। एलर्जी से मेरा साक्षात्कार वहीं से प्रारंभ हुआ। क्योंकि ऐसा लगता है कि बेचारे चूहे को एलर्जी के कारण ज़ुकाम हो

जाता था। आज डाक्टर होने के नाते मैं यह जानता हूं कि एलर्जी बड़ी कठिन और कष्टप्रद समस्या है, न केवल रोगी के लिए, बल्कि स्वयं डाक्टर के लिए भी।

कुछ पदार्थों के प्रति अत्यधिक संवेदनशीलता को, जिसका प्रभाव शरीर पर पड़ता है, एलर्जी कहा जाता है। यह पता नहीं चलता कि कब एलर्जी हो जाएगी। किसी व्यक्ति को धूल से कष्ट हो जाता हो तो सम्भव है कि कुछ समय बाद उसे चेहरे पर लगाने के पाउडर या किसी सुगन्धि से कष्ट होने लगे। उसके परिणामस्वरूप यह हो सकता है कि उसे छींकें आने लगें या उसके शरीर पर दाने निकलने लगें। और यह भी संभव है कि कुछ वर्ष बाद उसे श्वासरोग हो जाए।

श्वास नली या उससे संबंधित अंगों पर एलर्जी का प्रभाव हो जाए, तो सामान्यतया या तो दमा हो जाता है, पराग ज्वर (हे फ़ीवर) हो जाता है या नाक के अन्दर सूजन हो जाती है। इन रोगों का उल्लेख हमने अन्य अध्यायों में किया है। यहां पर हम एलर्जी से उत्पन्न होने वाले ऐसे रोगों की चर्चा करेंगे जैसे कि पित्ती या छपाकी। इसमें शरीर पर लाल रंग के चिकत्ते पड़ जाते हैं, जिनमें खुजली और जलन होती है। ऐसे चिकत्ते पड़ने के बाद गायब हो जाते हैं और दिन में किसी भी समय फिर हो जाते हैं। कुछ रोगियों को शाम के समय अधिक कष्ट होता है और कुछ को रात में कपड़े बदलते समय। इस रोग के स्थायी इलाज के लिए रोगी की प्रकृति के अनुसार दवाई देनी पड़ेगी परन्तु निम्नलिखित दवाओं से अस्थायी रूप से आराम मिलता है: **एपिस मेल** (यह मधु मक्खी से तैयार की जाती है; इसके लक्षण यह हैं कि चिकत्ते लाल रंग के और फूले हुए होते हैं; उनमें सुई चुभने जैसा दर्द होता है और गर्मी से कष्ट बढ़ जाता है); **आर्सेनिक एल्ब** (खुजली जलन और सूजन जिसे ठण्डी हवा या पानी लगने से अधिक कष्ट हो; रोगी बेचैन होता है और उसे प्यास बुझाने के लिए थोड़ी थोड़ी देर

बाद दो-चार घूंट पानी पीना पड़ता है) ; **क्लोरालम** (जब अल्कोहल पीने से एलर्जी हुई हो) ; **डल्कामारा** (लाल चिकत्ते जिन्हें खुजाने से लहू निकले) ; **नैट्रम सल्फ़** (जब सीलन से कष्ट प्रारम्भ हुआ हो) ; **रस टॉक्स** (जब एलर्जी वर्षा में भीगने से हुई हो) ; **आर्टीकेरिया युरेन्स** (अत्यधिक खुजली और जलन तथा गर्मी) ; बायोकेमिक औषधियां **नैट्रम फ़ॉस–६ एक्स** और **नैट्रम सल्फ़–६ एक्स** भी लाभकारी सिद्ध होती हैं। कई बार जिस पदार्थ से एलर्जी प्रारम्भ हुई हो, उसी से बनी होम्योपैथिक दवाई देने से आराम मिलता है। उदाहरण के लिए, जिन लोगों को स्ट्राबरी खाने से छपाकी निकलती हो, उन्हें उसी फल से बनी होम्योपैथिक दवाई **फ़जारिया वैस्का** देने से तुरन्त लाभ होता है। यहां इस बात का उल्लेख करना गलत न होगा कि जब लुई पास्चर आठ वर्ष के ही थे तो पागल कुत्ते के काटे रोगी के लिए **हाइड्रोफ़ोबीनम** दी जाती थी, जो पागल कुत्ते की लार से बनती है। होम्योपैथिक दवाइयों से ठीक इलाज हो जाए तो न केवल एलर्जी का इलाज हो जाता है, बल्कि उसके बाद रोगी पर एलर्जी उत्पन्न करने वाले किसी भी पदार्थ का कोई बुरा प्रभाव नहीं पड़ता।

फोड़े फुन्सियां

मुहासों के बाद सबसे बड़ी समस्या जिसका हर घर में सामना करना पड़ता है, फोड़े फुन्सियों की है। शरीर पर कहीं फुन्सी निकल आती है, उसमें पीड़ा होती है, वह बढ़ कर लाल हो जाती है, फिर उसमें पीप पड़ जाती है और खुजली होने लगती है। यदि ऐसी फुन्सी को खुजा लिया जाय तो शरीर के अन्य अंगों पर भी फुन्सियां निकलने लगती हैं। होम्योपैथी में इनके लिए बहुत सी दवाइयां हैं।

बेलाडोना (जब फोड़ा लाल रंग का और सूजा हुआ हो और उसमें टीस उठती हो) ; **हैपर सल्फ़र** (जब फोड़े में पीप पड़ जाती है

तो बड़ा तीखा दर्द होता है और ठण्ड सी लगती है; हाथ लगाने से भी पीड़ा होती है; यदि यह दवा ऊंची पोटेंसी में दी जाय तो पीप सूख जाती है और फोड़ा फटता नहीं है। यह तब देनी चाहिए जब फोड़ा लाल रंग का हो, लेकिन फूटता न हो); हैपर सल्फ़र–३० देने से फोड़ा फूट जाएगा; **मर्क सोल** (जब फोड़ा फट जाए और नीचे से दानेदार चमड़ी निकल आए, जिससे दुर्गन्ध वाली पीली-हरी पीप निकलती हो); **पाइरोजेनियम** (यह दवाई कृत्रिम पीप से तैयार की जाती है और विषाक्तता को रोकती है जिसके कारण फोड़े हो जाते हैं। सबसे पहले यह दवाई एक अंगरेज होम्योपैथ ने सड़े हुए बिना चर्बी के गोमांस से तैयार की थी, जिसे कुछ सप्ताह तक धूप में पड़े पड़े सड़ने दिया गया था। उसके बाद डाक्टर स्वान ने विषाक्त पीप से दवाई तैयार की, जिसका नाम **सेप्सिन** है। उसका भी ऐसा ही असर होता है); **सिलिशिया** (जिन रोगियों को ठण्ड लगती हो और जिनके फोड़े ठीक न होते हों); **सल्फ़र** (जब फुन्सियां इकट्ठी निकलती हों)।

बहुत समय से फोड़े हों तो **कैलकेरिया सल्फ़–५ एक्स** बार-बार लेने से लाभ होता है। जब फोड़े खून की खराबी के कारण हों या विषाक्तता से उत्पन्न होते हों, तो **इकायनेसिया** की दस-दस बूंदें दिन में तीन-चार बार लेने से फोड़ों का बनना रुक जाता है।

घट्ठे

चमड़ी पर कई बार किसी चीज की बराबर रगड़ लगते रहने से, जैसे कि तंग जूते से, ऊंगलियों से लिखाई का बहुत अधिक काम करने से या किसी खुरदरी वस्तु को बार बार उठाने से चमड़ी का जो भाग उभर आता है और कड़ा हो जाता है, उसे घट्ठा कहते हैं। कई बार पैरों की उंगलियों के बीच नर्म घट्ठे पड़ जाते हैं, जिसमें सूजन के कारण

पीड़ा होती है। ऐसे घट्ठे दाद के कारण हो सकते हैं जिसका इलाज करना आवश्यक है।

होम्योपैथी में निम्नलिखित दवाइयां प्रयुक्त होती हैं: **एण्टीमनी क्रुड** (ऊपर लगाने के लिए; इसका लक्षण पैरों के दोनों ओर और उंगलियों की पोरों पर होने वाले घट्ठे, जिनमें पीड़ा होती हो); **ग्रेफ़ाइट्स** (इसके लेने से घट्ठे बनने की प्रवृत्ति रुक जाती है); **पेट्रोलियम** (जब घट्ठों के साथ चमड़ी सूखी हुई, पशुओं के चमड़े जैसी, खुरदरी और कटी-फटी हो); **रानन्क्यूलस बलबोसस** (उंगलियों की पोरों पर और हथेलियों पर घट्ठे, जिन्हें छूने से पीड़ा होती हो) घट्ठों को नर्म बनाने में बायोकैमिक दवाइयां **कैलकेरिया फ़्लोर–६ एक्स** और **सिलीशिया–६ एक्स** भी सहायक होती हैं।

एग्ज़ीमा

बहुत से व्यक्तियों को वर्षों तक यह रोग रहता है और उससे छुटकारा पाने के लिए नाना प्रकार के तेल और मरहमों का प्रयोग करते हैं उनसे उन्हें आराम मिलता है, तो केवल अस्थायी रूप में, और चारों ओर से निराश होकर वे होम्योपैथी की शरण में आते हैं। क्या होम्योपैथी में एग्ज़ीमा का इलाज है ? जी हां !

जब रसायन पदार्थों, गर्मी और वायुमण्डल में फैले हुए खुजली पैदा करने वाले पदार्थों से वास्ता पड़ता है, तो शरीर पर एग्ज़ीमा हो जाता है। इसका एक बड़ा कारण यह है कि रोगी की चमड़ी अत्यधिक नाज़ुक होती है। यदि शरीर दुर्बल हो, गठिया या वातरोग हो और पाचन क्रिया ठीक न हो तो भी इस रोग के होने का खतरा रहता है।

छोटे बच्चों को, एक वर्ष की आयु तक, और सर्दी के मौसम में चेहरे और खोपड़ी पर, बहुधा एग्ज़ीमा हो जाता है। पहले एक या दोनों गालों पर लाल रंग का एक छोटा सा धब्बा पड़ता है, जिसमें

खुजली होती है। उसके बाद यह सारे चेहरे और खोपड़ी पर फैल जाता है। जहां इसमें से पानी निकलता हो तो पीले हरे रंग की पपड़ियां जम जाती हैं, जिन्हें ठीक होने में काफ़ी समय लगता है।

कुछ अधिक आयु के बच्चों की नाक और कान के आस-पास पीप की पपड़ी जम जाती है या मुंह और नाक के पास कहीं कहीं त्वचा सूख कर उतरने लगती है। उसका कारण या तो लार का बहना होता है और या नाक का।

बड़ी आयु के लोगों में चेहरे पर एग्ज़ीमा अचानक हो जाता है और उनका चेहरा लाल हो जाता है और उसमें सूजन आ जाती है। यदि रोग पुराना हो जाय तो चेहरे की त्वचा मोटी और लाल हो जाती है और कई बार चमड़ी की परतें उतरने लगती हैं।

बच्चों में बहुधा शरीर के विभिन्न जोड़ों, विशेष रूप से कुहनियों और घुटनों के बीच चमड़ी की चमड़ी से रगड़ लगने के कारण एग्ज़ीमा हो जाता है। यह सूखा भी हो सकता है और इससे पानी भी बह सकता है। परन्तु किशोरावस्था को पहुंचते पहुंचते यह रोग ठीक हो जाता है।

हाथों और बाहों पर, जहां हवा पानी का असर होता रहता है, एग्ज़ीमा होने का ख़तरा रहता है। कई बार हथेलियों पर लाल चिकत्ता-सा बन जाता है, उसके बाद त्वचा कड़ी हो जाती है और फिर फटने लगती है। जिन लोगों की हथेलियों पर बहुत पसीना आता हो, उन्हें यह रोग होने की अधिक आशंका रहती है।

जननेन्द्रियों और गुदा के आस-पास ख्मीर जैसे छोटे छोटे कीटाणुओं के कारण एग्ज़ीमा हो सकता है। एक विशेष प्रकार का एग्ज़ीमा उन लोगों को होता है, जिनकी नाड़ियां या धमनियां फूल गई हों। इसमें पहले तो टांग में खुजली प्रारंभ होती है जो बढ़कर इधर-उधर भी फैल सकती है। यदि इसका इलाज न किया जाय तो किसी नाड़ी पर, उसके फूलने के परिणामस्वरूप, अल्सर हो सकता है।

इस रोग के इलाज के लिए सबसे पहला काम तो यह है कि कुछ प्रकार के साबुनों का प्रयोग न किया जाय और त्वचा को साफ रखा जाय। सीमेंट, कोलतार, कपड़ा धोने के पाउडर और रंगों से एग्ज़ीमा होता हो तो उनका प्रयोग नहीं करना चाहिए । जिन लोगों को यह रोग होने की प्रवृत्ति हो उन्हें धूप, ठण्ड, हवा और आग की गर्मी से बच कर रहना चाहिए । सामान्यतया लोग एग्ज़ीमा होने पर उस पर मरहम लगा देते हैं,जिससे कि खुजली न हो और देखने में बीमारी कम होती मालूम होती हो। होम्योपैथी इस प्रकार के चर्म रोगों पर कोई भी मरहम आदि न लगाने की सलाह देते हैं, क्योंकि संभव है कि एग्जीमा को दवा देने का यह परिणाम हो कि कई वर्ष बाद दमा या ब्लड प्रेशर जैसे रोग हो जायं । इसके प्रमाण में मैं कुछ रोगियों की चर्चा करना चाहूंगा। एक बार एक साठ वर्षीया महिला दमे का इलाज कराने आई । उसे पैरों के पिछली ओर कभी एग्ज़ीमा हुआ था, जो दवा दिया गया था। उसके रोग का इतिहास भली भांति जान लेने के बाद उसे दो खुराकें सल्फ़र–२०० की दे दी गई और यह कह दिया गया कि इनके परिणामस्वरूप एग्ज़ीमा फिर से प्रारम्भ हो सकता है। दवा खाने के चौदह दिन के भीतर उसके पैरों से पीप बहने लगी और असह्य खुजली होने लगी । उसे कहा गया था कि इस प्रकार के एग्ज़ीमा को दबाने के लिए कोई मरहम न लगाए। उसने एक महीने तक तो धीरज से उस खुजली को सहन किया, लेकिन उसके बाद उसका धीरज टूट गया और उसने अपने पैरों पर दवाई लगा ली। बाद में उसने मुझे बताया कि उसने यह फैसला इस कारण किया कि वह अपनी सहेलियों के साथ ताश खेलने जाया करती थी तो सेंडल पहन कर जाती थी और उसकी सहेलियां उसके पैरों से बहती पीप पर कुछ न कुछ कटाक्ष किया करती थीं । मरहम लगाने के चार दिन के भीतर एग्ज़ीमा ठीक होने लगा । पांचवीं रात को उसे दमे का इतना भारी दौरा पड़ा कि

अस्पताल ले जाना पड़ा और कुछ दिन तक आक्सीजन देनी पड़ी। अस्पताल से लौटने के तुरन्त बाद वह फिर मेरे पास आई और कहने लगी डाक्टर साहब मैं इस बात की परवाह नहीं करती कि एग्ज़ीमा कितना भद्दा लगता है। लेकिन ईश्वर के लिए, मुझे इस श्वास रोग से छुटकारा दिलाइए। उसके बाद उसने फिर दवाई लेनी शुरू की और बढ़ती हुई पोटेंसी में उसे **सल्फ़र** ही दी गई। एग्ज़ीमा से फिर पीप बहने लगी जिससे उसे कई बार बड़ा कष्ट होता था। लेकिन उसने मरहम नहीं लगाई। एग्ज़ीमा को ठीक होने में दो साल का समय लग गया, परन्तु उसके बाद आज पांच साल बीत चुके हैं, उसे न तो कभी दमे का दौरा पड़ा और न कोई त्वचा रोग हुआ। इससे पता चलता है कि संभवत: प्रकृति ने शरीर के विषाक्त पदार्थों को निकालने के लिए ही एग्ज़ीमा बनाया है; इसलिए उसको दबाने के लिए कोई दवाई या मरहम नहीं लगानी चाहिए। सबसे अच्छा तरीका यह है कि किसी होम्योपैथ की शरण ली जाय। वह आपके रोग का ब्यौरेवार अध्ययन करके आपकी प्रकृति के अनुसार ऐसी दवाई चुनेगा जो आपको माफ़िक आएगी। इस रोग के लिए **ग्रेफ़ाइट्स** (शरीर के जोड़ों में बहने वाला एग्ज़ीमा); **पैट्रोलियम** (ऐसा एग्ज़ीमा जिसमें हाथ-पैरों पर दरारें पड़ जाएं); **सल्फ़र** (सूखा एग्ज़ीमा जिसमें रात के समय असह्य खुजली हो); और बहुतसी अन्य औषधियां लाभकारी हैं, परन्तु कोई होम्योपैथ ही उचित औषधि का चुनाव कर सकता है।

फफूंद से होने वाले रोग

आप देखेंगे कि घर-भर में—कालरों पर, सिरहानों पर और हाथ धोने के सिंक आदि पर—रूसी रहती है। रूसी हानिकारक तो नहीं, परन्तु अच्छी नहीं है। कौन है जो लगातार रूसी के कारण चिंतित नहीं होता? सभी जानते हैं कि सिर में रूसी हो, तो बाहर आने-जाने में

संकोच रहता है। रूसी बहुत से लोगों को हो जाती है। इसके कारणों में निम्नलिखित भी हैं :

सफाई का न होना, मानसिक दबाव और तनाव और त्वचा के छिद्रों से निकलने वाले एक स्निग्ध पदार्थ सीबम की मात्रा आदि। रूसी एक फफूंद के कारण होती है। खोपड़ी की त्वचा में तनिक सूजन हो जाती है और वह त्वचा पपड़ी के रूप में उखड़ने लगती है। कुछ व्यक्तियों में यह पपड़ी बहुत हल्की होती है और कुछ में बड़ी मोटी और स्निग्ध। जब उसके कण कन्धों, छाती और चेहरे पर गिरते हैं, तो उनके परिणामस्वरूप त्वचा पर दानेसे निकल जाते हैं। इनका प्रभाव अधिकतर खोपड़ी, भवों और पलकों पर पड़ता है। यदि इस रोग का समय रहते पता चल जाय तो इसका निदान बड़ी आसानी से किया जा सकता है। होम्योपैंथी में इसके लिए **ग्रेफ़ाइट्स** (सफेद रंग की रूसी) और **काली सल्फ़** (पीले रंग की रूसी) दी जाती है। **काली सल्फ़–६ एक्स** को आधे नीबू के रस में घोल कर खोपड़ी पर लगाया जा सकता है। उसको धीरे धीरे खोपड़ी पर लगाइए और सूखने पर धो दीजिए। यदि सप्ताह में दो बार लगभग एक महीने तक इस प्रकार सिर की मालिश की जाय तो रूसी गायब हो जाती है। सामान्यतया इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि किसी और की कंघी का प्रयोग न किया जाय और बालों को साफ रखा जाय।

यदि नाखूनों पर फफूंद का प्रभाव पड़ जाय तो उनके छोर मोटे हो जाते हैं और उनका रंग हरा-सलेटी हो जाता है। जब यह रोग बहुत बढ़ जाय तो नाखून कई बार टूट कर गिर पड़ता है। ऐसी दशा में हाथों को बार बार पानी में नहीं धोना चाहिए। कपड़े धोना, बर्तन मलना और फर्शों पर पुचारा लगाने जैसे काम नहीं करने चाहिएं।

चम्बल या रिंग वर्म रोग भी फफूंद के कारण ही होता है। जब यह बच्चों को हो जाता है, तो उनके सिर पर छोटा-सा गोलाकार

चिकत्ता पड़ जाता है जिस पर पपड़ी जम जाती है। कई बार वहां से बाल झड़ जाते हैं और फफूंद की सफेद तह जम जाती है, जिसके कारण यह रोग और फैल जाता है। इसमें खुजली सदा होती है।

जब किसी पुरुष की दाढ़ी में चम्बल हो जाए तो वह सिर की चमड़ी के रोग जैसी ही होती है। कई बार चमड़ी का वह टुकड़ा पिलपिला हो जाता है और उसमें पीप भर जाती है।

चम्बल बहुधा गर्दन और पीठ पर फैलता है। इसके हल्के गुलाबी रंग के गोलाकार चिकत्ते पड़ते हैं, परन्तु उनके नीचे चमड़ी ठीक होती है। इनमें खुजली बहुत अधिक होती है और उनके कोने ऊपर को उठ आते हैं। उसके बाद वहां से पानी सा निकलने लगता है।

इस रोग का एक और प्रकार है जिसे धोबी की खुजली की संज्ञा दी गई है। यह बहुधा जंघाओं के अन्दर की ओर होती है। इसके लाल भूरे रंग के चपटे चिकत्ते होते हैं, परन्तु उनमें खुजली बहुत अधिक होती है और त्वचा पर पपड़ी जमने के बाद उतरने लगती है।

फफूंद से होने वाला एक और रोग **टिनिया वर्सीकोलर** कहलाता है। इसमें पीले-सफेद रंग के चिकत्ते पीठ, कन्धों, बाहों और छाती पर पड़ जाते हैं। यह अधिकतर उन लोगों को होता है जिन्हें पसीना बहुत आता है और जो मोटे कपड़े के बने बनियान जांघिए पहनते हैं। जिन लोगों को तैरने का शौक होता है, उन्हें तालाबों में तैरते समय यह रोग हो सकता है। जिस पानी में क्लोरीन मिली हो उससे रोग बढ़ जाता है और चिक्त्तों का रंग और लाल हो जाता है। यदि **सोडियम थायोसल्फेट** को पानी में मिला कर रात को सोते समय इन चिकत्तों पर लगा दिया जाय तो यह रोग दूर हो जाता है।

पैरों में फफूंद के कारण जो कष्ट होता है, वह बहुधा चौथी और पांचवीं उंगलों के बीच प्रारंभ होता है: वहां की चमड़ी मोटी हो जाती है और उसका रंग सफ़ेद पड़ जाता है। यह रोग बढ़ जाए तो

पैर और उसके तलवे तक फैल जाता है। इसके लिए जो दवाइयां दी जाती हैं, उनमें से कुछ ये हैं : **काइरारोबीनम** (जहां चिकत्तों में दुर्गन्ध-युक्त पीप हो और बहुत अधिक खुजली हो; उन पर छोटी-छोटी पपड़ियां जम जायं जो बाद में इकट्ठी मिल कर एक ही पपड़ी बन जाय। यह दाढ़ी पर होने वाले चम्बल में गुणकारी है); **ग्रेफ़ाइट्स** (बाहों या टांगों, पेड़ू, गर्दन और कानों के पीछे दाने या चिकत्ते जिनसे गाढ़ी पीप बहती हो और रात के समय खुजली बढ़ जाती हो); **हैपर सल्फ़र** (चमड़ी पर हाथ लगाने से पीड़ा हो और जरा-सा दबाने से लहू निकल आए); **पैट्रोलियम** (पशु के चमड़े जैसी त्वचा, जिस पर हल्की सी खराश पड़ने से पीप बहने लगे; हरे रंग की मोटी पपड़ी जम जाय जिसमें जलन और खुजली हो, जो रात के समय और सर्दी में बढ़ जाय); **फ़ास्फ़ोरस** (मैंने यह देखा है कि इस रोग की यह विशिष्ट दवाई है और इसके साथ **कलकेरिया फ़ास–६ एक्स** और **नेट्रम म्योर–६ एक्स** भी देनी चाहिए; **सीपिया** (जहां यह रोग कुहनियों और घुटनों के जोड़ों में हो; खुजली से कोई आराम न मिले; सूजन वसन्त ऋतु में बढ़ जाय; खुजली खुली हवा में अधिक हो और बन्द कमरे में कम); **सीपिया** प्रकृति वाले रोगी अपने परिवेश की परवाह नहीं करते और न उनकी जिनसे उन्हें बहुत प्यार हो); सल्फ़र (अत्यधिक खुजली जो पानी से धोने से बढ़ जाय; गाढ़ी और दुर्गन्धयुक्त पीप बहती हो); **टैलूरियम** (हाथ-पैर का चम्बल, जिसमें सूई चुभने जैसा दर्द हो और दुर्गन्धयुक्त पीप निकलती हो; यह सर्दी में बिगड़ जाता है और रोगी के पैरों से दुर्गन्धयुक्त पसीना आता है); **थूजा** (चमड़ी सूखी हुई और कपड़ों से ढके अंगों पर दाने, जो खुजाने से बिगड़ जायं; ऐसे लोगों को कभी न कभी मस्से निकले होते हैं और उनके पसीने से बहुत बू आती है)।

हरपीज

एक चार साल के बच्चे के जब भी तेज बुखार होता था, मुंह के आस-पास छाले निकल आते थे । पहली बार तो उसके पिता ने इन पर कोई ध्यान नहीं दिया । लेकिन जब बार बार छाले निकल आते, तो वह उसे डाक्टर के पास ले गया। डाक्टर ने बताया कि यह हरपीज़ सिम्प्लेक्स नाम का रोग है ।

यह रोग वायरस से फैलता है और विशेष रूप से बच्चों को होता है । इसके साथ जुकाम और बुखार भी हो जाता है। मुंह के आस-पास छाले निकल आते हैं और जुकाम ठीक होते ही सूख जाते हैं। और उन पर पपड़ी जम जाती है ।

दूसरी प्रकार की **हरपीज़को ज़ोस्टर** की संज्ञा दी गई है, क्योंकि वह ज़ास्टर नाम के वायरस से उत्पन्न होती है । यह अधिक कष्टप्रद रोग है क्योंकि इसका प्रभाव चमड़ी के नीचे के स्नायुओं पर पड़ता है और इसमें अत्यधिक पीड़ा होती है । प्रारम्भ में दो-तीन दिन तक बुखार आता है और उसके बाद चमड़ी के उस भाग पर जलने जैसा दर्द होता है, जहां छाले निकलने हों । उसके बाद लाल रंग के चिकत्ते पड़ जाते हैं और चार-पांच दिन में उनमें पानी भर जाता है और वे छालों का रूप धारण कर लेते हैं । दस दिन के बाद वे सूख कर गिर जाते हैं और अपना निशान छोड़ जाते हैं। कई बार उनमें बहुत अधिक खुजली होती है ।

यदि यह रोग बिगड़ जाय जो भयंकर रूप धारण कर लेता है । एक सत्तर वर्षीया महिला के चेहरे के दाईं ओर ये छाले निकले। उसने इलाज नहीं करवाया और उन पर घर में बनी मरहम-सी लगाती रही । तीन दिन बाद उसके चेहरे के दाईं और भयंकर पीड़ा प्रारम्भ हुई जो कान तक जाती थी। मैं उसे देखने गया तो उसका चेहरा सूजा हुआ था और वह कष्ट में लोट रही थी। मैंने देखा कि **हरपीज़** के कारण ही

उसके स्नायुओं में पीड़ा हो रही थी। यह रोग कुछ महीनों से लेकर कुछ वर्ष तक जारी रहता है। जिस स्नायु पर इसका प्रभाव पड़ता है उसके अनुसार कोई न कोई अंग विकृत हो जाता है। संभव है कि रोगी भैंगा हो जाय, उसके चेहरे को लकवा मार जाय या उसकी पलकें सदा झुकी रहें।

होम्योपैथी में इसके लिए निम्नलिखित दवाइयां दी जाती हैं: **क्रोटोन टिग** (पीप भरे छाले, जिनमें अत्यधिक खुजली हो और खुजाने के बाद सुई चुभने जैसा दर्द और जलन हो); **यूफ़ोरबियम** (चमड़ी के उभरे भागों के आस-पास सूजन हो जहां की चमड़ी खुरदरी और पपड़ीदार हो जाय और ज़िसके घाव बन जाने का खतरा हो); **हाइपेरिकम** (स्नायुओं में पीड़ा); **मेज़ेरियम** (असह्य खुजली, जिसमें ठण्ड लगे और ठण्ड लगने से पीड़ा का अनुभव हो; छालों से मोटी पपड़ी जम जाती है जिससे पीप निकलती है); **रानन्क्यूलस** (चमड़ी के उभरे भाग में जलन और अत्यधिक खुजली होती हो, जो छूने से और बढ़ जाती है); **रस टॉक्स** (प्रारंभिक अवस्था में लाभकारी हैं; इसमें चिकत्ते लाल हो जाते हैं और उनमें सूजन आ जाती है; अत्यधिक खुजली होती है और फिर छाले बन जाते हैं)।

लाइकन प्लानस

यह रोग अत्यधिक खुजली वाले दानों के रूप में प्रकट होता है जिनका रंग गुलाबी या बकायन जैसा होता है। यह बहुधा बांह के जोड़ में होता है। कई बार कलाई और घुटनों के समीप जंघा के अन्दर भी हो जाता है। कई बार मुंह के अन्दर की झिल्ली पर भी इसका प्रभाव पड़ता है। उसमें मटियाले सफेद या सलेटी रंग के चिकत्ते जीभ, गाल के अन्दर या तालु पर पड़ जाते हैं। बहुधा उन चिकत्तों की चमड़ी पपड़ी और खुरदरी हो जाती है। यह रोग बहुधा उन लोगों में पाया जाता है, जो मानसिक तनाव की परिस्थितियों में रहते हैं। रोग किसी

मानसिक आयात के बाद भी प्रारम्भ हो जाता है। चिकित्सा पद्धतियों में इस रोग के इलाज की बहुत कम आशा है। त्वचा रोग विशेषज्ञ कार्टीसोन-युक्त औषधियों का प्रयोग करके कुछ समय के लिए इस रोग की तीव्रता को कम कर देते हैं, परन्तु ज्यों ही दवाई बन्द की जाती है, यह फिर हो जाता है।

होम्योपैथिक औषधियों से, जब उनका चुनाव रोगी की प्रकृति के अनुसार किया गया हो, बहुत से रोगियों का इलाज किया गया है। मेरा अनुभव यह है कि इसमें **फ़ास्फ़ोरस** बहुत लाभकारी सिद्ध हुई है।

छाल रोग या सुराइसिस

एक बार दमे का एक रोगी मेरे पास आया। आधे घण्टे तक मैं उसके रोग का इतिहास पूछता रहा, लेकिन उसने अपने छाल रोग की कोई चर्चा नहीं की, जो उसके सारे शरीर पर दिखाई पड़ रहा था। जब मैंने इस बात की ओर इशारा किया तो वह कहने लगा : "मैंने दुनियाभर के डाक्टरों को पूछ लिया लेकिन वे सभी यह कहते हैं कि इसका कोई इलाज नहीं है।" इलाज करने में अन्य चिकित्सा प्रणालियों में इस कारण कठिनाई होती है कि इसके वास्तविक कारण का पता नहीं है और रोगी इसे अपने जीवन का साधारण अंग मानने लगता है। इस रोग में सारे शरीर पर लाल रंग के चिकत्ते पड़ जाते हैं, जिन पर पपड़ी जमी रहती है। ये चिकत्ते नियमित रूप से विशेष मौसमों में पड़ते हैं और बहुधा कुहनियों, घुटनों, कमर, खोपड़ी और चेहरे पर देखे जाते हैं।

प्रारंभ में आलपीन के सिर के आकार का सफेद रंग का दाग-सा पड़ता है जिस पर पपड़ी जमी होती है। इस प्रकार के बहुत से चिकत्ते होते हैं, लेकिन रोग के बढ़ने के साथ-साथ जब रोगी खुजाने लगता है तो वे एक बड़े चिकत्ते का रूप धारण कर लेते हैं। पपड़ी उतर जाती है

और उसके नीचे से चमकती हुई, सूखी और लाल रंग की चमड़ी निकल आती है ।

कई बार चिकत्ते का बीच का भाग ठीक हो जाता है और एक या अधिक गोलाकार निशान रह जाते हैं और ये आपस में मिल कर एक हार का रूप धारण कर लेते हैं। यदि यह रोग नाखूनों में हो जाए तो उनके नीचे आलपीन के सिर के आकार के गड्ढे पड़ जाते हैं। यदि यह बहुत फैल जाय तो नाखून फट जाता है या उसमें दरार पड़ जाती है। यदि छाल रोग खोपड़ी पर हो जाए तो बड़ी मोटी पपड़ी जम जाती है क्योंकि बाल उस पपड़ी को गिरने से बचाते हैं ।

होम्योपैथी में इस रोग का इलाज है । परन्तु इससे पूर्णतया छुटकारा पाने में कुछ वर्ष लग सकते हैं। मैंने ऊपर जिस रोगी की चर्चा की है, उसे दो वर्ष में पूरा आराम आ गया था ।

इसके लिए सामान्यतया निम्नलिखित दवाइयां दी जाती हैं : **आरसैनिक एल्ब** (ऐसे चिकत्ते जो सूखे और खुरदरे हों और जिन पर पपड़ी जमी हो; ये सर्दी के मौसम में और बिगड़ जाते हैं और खुजाने से खुजली और बढ़ जाती है और जलन होने लगती है) ; **आरसैनिक आयोडाइ** (चमड़ी सूखी और उसकी बढ़ी हुई परतें) ; **बोरेक्स** (उंगलियों और चेहरे का छाल रोग; अत्यधिक खुजली और सुई चुभने जैसा दर्द; जब यह खोपड़ी में हो तो सालों के सिरे उलझ जाते हैं); **क्राइसारोबीनम** आंखों और कानों के नीचे दाने होते हैं और फिर सारी चमड़ी पर एक परत जम जाती है) ; **काली आर्स** (सूखे चिकत्ते जिनसे चमड़ी की परतें उतरें और जिनमें अत्यधिक खुजली हो, गर्मी से रोग बढ़ता है) ; **पैट्रोलियम** (रात के समय खुजली; नाजुक त्वचा; हाथों का छाल रोग जिस पर मोटी हरे रंग की पपड़ियां जमें; सर्दी में रोग बढ़ जाता है) ; **फ़ास्फ़ोरस** (छोटे छोटे चिकत्ते जिनसे लहू रिसने लगता है; यह औषधि उन रोगियों में विशेष रूप से लाभकारी है जिन्हें

बारी-बारी से छाल रोग और छाती का कोई रोग हो जाता है); **सोरियम** (जहां रोगी सामान्यतया अस्वस्थ रहता हो और ठण्ड बर्दाश्त न कर सके; गर्मी में भी ओढ़ने के लिए कुछ लेना चाहे; चिकत्तों पर पपड़ी जम जाती है और दुर्गन्धयुक्त पानी निकलता है); **सल्फ़र** (सूखे चिकत्ते जिनसे परतें झड़ती हों और जो खुजाने या धोने से बढ़ जाएं; जहां यह रोग गर्मी के मौसम में हुआ हो) ।

खुजली

मकड़ी जैसा एक छोटा-सा कीटाणु, जिसे सारकोप्टेंस स्केबी कहा जाता है, इस रोग के लिए जिम्मेदार है। यह रोग कुत्ते बिल्लियों में भी पाया जाता है और उनके सम्पर्क से मानवों को भी हल्के रूप में हो जाता है । यह रोग तब होता है जब यह कीटाणु उंगलियों के बीच, कलाई पर, नाभि में, घुटनों, टखनों या पैरों पर अपने अण्डे दे देता है त्वचा थोड़ी-सी उभर आती है, दाने निकल आते हैं जिनमें खुजली होती है, और जब खुजा लिया जाय तो लहू रिसने लगता है। जब रोग बढ़ जाता है तो छाले बन जाते हैं। यह रोग छूत से लगने वाला है और इसलिए घर के बाकी लोगों को इससे बचाने के लिए सफाई रखना बहुत आवश्यक है। जिस व्यक्ति को खुजली हो उसके कपड़े अन्य लोगों के कपड़ों से अलग धोने चाहिएं। कुछ परिवारों में जहां एक से अधिक व्यक्तियों को खुजली हो गई हो, सभी को इकट्ठे ही इलाज करवाना चाहिए जिससे कि जो बच गया है उसे भी यह रोग न लग जाय ।

इसके लिए निम्नलिखित दवाइयां दी जाती हैं। **ग्रेफ़ाइट्स** वहां दी जानी चाहिए जहां शहद जैसा गाढ़ा मवाद निकलता हो । जब उसमें अत्यधिक दुर्गन्ध हो, तो **मर्क सोल** देना लाभकारी होगा । जब सूखी खुजली हो तो **सल्फ़र** देने से बहुत लाभ होता है। इस रोग में

बायोकैमिक दवाइयां कलकेरिया सल्फ़–६ एक्स और काली सल्फ़–६ एक्स भी लाभदायक हैं।

लू लगना

लू लगने की प्रवृत्ति सामान्यतया उन लोगों में होती है जिनके शरीर में कोई विकार हो। लू लगने पर होम्योपैथी में निम्नलिखित दवाइयां दी जाती हैं : बेलाडोना (जब सिर रुंधा रुंधा सा लगे); और ग्लोनाइन (चेहरा पीला, तेज बुखार और उल्टी)। अन्य औषधियां हैं : नैट्रम कार्ब (गर्मी में सिर दर्द होने लगे; जब लू लगने का प्रभाव पुराना पड़ जाय तब यह विशेष रूप से लाभकारी होती है); और नैट्रम म्यूर (जब धूप में चलने से सिर दर्द हो)।

मस्से

मस्से चमड़ी पर होते हैं और यह कहा जाता है कि ये किसी वायरस के कारण है। ये शरीर के किसी भी भाग पर हो सकते हैं, लेकिन सामान्यतया हाथों, पैरों के तलवों, जननेन्द्रियों और सुज़ाक के रोगियों में गुदा के आस-पास हो जाते हैं। वृद्धों में के चेहरों, पीठ और छाती, पर भी मस्से हो जाते हैं जिनमें बहुत खुजली होती है। इनसे पिण्ड छुड़ाने के लिए घोड़े के बाल से काटने से लेकर बिजली से जलाने तक के तरीकों तक का सुझाव दिया जाता है। लेकिन होम्योपैथी में इसके लिए जो दवाइयां दी जाती हैं वे न केवल बिना कष्ट के बल्कि निश्चित रूप से इनका अन्त कर देती हैं।

मैं जिन दिनों पढ़ता था, मेरे टेंटुए पर एक मस्सा निकल आया था और मैं यह समझ बैठा था कि यह मेरे शरीर का अंग बन चुका है। लेकिन यह पहला ही मस्सा था और कुछ ही समय बाद दाढ़ी और गर्दन के आस-पास लगभग पच्चीस मस्से निकल आए। किसी के कहने

पर मैंने होम्योपैथिक दवाई **डल्का मारा**–२०० ले ली और एक महीने बाद जब मैं तौलिए से अपना मुंह पोंछ रहा था तो यह देख कर मेरे आश्चर्य की कोई सीमा नहीं रही कि दस या पन्द्रह मस्से एक ही बार में तौलिए से पुंछ गए और चमड़ी पर कोई निशान भी न रहा। मैंने फिर वही औषधि ली और एक सप्ताह में ही सारे मस्से दूर हो गए। उसके बाद से मैं चेहरे पर और हथेलियों पर होने वाले मस्सों में **डल्कामारा** ही देता हूं। स्थूलकाय रोगियों को **कलकेरिया कार्ब** लेने से अधिक लाभ हो सकता है। बहुत से होम्योपैथ मस्सों के लिए **थूजा** लेने की सलाह देते हैं। इसका टिंक्चर मस्सों पर लगाया जा सकता है या ३० की पोटेंसी में यह औषधि खाई जा सकती है। अन्य लाभकारी औषधियां हैं : **कास्टीकम** (उंगलियों की पोरों और नाक पर खुरदरे मस्से); **नाइट्रिक एसिड** (बड़े मस्से जिन्हें धोने से उनसे लहू रिसता हो।

× × ×

हमने अभी तक उन औषधियों की चर्चा की है जिनका प्रयोग घर में किया जा सकता है। इनकी सूची अधूरी है और ये केवल उन रोगों के लिए हैं जो चमड़ी पर दिखाई देते हैं। अगले अध्याय में हम मानव शरीर के भीतर छिपे हुए रोगों के रहस्य की चर्चा करेंगे और यह देखेंगे कि उनके उपचार में इन नन्हीं सफेद गोलियों की क्या भूमिका है।

अध्याय ७

घर में

अच्छे डाक्टर का सबसे बड़ा गुण यह है कि वह चौबीसों घण्टे मिल सकता हो। रात को आपके सिर में आधे सिर का दर्द हो रहा हो, जिसके कारण नींद न आ रही हो, तो वह अपनी नींद छोड़ कर आपको दवाई देने के लिए आ जाए या उसे आ जाना चाहिए। उसी प्रकार सभी शारीरिक कष्टों में आप उस पर भरोसा कर सकें। यदि अच्छे डाक्टर की परिभाषा यही है तो होम्योपैथी से अधिक अच्छा डाक्टर और कोई नहीं। छोटी छोटी शीशियों में भरी हुई सफेद गोलियां रख लीजिए तो चौबीसों घण्टे का डाक्टर आपके वस में है। सच तो यह है कि कोई भी ऐसी परिस्थिति नहीं, जिसका सामना इन गोलियों से न किया जा सकता हो।

हम यहां इस बात की चर्चा कर रहे हैं कि होम्योपैथी किस प्रकार सारे परिवार की चिकित्सा करने वाले डाक्टरका काम कर सकती है। पिछले अध्याय में हमने उन छोटे-मोटे रोगों की चर्चा की है जो सभी घरों में होते हैं, लेकिन जिनके मुख्य लक्षण बाहर दिखाई पड़ते हैं। मुख्य रूप से वे चमड़ी के रोग हैं। इनमें से बहुतसे रोगों की जड़ शरीर के भीतर कहीं छिपी होती है और होम्योपैथी उन्हें जड़ से उखाड़ देती है। अब हम उन रोगों की चर्चा करेंगे जो स्पष्ट रूप से दिखाई नहीं पड़ते और उनके उपचार में भी होम्योपैथी काम करती है।

यहां मैं एक चेतावनी देना चाहता हूं कि सम्भव है कि आप छोटो-मोटी बीमारियों का इलाज कर सकें। लेकिन ऐसी बीमारियों

के लिए आसान इलाज ढूंढ़ने की चेष्टा न कीजिए, जिनके लिए सुयोग्य होम्योपैथ की आवश्यकता है। कुछ मामलों में रोगी की प्रकृति के अनुसार चिकित्सा करनी पड़ेगी और सम्भव है कि आपका अनुभव और ज्ञान उसके लिए पर्याप्त न हो। लेकिन इस अध्याय में उन रोगों के निदान और इलाज के बारे में जो कुछ कहा गया है, उससे सहायता मिल सकती है।

पाण्डु रोग

कोई युवा व्यक्ति हर समय थका रहता है, कमजोरी महसूस होती है और थोड़ासा शारीरिक श्रम करके उसकी सांस फूल जाती है। उसके लहू की परीक्षा की गई तो पता चला कि उसमें हेमोग्लोबिन की कमी है। भारत में लगभग साठ प्रतिशत महिलाओं के लहू में इस तत्व की कमी पाई जाती है और मेरी मरीज को भी यही तकलीफ थी। वयस्क पुरुषों के लहू में १३.५ ग्राम प्रतिशत होमोग्लोबिन होता है और महिलाओं में इसकी मात्रा १२ ग्राम प्रतिशत होती है। यदि इससे कम हो जाए तो पाण्डु रोग या लहू की कमी का रोग हो जाता है।

हमारे लहू में जो लाल सैल होते हैं, वे फेफड़ों तक आक्सीजन पहुंचाने का काम करते हैं। होमोग्लोबिन कम हो जाए तो लहू म आक्सीजन ले जाने की सामर्थ्य कम हो जाती है। इसी कारण पाण्डुरोग का रोगी इस बात की शिकायत करता है कि थोड़ा सा श्रम करने पर भी उसकी सांस फूल जाती है और वह थका-थका महसूस करता है। इसके अतिरिक्त उसकी टांगों में ऐंठन, सिर दर्द, अंगों के सुन्न होने, हाथों और पैरों में सनसनाहट, भूख का न लगना, मतली और कभी-कभी कब्ज की शिकायत हो जाती है। जिन महिलाओं को यह रोग हो उनका मासिक धर्म कम हो जाता है और वृद्धावस्था में रोग हो जाए तो छाती में दर्द भी होने लगता है। रोगी का चेहरा पीला पड़ जाता है और उंगलियों के नाखूनों में सफेदी दिखाई देने लगती है।

इस रोग का एक मुख्य कारण अत्यधिक रक्त स्राव है, जैसे कि मासिक धर्म की बहुलता, चोट लगने पर रक्त स्राव और पेट के अल्सर या बवासीर के कारण रक्त स्राव । इन सभी कारणों से होमोग्लोबिन कम हो जाता है, लेकिन इस रोग का उपचार करने में अधिक कठिनाई नहीं होती । कई बार शरीर से बहुत रक्त निकल जाए तो रोगी को खून देना पड़ सकता है, यद्यपि अधिक रक्तस्राव न हुआ हो, तो शरीर अपने आप रक्त की कमी पूरी कर लेता है ।

रक्त की कमी किसी पुरानी बीमारी, जैसे कि गुर्दे की बीमारी लगातार पीप बहने या कैंसर के कारण हो जाती है । बहुत लम्बे समय तक किसी मां की छातियों में दूध उतरता रहे, किसी व्यक्ति को पौष्टिक भोजन न मिले, पेट खराब रहे या भोजन ठीक से पच न पाए तब भी यह रोग हो सकता है । सीसा, पारा, संखिया जैसे विषों, उपदंश और मलेरिया जैसी बीमारियों, और पेट के कीड़े के रोगों के कारण भी यह रोग हो जाता है। केंचुआ नाम के कीड़े पेट में हो जाएं तो रक्त की अत्यधिक कमी हो जाती है ।

रक्त की कमी का एक मुख्य कारण क्लोरोसिस भी होता है जिसमें रोगी की त्वचा का रंग हल्का हरा या पीला हो जाता है। यह रोग अधिकतर बड़े नगरों में काम करने वाली लड़कियों को होता है जहां ताजी हवा और पौष्टिक भोजन की कमी होती है। इस प्रकार का पाण्डु रोग किशोरावस्था, अर्थात् १४ और १७ वर्ष की आयु के बीच अधिक होता है । सामान्यतया लोग यह समझते हैं कि रक्त की कमी दुबले पतले व्यक्तियों में ही होती है लेकिन यह धारणा गलत है। रक्त की कमी का रोगी मोटा भी हो सकता है। लेकिन ऐसी लड़कियों का चेहरा पीला, मासिक धर्म में गड़बड़ी (कभी तो देर से मासिक धर्म होता है, कभी कम होता है और कभी बहुत ज्यादा) आदि कष्ट होते हैं । कई बार क्लोरोसिस को यक्षमा भी समझ लिया जाता है, परन्तु खून की जांच कराने से यह आशंका दूर हो जाती है ।

अन्य चिकित्सा पद्धतियों के समान होम्योपैथी में भी लोहे से बनी दवाएं इस रोग के लिए दी जाती हैं। लेकिन होम्योपैथी में लोहे से बनी दवाई पाण्डु रोग के हरेक रोगी के लिए उपयुक्त नहीं होती। उदाहरण के लिए यदि रोगी में फैरम मैट के लक्षण (चेहरा और त्वचा पीली, मामूली से काम से थकावट, भोजन के बाद वमन) हों तो यह औषधि अपना चमत्कार दिखाती है और पाण्डु रोग के मूल कारण को दूर कर देती है।

क्लोरोसिस से हुए पाण्डु रोग में, कम आयु की लड़कियों के लिए जिनका मासिक धर्म प्रारम्भ ही हुआ हो और जो बड़ी नाजुक और तुनक मिजाज हों, पलसाटिला बहुत उपयोगी है। कलकेरिया फ़ॉस उन लड़कियों को देना चाहिए जो तुरन्त बढ़ने लग गई हों और जिनकी त्वचा मोम जैसी हल्के रंग की हो। कलकेरिया कार्ब ऐसे रोगियों के लिए उपयोगी है जो मोटे और थलथल शरीर वाले हों, जल्दी थक जाते हों, खट्टी चीजें खाना पसन्द करते हों और जो सदा यह सोचते रहें कि कोई मुसीबत आने वाली है। अत्यधिक तीव्र पाण्डु रोग के लिए आर्सेनिक अल्ब अच्छी औषधि है जहां रोगी में अधिक दुर्बलता होती है और वह सदा चिंतित रहता है।

जहां पाडु रोग अधिक समय तक दूध पिलाने, रक्त स्राव, अत्यधिक मासिक धर्म, दस्तों या अत्यधिक सम्भोग के कारण शारीरिक द्रवों के अभाव के कारण हुआ हो तो उसके लिए सिनकोना उपयुक्त औषधि है। इसका विशेष लक्षण यह है कि यद्यपि रोगी हवा बर्दाश्त नहीं कर सकता, वह यह चाहता है कि उसे कोई पंखा करता रहे।

यदि मलेरिया के बाद पाण्डु रोग हो जाए, रोगी खाए पिए तो ठीक, परन्तु फिर भी कमजोर बना रहे, उसे कब्ज हो, सदा निराश रहे और कोई उसे तसल्ली देना चाहे तो उसे गुस्सा आए तो ऐसे मामले में नैट्रम म्यूर देनी चाहिए। जहां पेट के कीड़ों के कारण यह रोग हो जाए

तो पहले तो रोगी को ऐसी औषधि देनी चाहिए जिससे कीड़े मर जाएं। उसके बाद बायोसैमिक दवाइयां फ़ैरम फ़ास–६ एक्स, कलकेरिया फ़ास–६ एक्स और नैट्रम म्योर–६ एक्स की दो दो गोलियां दिन में तीन बार कुछ समय तक दी जाएं तो यह रोग दूर हो जाता है।

छाती में गांठें

त्रिचुर, केरल की एक युवती को एक कष्ट था जिसके कारण वह रात दिन परेशान रहती थी। डेढ़ वर्ष पहले उसने देखा कि उसकी दाईं चूची में एक गांठ-सी पड़ गई है। उसने एक डाक्टर को दिखाया तो उसे तुरन्त आपरेशन कराने की सलाह दी गई। आपरेशन करके नींबू के आकार की एक गांठ निकाल दी गई। इस रोग को फ़ाइब्रो एडोनोमा की संज्ञा दी गई। उसके डाक्टर ने उससे कहा कि अब चिन्ता की कोई बात नहीं। लेकिन आपरेशन के बाद एक भद्दा निशान पड़ गया।

चार महीने बाद पहली गांठ से थोड़ी दूरी पर एक छोटी सी गांठ और बन गई। डाक्टरों का कहना था कि यह कैंसर तो नहीं है परन्तु हारमोनों का संतुलन ठीक न होने के कारण नई गांठ बनी है। फिर एक आपरेशन किया गया। तीन महीने बाद तीसरी गांठ बन गई और फिर उसे आपरेशन कराने की सलाह दी गई। इस पर तो उस बेचारी का हौसला टूट गया। वह अभी तक क्वांरी थी और उसे इस कारण अत्यधिक चिन्ता हुई। उसका विचार था कि तीन आपरेशन करा चुकने के बाद वह शारीरिक या मानसिक रूप से एक और आपरेशन कराने की स्थिति में नहीं है। उसने होम्योपैथी की शरण ली। कुछ महीने तक कलकेरिया फ़्लोर देने पर उसका रोग सदा के लिए जाता रहा।

लेकिन आगे कुछ कहने से पहले हमें यह देखना चाहिए कि स्त्रियों की छातियों में इस प्रकार के रोग क्यों हो जाते हैं। आज के युग में यह बात और भी सच है जब छातियों से वह काम नहीं लिया

जाता, जिसके लिए भगवान ने उन्हें बनाया है। आज की महिलाएं बच्चों को अपना दूध नहीं पिलातीं और पिलाती भी हैं तो बहुत कम समय तक। शरीर के किसी अंग का प्रयोग न किया जाय या उस प्रयोजन के लिए प्रयोग न किया जाय जिसके लिए ईश्वर ने उसे बनाया है तो कोई न कोई गड़बड़ी अवश्य हो जाती है। छाती के रोगों का एक और कारण यह है कि स्त्रियों के जीवन में विभिन्न अवस्थाओं में जैसे किशोरावस्था, मासिक धर्म, गर्भाधान, बच्चे को दूध पिलाने और रजोनिवृत्ति, में छातियों में बहुत से परिवर्तन आते हैं। शरीर के अधिकतर अंग तो मां के पेट में ही बन जाते हैं, लेकिन इन अंगों का विकास शरीर में सब के बाद और वह भी एक कठिन अवस्था—किशोरावस्था—में होता है। एक और कारण यह भी है कि यह आगे को निकली रहती हैं और इन पर चोट पहुंचने का खतरा रहता है।

छातियों में जो गांठें पड़ जाती हैं वे दो प्रकार की होती हैं :—एक तो कैंसर के कारण और दूसरी, जिन्हें रसौली की संज्ञा दी जा सकती है।

गांठों का एक कारण सिस्टिक मैस्टाइटिस नाम का रोग होता है जिसमें छातियों में रसौली जैसी गांठें हो जाती हैं। ये दोनों छातियों में दिखाई पड़ती हैं। ये गांठें समय समय पर दिखाई पड़ती हैं और अपने आप लुप्त भी हो जाती हैं। मासिक धर्म और हारमोन का संतुलन ठीक न होने के कारण ऐसी गांठें पड़ जाती हैं। मासिक धर्म से पहले ये गांठें बड़ी हो जाती हैं और उसके बाद कई बार लुप्त हो जाती हैं। ये ३५ और ४५ वर्ष की आयु के बीच की स्त्रियों को होती हैं।

फाइब्रो एडेनोमा की संज्ञा उस रोग को दी जाती है, कड़ी गांठें पड़ जाएं परन्तु उनमें पीड़ा न हो। ये बहुधा अठारह और ३५ वर्ष की आयु के बीच पड़ती हैं और इनका आकार मटर के दाने से लेकर नारंगी तक का होता है।

पैपीलोमा की संज्ञा उस रोग को दी जाती है, जब छाती में दूध की किसी नली में मस्सा सा हो जाए। इसका पता सामान्यतया उस समय लगता है जब चूची से पीले हरे रंग की पीप या लहूमिली पीप निकलने लगती हैं।

कई बार दूध की नली बन्द हो जाती है और वहां गांठ पड़ जाती है। ऐसी गांठें उन स्त्रियों को होती हैं, जिन्हें कुछ समय पहले बच्चा हुआ हो।

इसी प्रकार यदि छाती पर कोई चोट लग जाए तो चर्बी या लहू की गांठें बन जाती हैं। दूध पिलाने वाली माताओं को छातियों में फोड़े भी निकल आते हैं।

छाती का कैंसर बहुत आम है और बहुत सी स्त्रियों की मृत्यु का कारण बनता है। स्त्रियों को चाहिए कि साल में एक बार डाक्टर को दिखा लें क्योंकि अधिकतर मामलों में छाती का कैंसर प्रारम्भिक अवस्था में ठीक किया जा सकता है।

सौभाग्यवश छातियों में पड़ने वाली अधिकतर गांठें कैंसर की नहीं होती। आजकल शिक्षा के प्रसार और प्रचार के कारण अधिकतर स्त्रियां अपनी छाती में कोई गांठ देखती हैं तो तुरन्त यह समझने लग जाती हैं कि उन्हें कैंसर हो गया है। इस कारण स्त्रियों में बहुत अधिक चिन्ता हो जाती है। ऐसी रोगिणियों को डाक्टर कहता भी है कि यह मामूली रोग हैं तो उन्हें विश्वास नहीं होता, क्योंकि उनके मन में यह डर बैठा हुआ होता है कि ऐसी गांठ कैंसर ही के कारण होती हैं। होम्यो-पैथ सबसे पहले तो रोगिणी को आश्वस्त करता है, जिससे कि उसकी चिन्ता मिटे और उसके बाद उसकी मानसिक और शारीरिक अवस्था पर ध्यान देता है। यहां मैं दो उदाहरण देना चाहूंगा। एक बार एक ३५ वर्षीया महिला की छाती मे अचानक दर्द होने लगा। वह डाक्टर के पास गई तो पता चला कि नींबू के आकार की एक गांठ छाती में बन

गई है। उसे यह सलाह दी गई कि पहले तो वह बायोप्सी (मांस की परीक्षा) कराए और उसके बाद आपरेशन से गांठ को निकलवा दिया जाय। उसे तीन महीने तक लैपिस एल्बस–२०० दिन में तीन बार दी गई तो गांठ पहले से बहुत छोटी हो गई और ६ महीने बाद बिल्कुल गायब हो गई।

एक बीस वर्षीया युवती की बाईं छाती की चूची के थोड़ा नीचे बेर के आकार की गांठ उभर आई। यह गांठ यौवनारम्भ के कारण थी और युवती बड़ी नाजुक मिजाज थी, इसलिए उसे प्रति सप्ताह पलसाटिला की दो खुराकें दी गई। एक महीने में गांठ घट कर मटर के दाने जितनी रह गई। तीन महीने तक इलाज करने के बाद गांठ बिल्कुल ही गायब हो गई।

छाती में पड़ने वाली गांठों के लिए निम्नलिखित औषधियां दी जाती हैं: आरनीका (जहां सूजन और दर्द का आभास हो गांठ किसी चोच या घाव के कारण बनी हो); कोनायम (यह विषगर्जर नामक पौधे से बनाई जाती है) इसी का विष सुकरात को पीने के लिए दिया गया था जिसका विवरण अफलातून ने दिया है; इसके लक्षण यह हैं कि गांठ बहुत कड़ी, जिसे हाथ लगाने से पीड़ा होती हो और कई बार तो कपड़े के छू जाने या चलते समय हल्का सा धक्का लगने से भी पीड़ा का अनुभव होता है); कलकेरिया फ़्लोर–६ एक्स (कठोर गांठें) लैपिस एल्बस (गांठें लचीली होती हैं); फ़ाइटोलाका (पीड़ा चूची से प्रारम्भ होकर बांह तक, बल्कि सारे शरीर में फैलती है); स्क्रोफुलारिया नोडोसा (इससे बढ़ी हुई गांठें चाहे वे शरीर के किसी भाग में हों कम हो जाती हैं)। इन औषधियों के अतिरिक्त रोगिणी की आयु के अनुसार पलसाटिला (यौवनारम्भ के समय); कलकेरिया और सीपिया (जब बच्चा जनने की आयु हो) और ग्रेफ़ाइट्स तथा लैकेसिस (रजोनिवृत्ति के दौरान) भी दी जा सकती हैं। यदि

औषधि रोगी की प्रकृति के अनुसार दी जाए तो फिर यह रोग कभी नहीं होता ।

इस अध्याय में इस रोग की चर्चा इस कारण की जा रही है कि सामान्यतया स्त्री को ही सबसे पहले छाती में होने वाली गांठ का पता चलता है । सच तो यह है कि यह रोग इतना आम हो गया है कि महिलाओं को चाहिए कि नहाते समय चूचियों पर हाथ फेर कर यह पता लगाती रहें कि कहीं कोई गांठ तो नहीं उभर रही ।

जुकाम

जुकाम को बहुधा 'सामान्य जुकाम' की संज्ञा दी जाती है लेकिन वास्तव में इसे 'जटिल जुकाम' कहा जाय तो अधिक अच्छा होगा । रोगी को छींकें आती हैं, आंखों और नाक से पानी बहता है, सांस लेने में कठिनाई होती है, ठण्ड लगती है या बुखार लगता है और सारे शरीर में पीड़ा होती है । यह भी हो सकता है कि गला सूखा हुआ और खुरदरा लगे । नाक से पहले तो पानी-सा बहता है उसके बाद गाढ़ी और पीले रंग की बलगम निकलती है और यह भी हो सकता है कि नाक में पीप पड़ जाय । नाक के अन्दर की झिल्ली सूज जाती है और सूंघने की शक्ति जाती रहती है ।

कई बार किसी वायरस या विषाणु के कारण जुकाम हो जाता है । इस प्रकार के ८० से अधिक विषाणु हैं और उनमें से प्रत्येक ऐसा है जिस पर विभिन्न दवाएं असर नहीं करती ।

एलर्जी से होने वाला जुकाम कई बार धूल-मिट्टी, कुछ प्रकार की गन्धों, पेन्सिलीन जैसी दवाइयों और पेट के कीड़ों के कारण हो जाता है । छींकें अचानक आने लगती हैं और फिर बन्द हो जाती हैं, और नाक तथा आंखों में खुजली होती है । नाक से पानी बहता है और बुखार नहीं होता ।

होम्योपैथी में एलर्जी उत्पन्न करने वाले तत्वों के लिए कई

औषधियां हैं । उदाहरण के लिए, अण्डों से एलर्जी के कारण जुकाम हो जाए तो उसकी औषधि **फ़ैरम मैट** है । मिठाई से जुकाम के लिए **मैडोरीनम** उपयुक्त औषधि है । अनाज के पराग से एलर्जी हो तो **सोरीनम** देनी चाहिए और दूध पीने के बाद जुकाम हो जाए तो **अर्टीका यूरेन्स** देनी चाहिए । लक्षणों के अनुसार अन्य औषधियां हैं : **एकोनाइट** (जो सूखी सर्दी के कारण हो); **एलियम सीपा** (जब कमरे में घुसते ही छींके आने लगें; आंखों से पानी बहे और नाक से पानी बहता हो जिसमें जलन की अनुभूति हो और नाक का सिरा छिल जाय); **अरण्डो** (नथुनों में और तालु में खुजली; छींकें और नाक से पानी का बहना और सूंघने की शक्ति का जाता रहना); **ब्रोमियम** (गर्मी के दिनों में जुकाम); **यूफ़ॉसिया** (जब आंखों से पानी बहे और जलन हो और नाक से बहने वाला पानी तीखा न हो); **रस टाक्स** (वर्षा ऋतु में होने वाला जुकाम); **सबाडीला** (जब जुकाम प्रारम्भ ही हुआ हो और छींकें और नाक से पानी बहता हो; आंखें लाल हों और उनसे भी पानी आता हो); **साइनापिस निग** (नाक से तीखा पानी बहे, बारी-बारी से नासिकाएं बन्द हो जाएं और उनमें सूखापन महसूस हो); **सोलानम** (यह दवाई टमाटर से तैयार की जाती है और इसके लक्षण ये हैं कि नाक से पानी गले में गिरता है और धूल में सांस लेने से छींक अधिक हो जाती हैं ।

एक तीसरी प्रकार का जुकाम मानसिक कारणों से होता है । कई बार स्नायु व्यवस्था अत्यधिक क्रियाशील हो जाती है और चिन्ता, द्वन्द्व, नाराजगी, अपमान या कुण्ठा के कारण इस रोग का प्रारम्भ होता है। रजोनिवृत्ति के दिनों में जुकाम हो जाए तो **लैकेसिस** अधिक अच्छा काम करती है । जब अवसाद के कारण जुकाम हो तो **नेट्रम म्यूर** देनी चाहिए, क्रोध के कारण हो तो **नक्स वामिका** और यौवनारम्भ में हो तो **पलसेटिला** ।

कब्ज

शायद ही कोई ऐसा घर होगा, जहां एकाध व्यक्ति ऐसा न हो जो हर समय शौचलाय में ही बैठा रहता हो या जिसका पेट सदा खराब न रहता हो; या तो दस्त लगे रहते हैं और या कब्ज पीछा नहीं छोड़ती।

कब्ज अपने आप में कोई रोग नहीं है, बल्कि ऐसा लक्षण है जो बहुधा पाया जाता है। यह कई रोगों में होता है और बुखार से लेकर थायराड ग्रन्थि के विकार तक किसी भी रोग में कब्ज हो जाती है। कब्ज इतनी सामान्य बीमारी है कि लगभग सभी को कभी न कभी अवश्य हो जाती है। इसका एक सबसे अधिक महत्वपूर्ण कारण मानसिक है। शौच जाना एक स्वभाव है, जो शैशवावस्था से ही पड़ जाता है। यदि हाजत की उपेक्षा की जाय तो कब्ज अवश्य हो जाएगा। इसलिए कब्ज का मूल इलाज तो यह है कि बच्चे को प्रारम्भ से ही शौच जाने की आदत डाली जाय।

बहुत से लोग हाजत को रोकने की कोशिश करते हैं या आलस्यवश नहीं जाते, तो हाजत होनी बन्द हो जाती है। कुछ लोग गन्दा पाखाना देख कर हाजत होने पर भी उसमें नहीं बैठते और कुछ को अपने ही घर का शौचालय इतना पसन्द होता है कि वे और कहीं जा ही नहीं सकते। मैं एक अधेड़ आयु की महिला को जानता हूं जो जब भी अपने घर से बाहर या दूसरे नगर में जाती थी तो आठ-आठ दिन तक शौच नहीं कर पाती थी।

कारण जो भी हो, जब हाजत होनी बन्द हो जाती है, तो गुदा [illegible] जाती है और मल का इतना बोझ नहीं पड़ता कि वह बाहर निकल [illegible]। उस अवस्था में मल की मात्रा अधिक हो तभी हाजत होती है और पाखाना हो सकता है। ऐसे रोगी यदि कुछ समय और शौचालय में बैठे रहें तो उनकी कब्ज दूर हो जाए, परन्तु अधिकतर लोग आसान इलाज ढूंढ़ते हैं और जुलाब लेने लगते हैं। कुछ ही समय में उनकी

आदत पड़ जाती है और प्राकृतिक रूप से हाजत होनी बन्द हो जाती है। उसके बाद मल त्याग के लिए अधिक मात्रा में जुलाब लेना पड़ता है और फिर ऐसी हालत हो जाती है कि जुलाब लेने से भी कुछ नहीं बनता।

कब्ज के कारण कई रोग अधिक प्रचण्ड हो जाते हैं जैसे मिरगी, दमा और चिन्ताजनित स्नायु विकार। कब्ज के कारण बवासीर, गुदा में दरार और पीठ और टांगों में पीड़ा भी होने लग सकती है; लेकिन लगभग आधे मामलों में कब्ज अस्थायी होती है और इसके लिए कोई दवाई लेने की आवश्यकता नहीं। जिन्हें सदा कब्ज रहती हो, उन्हें तुरन्त इलाज आरम्भ करना चाहिए क्योंकि इसकी उपेक्षा करने से रोग अधिक जटिल बन सकता है।

कई रोगियों को बहुत अधिक कब्ज होती है और उनकी अंतड़ियों में मल को निकाल कर फेंकने की शक्ति का इतना अभाव हो जाता है कि चाहे वे लोग कितना ही जोर क्यों न लगाएं, पाखाना निकलता ही नहीं। ऐसे लोगों को कई बार हाथ डाल कर मल निकालना पड़ता है। इसके लिए एल्यूमिनियम से तैयार की गई दवाई **एल्यूमीना** देनी चाहिए। यह उन परिवारों में अधिक अच्छा काम करती है जहां एल्यूमिनियम के बर्तनों में खाना पकाया जाता है और कब्ज एल्यूमिनियम के विष के कारण उत्पन्न होती है। जिन बच्चों को बोतल से दूध पिलाया जाता है, उनकी कब्ज के लिए भी एल्यूमीना ही उपयुक्त औषधि है। **ब्रायोनिया** के साथ यही दवाई ऐसे रोगियों को देनी चाहिए जिनकी अंतड़ियां सूख गई हों और मल कड़ी सूखी गांठों के रूप में निकलता हो। **ब्रायोनिया** के लक्षण ये हैं: मल की मात्रा बहुत होती है और उसकी गांठें इतनी कड़ी और सूखी होती हैं मानो जली हुई हों। सारे शरीर की झिल्लियों में सूखेपन की अनुभूति होती है; रोगी का मुंह सूखता रहता है और उसे अत्यधिक प्यास लगती है। **चेलीडोनियम**

ऐसे बच्चों के लिए उपयोगी है जिनका जिगर ठीक न होने के कारण कब्ज रहती हो और जिनका मल भेड़ की मेंगनों के समान हो।

कई व्यक्तियों को कई बार पाखाने जाकर ही तसल्ली होती है। मुझे एक ऐसे रोगी की याद आती है जिसे नौ बजे दफ्तर पहुंचने के लिए सवेरे पांच बजे जागना पड़ता था। वह आधे आधे घण्टे बाद तीन या चार बार शौच जाता था और हर बार थोड़ासा मल निकलता था। जल्दी जागने के कारण उसकी नींद पूरी नहीं होती थी और उसके काम की क्षमता कम हो गई थी। वह चाहता था कि उसकी कब्ज दूर हो तो वह आराम की नींद सो सके और काम पर जाए तो तरो ताजा महसूस करे। कुछ सप्ताह तक उसे नक्स वामिका दी गई और वह ठीक हो गया। **नक्स वामिका** न केवल डाक्टर बल्कि वे लोग भी बहुधा देने लगते हैं जो होम्योपैथी के बारे में थोड़ा बहुत ही जानते हैं और कई बार तो ऐसा होता है कि बारबार यही दवाई खाने से इसी के लक्षण उत्पन्न हो जाते हैं। एक मरीज को कई वर्ष तक कब्ज रही तो उसे यह कहा गया कि रात को सोते समय तीन महीनेतक **नक्स वामिका–१०००** की एक खुराक ले लिया करे। जब वह रोगी मेरे पास आया तो उसे यह दवाई लेते कुछ महीने बीत चुके थे। उसे बार बार हाजत होती थी और हर बार थोड़ा सा मल निकलता था। इसके साथ ही वह जरा-जरा सी बात पर खीझ भी जाता था। जब कब्ज के साथ खीझ, और हाजत हो, लेकिन मल का निकास न हो तो इन लक्षणों के अनुसार **नक्स वामिका** ही सर्वोत्तम औषधि है। इस रोगी ने यह औषधि अधिक मात्रा में ले ली थी और इसी के लक्षण उसमें उत्पन्न हो गए थे। उसे मैंने यह राय दी कि कुछ महीने तक कोई भी औषधि न ले और इस प्रकार धीरे धीरे यह रोग दूर हो गया। यह स्पष्ट है कि कुछ व्यक्ति बहुत अधिक नाजुक होते हैं और औषधियां लें तो उनमें उन्हीं औषधियों के लक्षण उत्पन्न हो जाते

हैं, इसलिए लम्बे समय तक औषधि तभी लेनी चाहिए, जब डाक्टर उसकी राय दे। हम पहले ही कह चुके हैं कि **नक्स वामिका** दफ्तरों में काम करने वाले लोगों के लिए उपयुक्त औषधि है और ऐसे लोगों में बहुत अधिक लाभकारी है, जो लम्बे समय तक हाजत की उपेक्षा करके कब्ज का शिकार हो जाते हैं। यह दवाई उन लोगों के लिए भी लाभकारी है, जो दिन भर बैठे रहते हैं और कभी व्यायाम नहीं करते। इस कारण उनके शरीर के सभी अंग शिथिल हो जाते हैं।

ओपियम ऐसे रोगियों के लिए उपयुक्त है, जिनकी अंतड़ियां निष्क्रिय हो गई हों और उनमें शक्ति न रही हो। इस औषधि का मुख्य लक्षण यह है कि हाजत बिल्कुल नहीं होती और सम्भव है कि कई दिन तक हाजत न होती हो। इस कारण मल गुदा में इकट्ठा होकर कठोर हो जाता है और जब बाहर निकलता है तो काले रंग की सूखी और कठोर गोलियों के रूप में निकलता है। चूंकि रोगी को हाजत होती ही नहीं, इस कारण कब्ज से कोई तकलीफ नहीं होती। वह तकलीफ तब शुरू होती है जब मल इतना इकट्ठा हो जाए कि अंतड़ी के ऊपरी भाग तक पहुँच जाय। **ओपियम** वृद्धावस्था में अधिक अच्छा काम करती है और यदि आपके परिवार में कोई ऐसा बड़ा बूढ़ा हो जो कई कई दिन तक शौच न जाता हो तो उसे ओपियम की कुछ खुराकें दे दीजिए। यदि आपका पति अपने काम के सिलसिले में बहुत दौरे करता हो तो उसके सामान में **प्लाटिना** की एक शीशी रख दीजिए। यह ऐसी कब्ज के लिए है जो रहन-सहन का ढंग बदलने के परिणामस्वरूप होती है।

यदि आपके घर में कोई ऐसा चित्रकार हो जो सदा चित्र बनाने में लगा रहता हो और उसे कब्ज हो जाए तो **प्लम्बम** की कुछ खुराकें उसके लिए लाभकारी सिद्ध हो सकती हैं। यह दवाई सीसे से तैयार की जाती है। सीसे के विष से अंतड़ियों की मांस पेशियां

निष्क्रिय हो जाती हैं और उनसे निकलने वाले द्रव की मात्रा कम हो जाती है। जो चित्रकार तूलिका को गीली करने के लिए उसे कई बार अपनी जीभ पर फेर लेते हैं, उन्हें सीसे का विष चढ़ सकता है और उसके कारण कब्ज हो सकती है।

मानसिक तनाव का भी कब्ज से बड़ा सम्बन्ध है और जो लोग मानसिक तनाव की परिस्थितियों में रहते हों उन्हें कब्ज हो जाती है। जब ऐसे रोगी का मल गुदा के द्वार पर पहुँच कर टूट कर गिर पड़ता हो तो उसे **नैट्रम म्योर** देनेसे लाभ होता है। इस औषधि का एक विशेष लक्षण यह है कि मल का पहला भाग कठोर होता है और दूसरा नर्म। ऐसे मामलों में **कलकेरिया** या **लाइकोपोडियम** की आवश्यकता पड़ सकती है। जब मल बड़ी बड़ी गोलियों के रूप में हो जो आंव से जुड़ी हुई हों तो **ग्रेफाइट्स** का ध्यान आना चाहिए। **साइलीशिया** का लक्षण यह है कि मल निकलता है और अचानक फिर अन्दर चला जाता है। इसका कारण यह है कि गुदा द्वार की मांसपेशी में अचानक ऐंठन पैदा हो जाती है जो आधे निकले मल को फिर अन्दर खींच लेती है।

खांसी

खांसी किसी विषाणु से लेकर यक्षमा तक में होती है। कई बार श्वास नली आक्सीजन खींचने में असमर्थ हो तो भी खांसी हो जाती है। खांसी के लिए घर में निम्नलिखित दवाइयां रखनी चाहिए : **एम्ब्रा ग्रीसिया** (जहां खांसी सहज हो जाय); **एण्टिम टार्ट** (जब खांसी के साथ छाती में बलगम के हिलने से खरड़ खरड़ की आवाज़ आती हो और बहुत अधिक खांसने पर थोड़ी सी बलगम निकलती हो); **कॉस्टीकम** (जब ठण्डा पानी पीने से खांसी को आराम मिले) **फ़ासफ़ोरस** (जब श्वास नलीमें खुजली का अनुभव हो जो ठण्डी हवा

में बढ़ जाय। यह खांसी बोलने या खांसने से अधिक बिगड़ती है); **रयूमेक्स** (सूखी खांसी जिसमें चुनचुनाहट होती हो और रोग गर्मी से कम हो जाता हो। इसका एक लक्षण यह भी है कि रोगी; खांसी को रोकने के लिए चादर में मुंह छुपा लेता है); **सेनेगा** (जिस खांसी में बहुत अधिक बलगम निकलती हो और खांसने से पहले या बाद में छाती में जलन होती हो); **स्पोंजिया** (सूखी कुत्ते जैसी खांसी); **स्टिक्टा** (कर्कश आवाज़ वाली खांसी जिसके दौरे थोड़ी थोड़ी देर बाद पड़ें)।

दस्त

हरी सब्जियां, सलाद, कच्चे फल, वर्षा ऋतु में मछली और मांस आदि अधिक मात्रा में खाने से दस्त लग सकते हैं। यदि पानी और भोजन में रोगाणु हों, आमाशय की सूजन जैसी कोई तकलीफ हो या इन्फ्लूएंजा हो तो भी यह रोग उत्पन्न हो जाता है। दस्त अंतड़ियों की सूजन का भी एक लक्षण है। कई बार घबराहट और डर के कारण भी यह रोग प्रारम्भ हो जाता है। आप देखेंगे कि किसी बड़ी परीक्षा से पहले सारे शौचालय भरे मिलते हैं।

इसके लिए निम्नलिखित औषधियां हैं: **एलोस** (जब पादते समय अनायास मल निकल जाय); **अर्जेन्टम नाइट्रिकम** (जब मिठाइयां खाने से दस्त लगें); **क्रोटोन टिग** (इसे बन्दूक की गोली वाले दस्तों की संज्ञा दी जाती है, रोगी कुछ खाने या पीने के तुरन्त बाद शौचालय की ओर दौड़ता है और दस्त ऐसे निकलता है जैसे बन्दूक से गोली); **डल्कामारा** (जब मौसम या तापमान के परिवर्तन के कारण रोग प्रारम्भ हुआ हो); **जेलसीमियम** (डर के कारण दस्तों का प्रारम्भ होना) **नक्स वॉमिका** (अधिक खा लेने से प्रारम्भ हुआ रोग (मजे की बात यह है कि जो दवाई कब्ज को दूर करने

के लिए दी जाती है, वही दस्तों की बीमारी में भी लाभदायक है। यह एक विरोधाभास सा लगता है, परन्तु है नहीं। कारण यह है कि जब यह औषधियां स्वस्थ्य व्यक्तियों को दी जाती हैं तो कुछ को कब्ज हो जाती है और कुछ को दस्त लग जाते हैं। इसीलिए जो दवाई दस्तों को ठीक करती है वही कब्ज का भी इलाज है। जब बहुत अधिक दस्त लगें और साथ में दुर्बलता और थकावट हो जाए तो फ़ास्फ़ोरिक एसिड देनी चाहिए। जब तली हुई चीजें, केक पेस्ट्रियां और चाक्लेट आदि जैसा गरिष्ट भोजन करने से पेट खराब हो जाए तो पलसोटिला उचित औषधि है।

कान की बीमारियां

कान की बात करें तो आम आदमी बाहर के कान की बात सोचता है, जिसे वह देख सकता है या जिसे खींचा जाता है। लेकिन उसके भीतर एक बड़ा जटिल अंग है जो दिखाई नहीं देता। सुनने की शक्ति हमारी मुख्य इन्द्रियों में से एक है और इसमें कोई रोग या विकार उत्पन्न हो जाए तो कठिनाई हो सकती है। कई बार मां-बाप को यह चिन्ता होती है कि नवजात शिशु ठीक से सुन भी पा रहा है या नहीं और यह चिन्ता उचित ही है। शिशु के सामने ताली बजाइए तो वह अपनी आंखें झपकाएगा। इसका मतलब यह है कि वह सुन सकता है। दूसरा तरीका यह है कि बच्चा आस-पास होने वाली आवाज़ों की ओर सिर मोड़ता है तो पता चल जाता है कि उसकी सुनने की शक्ति ठीक है।

कान के रोगों के सबसे अधिक सामान्य लक्षण ये हैं : पीड़ा, पीप आदि का निकलना, सुनने की शक्ति का कम हो जाना, और कान में या दोनों कानों में तरह तरह की आवाजों का सुनाई देना। कान से बाहर होने वाली कई बीमारियां हैं जैसे साइनस की सूजन,

नाक की हड्डी का टेढ़ा होना, दाढ़ का गल जाना, गले की सूजन, या टॉंसिल की सूजन, जिनके कारण कान में पीड़ा होने लगती है।

बच्चा कई बार खेलते समय कान में कोई वस्तु डाल लेता है— कोई आलपीन, माचिस की सलाई, बटन या मटर का दाना। कई बार सोते में कोई कीड़ा कान में चला जाता है जिससे बहुत खीझ उत्पन्न होती है। पहली बात तो यह है कि आतंकित मत होइए। यह बड़ी मामूली सी समस्या है जिसका समाधान कोई भी डाक्टर कर सकता है।

पहली बात तो यह है कि बालों की सुई से कान में पड़ी वस्तु को निकालने की कोशिश न कीजिए, क्योंकि डर इस बात का है कि वह वस्तु और अधिक अन्दर न चली जाए। यदि कोई कीड़ा कान में जा घुसा है तो उसके चलने से बड़ी उलझन होती है। कान के बन्द होने या उसमें चोट पहुँचने से बहरापन हो सकता है। प्रकृति बाहर की किसी वस्तु को कान के अन्दर तक पहुँचने से रोकने का यह प्रबन्ध करती है कि जहां पर वह वस्तु पड़ी हो उसके आस-पास की चमड़ी सूज जाती है।

होम्योपैथी में कान में चोट लगने पर **आर्नीका** दी जाती है। **बेलाडोना** से सूजन कम करने में सहायता मिलती है और **साइलीशिया—६ एक्स** कान में पड़ी वस्तु को बाहर निकाल फेंकती है। जब कोई कीड़ा कान में घुस जाए तो उसमें तेल डाल दीजिए जिससे कीड़ा मर जाएगा और डाक्टर उसे बाहर निकाल सकेगा। यदि और कोई वस्तु कान में जा फँसी है तो इस बात का निर्णय डाक्टर पर छोड़ दीजिए कि उसे कैसे बाहर निकाला जा सकता है।

यदि कान के बीच के भाग में कोई रोग हो जाए (**उसे ओटाइटिस** की संज्ञा दी जाती है) तो पीप बहने लगती है। जब कोई विमान बहुत तेजी से नीचे को आता है तो वायुमण्डल में हवा का

दबाव बढ़ने के कारण यह सूजन हो जाती है। सामान्यतया ऐसी सूजन नाक के किसी रोग, गले की सूजन या टोंसिल की सूजन के कारण होती है। इसके अन्य लक्षण हैं: कानों के बन्द होने की अनुभूति और बहरापन जैसे कि कान की झिल्ली फट गई हो। यदि कोई व्यक्ति अपने कानों को साफ न रखता हो तो भी सूजन आ सकती है और लगातार पीप बह सकती है।

इस रोग के इलाज के लिए सबसे बड़ी आवश्यकता तो सफाई रखने की है। इसके लिए निम्नलिखित औषधियां हैं: **डल्कामारा** (जब वर्षा में कान की सूजन बढ़ जाए); **काली बाइक्रोम** (जब पीप के तन्तु निकलते हों); **काली म्योर–६ एक्स** (सूजनकी दूसरी अवस्था जब पीप बहने लगी हो); **मर्क सोल** (कान से दुर्गन्ध आए जो रात के समय अधिक बढ़ जाए); **पलसाटिला** (जब खसरा निकलने के बाद कान में सूजन हो जाए); और **टेल्यूरियम** (पीप से मछली जैसी बू आती हो)। सबसे अच्छा यह है कि कान की सूजन होने पर किसी डाक्टर को दिखा लिया जाय क्योंकि इसके कारण मस्तिष्क की सूजन, वहां पर फोड़े, चेहरे का पक्षाघात, और कान के पीछे की हड्डी में सूजन जैसे गम्भीर रोग हो सकते हैं।

यदि कान को अन्दर से खुजाने, उस पर चोट लगने या बहुत अधिक सफाई करने के परिणामस्वरूप कोई घाव बन जाए तो झिल्ली फट सकती है जिसके परिणामस्वरूप बहरापन हो सकता है। उस अवस्था में **आर्नीका** और **हाईपेरिकम** जैसी औषधियां सर्वोत्तम हैं।

जैसा कि पहले कहा जा चुका है, कान की अधिकतर बीमारियों में पीड़ा होती है। कुछ थोड़ी सी दवाएँ घर में रख ली जाएँ तो कान की हर प्रकार की पीड़ा का इलाज आसानी से हो सकता है।

ये दवाइयां हैं: **बेलाडोना** (जब कान में नाड़ी के चलने के समान पीड़ा होती हो जो शोर शराबे से बढ़ जाती हो); **कैप्सीकम**

(कानों में जलन और चुभने जैसा दर्द; यह दवाई कान के पीछे की हडडी की सूजन में विशेष रूप से लाभप्रद है; इसका एक लक्षण यह भी है कि रोगी शोर शराबे में अधिक अच्छी तरह सुन सकता है) **कैमोमिला** (अत्यधिक जलन और ऐसी पीड़ा मानो कोई सुइयां चुभों रहा हो); **हैपर सल्फ़** (जरा सा हाथ लगाने से भी पीड़ा होती हो और रोगी उसे हाथ न लगाने दे); **वेरबासम** (जब पीड़ा के साथ यह अनुभव हो कि मानो कान बन्द हो गया है। इसके साथ ही मुलीन नाम का तेल एक बूंद कान में डाल दिया जाय तो उससे पीड़ा कम हो जाती है); **वायोला ओड** (जब बहुत तीव्र पीड़ा हो और कान के नीचे सुई चुभने जैसा दर्द हो)।

कानों में फोड़े फुन्सी, एग्ज़ीमा या कोई दूसरा चर्म रोग हो जाए तो वह तुरन्त दिखाई पड़ जाता है। कई बार लड़कियाँ अपने कान बंधवाती हैं तो सुई का घाव भरता नहीं है या उसमें पीप पड़ जाती है। जब कान की सिलवटों के पीछे मधु जैसा मवाद निकलता हो तो उसकी औषधि **ग्रेफ़ाइट्स** है। जब नाड़ी में पीड़ा का अनुभव हो तो **हाइपेरिकम** और **लेडम पाल** देनी चाहिए। जब सूखी खुजली हो तो **सल्फ़र** दीजिए। इन तकलीफों के लिए **बायोकेमिक** दवाइयाँ **कलकेरिया सल्फ़ –६ एक्स** और **काली म्योर–६ एक्स** भी दी जा सकती है।

और फिर एक समस्या कान में मैल जमा होने से भी उत्पन्न हो जाती है। यह पसीने के समान अन्दर से निकलने वाला गाढ़ा पदार्थ है जब बहुत अधिक मैल जम जाय तो कई समस्याएँ उत्पन्न हो जाती हैं–सुनाई कम देता है, पीड़ा होती है, और थोड़ी सी पीप भी निकलती है। कई बार किसी स्नायु को क्षति पहुँच जाय, तो कान में भांति-भांति की आवाजें सुनाई देने लगती हैं। होम्योपैथी में कान की जमी हुई मैल को नर्म करने के लिए **मुलीन** नामक तेल डाला

जाता है। जिन लोगों के कानों में बहुत मैल जमा होने की प्रवृत्ति हो, उन्हें **कॉस्टिकम** देने से लाभ पहुँच सकता है।

कानों के लिए कुछ सामान्य निर्देश

(१) कानों को साफ रखिए।
(२) कान साफ करने के लिए कोई सलाई या जूड़े की सुई का प्रयोग मत कीजिए।
(३) कान से पीप बहती हो तो उसकी उपेक्षा मत कीजिए। सम्भव है कि यह किसी आन्तरिक रोग का लक्षण हो और तुरन्त अपने डाक्टर की सलाह लीजिए।

आंखों की बीमारियां

जब पोलेरायड कैमरे का आविष्कार हुआ तो लोग यह देख कर आश्चर्यचकित थे कि दूर की कोई भी वस्तु इतनी शीघ्रता से फिल्म पर आ जाती है और उसे कैमरे से निकालो तो सारी तस्वीर तुरन्त उभर आती है। मानव स्वभाव ही ऐसा है कि हम बाहर की हर वस्तु को देख कर आश्चर्य करते हैं, लेकिन अपने शरीर में भगवान की जो लीला है उसे नहीं पहचानते। क्या हमने कभी इस बात को महसूस किया है कि हमारे शरीर में सर्वोत्तम कैमरा है—हमारी आंख? जिधर भी आप दृष्टि डालें, यह कैमरा अपने आप फोकस कर लेता है और आंख में देखने की जो शक्ति है वह मानव द्वारा बनाए गए किसी कैमरे में नहीं पाई जाती। और फिर इस कैमरे के लिए न बैटरी चाहिए, न बिजली और न फ्लैश गन। आंखे भगवान की देन हैं और इनके भलीभांति काम करते रहने के लिए यह आवश्यक है कि इनकी देखभाल की जाय। फिर भी, हम अपने कैमरे की बैटरी बदलने में अधिक समय लगाते हैं और अपनी आंखों की देखभाल करने में कम।

आंखों की उपेक्षा करने से वे कमजोर हो जाती हैं और उनमें कई प्रकार के रोग हो जाते हैं। केवल इतना ही नहीं है; स्वास्थ्य या रोग का दर्पण भी आंखें ही हैं। आंखों के नीचे गड्ढे पड़ जाएँ तो इसका मतलब है कि आप रात को देर तक जागते हैं, पूरी तरह नींद नहीं लेते और आपका भोजन ठीक नहीं है।

पलकें चमड़ी की मुड़ सकने वाली सिलवटों से बनी हैं, जिनके नीचे मजबूत झिल्ली है। पलकों के बाल हमारी आंखों को चोट, बाहर की वस्तुओं और अत्यधिक प्रकाश से बचाते हैं। पलकों के ही कारण आंसू और अन्य ग्रन्थियों के स्राव आंख की पुतली को भिगोए रखते हैं और उस पर कोई गर्द नहीं जमने पाती।

यदि पलकों के कानों पर सूजन आ जाए तो उस रोग को ब्लेफाराइटिस की संज्ञा दी जाती है। कोने लाल और मोटे हो जाते हैं और उन पर पपड़ी जम जाती है। यदि वहां की त्वचा छिल न गई हो, तो पलकों की जड़ में सफेद रंग की पपड़ी रहती है। पलकों के बाल गिर जाते हैं, लेकिन फिर नए उग आते हैं क्योंकि रोम छिद्र नष्ट नहीं हुए होते। यह रोग गोरे रंग के व्यक्तियों को अधिक होता है। जब पलकों के छोर छिल जाएं तो लाल हो जाते हैं और सूज जाते हैं, पीले रंग की पपड़ी जम जाती है जिससे पलकें जुड़ जाती हैं मानो किसी ने गोंद लगा दी हो। जब पपड़ी हटाई जाए और पलकों को अलग किया जाए तो उनकी जड़ में अल्सर दिखाई देते हैं। यह रोग बहुधा गन्दे वातावरण, शरीर की दुर्बलता, खसरा निकलने के बाद, धुएँ, हवा या धूल, रात तक जागने और कमजोर नजर के कारण होता है।

इसके इलाज के लिए सबसे पहले तो यह आवश्यक है कि आंखों को साफ रखा जाय और रोगी की बुरी आदतें सुधारी जाएँ। जिन लोगों को बार बार जुकाम होता हो और साथ में यह रोग हो,

उन्हें **बेसीलीनम** देनी चाहिए। इससे न केवल यह रोग दूर हो जाता है, बल्कि रोग से लड़ने की शक्ति बढ़ती है और पुनः इसके होने का डर नहीं रहता यदि पलकें सूखी, लाल और सूजी हुई हों या उनमें दरारें पड़ी हों और रोगी कृत्रिम प्रकाश न सह सकता हो तो **ग्रेफ़ाइट्स** देनी चाहिए।

पलकों के अन्दर एक पतली सी झिल्ली होती है जिसकी सूजन को **कंजेक्टवाइटस** की संज्ञा दी जाती है। कई बार दोनों ओर की पलकों की झिल्लियों में सूजन आ जाती है। यदि घर में किसी एक को यह रोग हो जाए तो बाकी लोगों को भी हो सकता है, क्योंकि यह रोग छूत का रोग है इसलिप आँखों का ध्यान रखिए और उन्हें हाथों से मलिए नहीं, जिससे कि इसके कीटाणु दूसरों तक न पहुँच जाएँ! किसी रोगी के रूमाल या चादर के इस्तेमाल से भी स्वस्थ व्यक्तियों को यह रोग हो सकता है। हाथों को नियमित रूप से धोते रहना चाहिए और साफ रखना चाहिए।

इस रोग का प्रारंभिक लक्षण आंखों में खुजली है। उसके बाद आँखें लाल हो जाती हैं। गाढ़ा सा मवाद निकलता है जो प्रारंभ में सफ़ेद या पीला होता है और बाद में और गाढ़ा होकर भूरे रंग का हो जाता है। आंखों में बहुत पानी आने लगता है।

यदि यह रोग फैला हुआ हो तो निम्नलिखित दवाइयां देनी चाहिए : **एपिस मेल** (पलकें सूजी हुई और लाल; उनमें जलन और चुभने जैसा दर्द; आंसू निकलते हैं तो गर्म और जलन होती है; गर्मी लगने से कष्ट बढ़ता है और ठण्डे पानी से धोने से आराम मिलता है); **अर्जेन्टम नाइट्रिकम** (पलकें सूजी हुई, गाढ़ा पीप जैसा स्राव और आग की गर्मी के पास जाने से आखों में पीड़ा होती है); **यूफ़ासिया टिंक्चर** आंख में डालने की (यह दिन में दो या तीन बार एक-एक बूंद आखों में

डाल दी जाए तो कष्ट दूर हो जाता है। यही दवाई कम पोटेंसी में खाई भी जा सकती है); **फ़ैरम फ़ास—६ एक्स** (इसे निथरे पानी में घोल कर एक-एक बूंद दोनों आखों में डाल लीजिए); **रस टॉक्स** (पलकों में खुजली और जलन और पलकें खोलते ही उनसे गर्मगर्म पानी का निकलना)।

और फिर, **आंसू उत्पन्न करने वाली ग्रन्थियों** के विकार से कई नेत्र रोग उत्पन्न होते हैं। आंखों के पीछे ऐसी ग्रन्थियां हैं जो आंसू उत्पन्न करती हैं। उनसे निकलने वाले पानी में थोड़ा सा क्षार और बहुतसा नमक होता है और इसी कारण आंसू जीभ पर पड़ जाए तो नमकीन लगता है। दिन भर यह ग्रन्थि इतना पानी पैदा करती है, जिससे आंखकी पुतली गीली रहे। आपको महसूस भी नहीं होता कि यह पानी आ रहाहै, क्योंकि वायु मण्डल में यह पानी सूखता रहता है। जब आप तनाव की स्थिति में हो या भावनाओं के वश में हों या नाक या आंख में खुजली सी हो तो यहपानी बढ़ जाता हैं। जब आप पलकें झपकाते हैं तो आंख का पानी सारी पुतली पर फैल जाता है।

जब आंसू की झिल्ली में सूजन आ जाए तो **डेक्रोसिस्टाइटिस** नाम का रोग हो जाता है। यह या तो तीव्र रूप में होता है और या पुराना पड़ जाता है। प्रारंभ में आंखों से पानी बहता है, लेकिन कुछ ही दिन में उनमें पीड़ा और सूजन होने लगती है। यह सूजन गालों तक पहुँच सकती है और कई बार पलकें और उनके अन्दर की झिल्लियां भी सूज जाती हैं। प्रारम्भ में छोटे छोटे छिद्रों से पीर निकल सकती है लेकिन बाद में वे छिद्र बन्द हो जाते हैं। यदि पीप न निकल सके तो वह फिर चमड़ी के माध्यम से निकलती है। यदि सूजी हुई चमड़ी फट जाए तो उसके नीचे एक नाली सी बन जाती है जिसे **फिस्टुला** कहा जाता है। ऐसी परिस्थितियों में **साइलीशिया** बहुत अच्छी

दवाई है इससे पीप सूख जाती है और जिन छिद्रों से निकलती है, वे बन्द हो जाते हैं।

इस रोग में **कलकेरिया कार्ब** दी जा सकती है (ठण्ड लगने से आंसू की थैलियां बंद हो जाती हैं; रोशनी बुरी लगती है; प्रातः और खुली हवा में आंखों से अधिक पानी निलकता है; इस औषधि के रोगी गोरे, चिट्टे, मोटे और थलथल शरीर वाले होते हैं) **आयोडियम** (रोगी दुबला-पतला और दुर्बल; उसे पसीना बहुत आता है और भूख बहुत लगती है; जब यह रोग तीव्र हो तो यही दवा देनी चाहिए) ।

अनुमान लगाया गया है कि ७५ प्रतिशत भारतीयों को कभी न कभी रोहे अवश्य हो जाते हैं। पंजाब में इसे कुकरे कहा जाता है और महाराष्ट्र में कील। लेकिन चिकित्सा शास्त्र की दृष्टि से पलकों के नीचे दाने उभर आते हैं और रोगी को ऐसा लगता है मानो आंख में कुछ पड़ गया है।

प्रारम्भिक अवस्था में आंखों में हल्की सी खुजली होती हैं। रोगी लगातार आंखें मलना चाहता है, जिस कारण उनसे पानी बहता है और वे लाल हो जाती हैं। यह रोग छूत से बड़ी जल्दी फैलता है और इसमें सफाई रखना अत्यावश्यक है। यदि प्रारम्भ में इस रोग का इलाज न किया जाय, तो रोहे के कारण आंख की पुतली रुंध जाती है, अर्थात् उसमें से प्रकाश नहीं निकल सकता, और अन्ततोगत्वा रोगी अन्धा हो जाता है।

इस रोग के लिए होम्योपैथी में निम्नलिखित दवाएं हैं : **बैला-डोना** (जब आंखें लाल हों और उनमें जलन हो); और **सल्फ़र** (आंखों में खुजली और जलन और पलकों के छोरों पर छिली हुई चमड़ी (यह रोग सामान्यतया पुराना पड़ जाता है और इसे दूर करने के लिए यह आवश्यक है कि रोगी की प्रकृति के अनुसार औषधि का चुनाव किया जाय।

आंखों के लिए कुछ निर्देश

(१) जब भी आप पढ़ें तो इस बात का ध्यान रखिए कि प्रकाश सिर के पीछे से आना चाहिए।

(२) लेट कर मत पढ़िए।

(३) गन्दे रूमाल या चादरों आदि का इस्तेमाल मत कीजिए। जिन लोगों को बहुधा जुकाम रहता हो उन्हें नाक साफ करने के लिए एक अलग रूमाल रखना चाहिए।

(४) अपने हाथ सदा साफ रखिए।

(५) आंखों को बहुत जोर से मत मलिए।

(६) यदि ठण्डे पानी से आंखें धोई जाएँ और पानी के छींटे मारते समय उन्हें खुली रखा जाय, तो बहुत आराम मिलता है।

(७) यदि आपको चश्मा लगा हुआ है तो उसका नम्बर डाक्टर से लेना चाहिए और ढंग का चश्मा होना चाहिए। न केवल नम्बर ठीक होना चाहिए, बल्कि ऐनक आखों से उचित दूरी पर होनी चाहिए, जिससे कि पहननने वाले को किसी प्रकार का कष्ट न हो।

बुखार

आप हैरान होंगे कि बुखार को रोगों के वर्ग में क्यों रखा गया है। यह तो छोटी माता या जुकाम का एक लक्षण मात्र है। आपका यह सोचना ठीक है और इसीलिए बुखार एक चेतावनी हैं जिसकी उपेक्षा नहीं करनी चाहिए। यदि इस अध्याय में दी गई दवाइयां असर न करें और चौबीस घण्टे तक बुखार न उतरे तो किसी डाक्टर को दिखाइए। बच्चों को बुखार हो तो उसे १०२ डिग्री से ऊपर न

बढ़ने दीजिए, क्योंकि कुछ बच्चों को बुखार में बेहोशी के दौरे पड़ने लगते हैं। बुखार उतारने वाली दवाओं से बचिए, क्योंकि उनसे बहुत अधिक पसीना आकर अचानक बुखार उतर जाता है और उससे कमजोरी आ जाती है। यदि आप बुखार को दबा देंगे तो डाक्टर के लिए असली रोग का निदान करना कठिन हो जाएगा। इस बात को मत भूलिए कि बुखार प्रकृति की ओर से एक चेतावनी है। मानो वह कह रही हो : "जरा संभलना भाई, हमें कुछ सफाई करनी है" तो इसलिए संभल कर चलिए।

पेट में वायु

यदि पेट ठीक से काम न करे तो उसका एक परिणाम होता है कि वायु बहुत बनती है और जब वह नीचे से निकलती है तो काफी उलझन का सामना करना पड़ता है? वायु से कोई विशेष हानि तो नहीं होती लेकिन बेआरामी बहुत होती है। वायु बनने के कई कारण हैं, जैसे कि पेट में कीड़ों का होना, जिगर का ठीक से काम न करना या कब्ज और मानसिक तनाव। बहुधा पेट में वायु से होन वाली पीड़ा को हृदय का दौरा मान लिया जाता है और कई बार दिल के दौरे को वायु का विकार समझ लिया जाता है। बहुत से रोगी छाती में उत्कट पीड़ा की शिकायत लेकर डाक्टर के पास पहुंचते हैं, तो मुस्कराते हुए लौटते हैं, क्योंकि वायु विकार के कारण ही उन्हें छाती में पीड़ा हुई थी। वायु निकल जाने के बाद पीड़ा अपने आप दूर हो जाती है। जब बहुत बदबू वाली वायु निकलती है तो **असा फिटीडा** देनी चाहिए। जब पेट का ऊपरी भाग तना हुआ हो तो **कार्बो वैज** उपयोगी है। जब सारा पेट तना हुआ हो तो **चाइना** देनी चाहिए। और जब पेट के निचले भाग में वायु इकट्ठी हो गई हो तो **लाइकोपोडियम** अच्छा काम करेगी। आपरेशन के बाद पेट में हवा

बनने लगी हो तो उस दशा में रेफ़ानस अधिक उपयोगी है। यदि वायु के निकलने के साथ गुदा में जलन होती हो तो सल्फ़र सर्वोत्तम औषधि है।

हिस्टीरिया

एक बार एक महिला मेरे दवाखाने आई तो जुकाम और कान में पीड़ा की शिकायत कर रही थी। मैंने उसके कान को नहीं देखा क्योंकि मैं सोचता था कि शायद अत्यधिक जुकाम के कारण कान बन्द हो गया है। लेकिन वह इस बात पर अड़ी हुई थी कि मैं उसका कान अवश्य देखूं। बहुत से मरीज बैठे थे और मुझे रोग के निदान पर पूरा विश्वास था इसलिए मैंने उसे नुस्खा लिख कर बाहर भेज दिया। दस मिनट बाद मेरा कम्पाउण्डर दौड़ा दौड़ा आया और बोला कि वह बाहर बेहोश होकर गिर पड़ी है। मैंने उसके मुंह पर पानी के छीटे मारे और उसकी देखभाल करता रहा। उसे होश आया तो वह उठकर चल दी। वह जो चाहती थी कि डाक्टर अर्थात् मैं उसे देखूं, वह हो गया तो उसे तसल्ली मिली। बाद में मुझे पता चला कि वह हिस्टीरिया की रोगी है।

सीधे सादे शब्दों में कहा जाय तो हिस्टीरिया की रोगी बहुधा अचेतन मन से ही किसी अपने उद्देश्य से शारीरिक लक्षणों का सहारा लेती है। हिस्टीरिया के इलाज में कठिनाई यह है कि पहले तो यह देखा जाय कि वास्तव में कोई शारीरिक रोग है या नहीं और फिर उस औरत के उद्देश्य का पता लगाया जाय कि वह क्यों बीमार होने का नाटक करती है। कई बार ऐसा भी होता है कि अन्य शारीरिक रोगों के साथ हिस्टीरिया हो जाता है।

अधिकतर मामलों में यह पुश्तैनी रोग है। एक बार एक १८ वर्षीया युवती अचानक बेहोश होकर गिर पड़ी। उसे एक युवक से

प्रेम था और जब भी उसका पिता उसे घर से बाहर जाने से मना कर देता था, जिससे कि वह उस युवक से न मिल पाए तो उसे दौरा पड़ जाता था। अन्त में पिता ने उसकी बात मान ली और उसी लड़के से उसकी शादी करदी। मजे की बात यह है कि लड़की की मां को भी हिस्टीरिया था। सम्भवतः बेटी ने मां से ही यह सीखा होगा कि अपने बाप से किसी प्रकार अपनी बात मनवाई जाए।

हिस्टीरिया के रोग का प्रकोप होने से बहुत पहले उसके विशिष्ट व्यक्तित्व को पहचाना जा सकता है। सामान्यतया वह ऐसा व्यक्ति होता है जो असंतुष्ट है, जिसे अपनी सामर्थ्य से विश्वास नहीं और जो अपनी योग्यता से बढ़ कर अपने को दिखाना चाहता है और जो लगातार दम्भ और नाटक करता रहता है। ऐसे व्यक्ति अपने विचारों की दुनिया में खोए रहते हैं और सम्मान, सहानुभूति या प्यार पाने के लिए जाने-अनजाने में कोई न कोई नाटक करते रहते हैं। इस रोग के शारीरिक लक्षण हैं निगलने में कठिनाई, किसी अंग का सुन्न हो जाना, अन्धापन और बहरापन।

एक लड़के को स्कूल में खेलते समय बाईं आँख पर हल्की सी चोट लग गई। अध्यापक उससे बार बार पूछने लगे : "क्या तुम्हें दिखाई देता है? सच?" उसकी माँ को तुरन्त बुलाया गया और लड़के को आँखों के डाक्टर के पास ले जाया गया। डाक्टर ने परीक्षा की तो उसे कोई बीमारी नहीं दिखाई पड़ी। लेकिन लड़का कहने लगा कि वह बाईं आँख से कुछ भी नहीं पढ़ सकता। डाक्टर ने अगले दिन उसे फिर बुलाया और उसकी आँखों में पुतली को फैलाने वाली दवाई डाल कर फिर परीक्षा की, लेकिन उसे किसी रोग का लक्षण दिखाई नहीं दिया। अन्त में डाक्टर ने उसकी दाईं आँख पर काला चश्मा लगा दिया और बच्चा अनजाने में बाईं आँख से सब कुछ पढ़ गया।

इस रोग के लक्षण हैं : ऐंठन, बोलने की शक्ति का अभाव, हकलाना और बहुधा बेहोशी के दौरे। कई बार ऐसा लगता है मानो मिरगी का दौरा पड़ा हो। लेकिन दौरे से पहले रोगी में भावावेश बहुत होता है और वह चाहे कितनी ही हिंसा पर क्यों न उतर आए अपने को कभी चोट नहीं पहुँचाती। और फिर, जब रोगी अकेली हो या सोई हुई हो उसे देखने वाले लोगों की जितनी अधिक संख्या होगी उसका दौरा उतना ही लम्बा हो जाएगा और उसकी प्रचण्डता भी बढ़ जाएगी। इसलिए जब भी मैं ऐसे किसी मरीज को देखने जाता हूँ तो परिवार के सब लोगों को कमरे से बाहर निकाल देता हूँ। उसके बाद नाक में स्पिरिट की दो तीन बूंदें डाल देनी चाहिए, जिनसे खुजली होती है और रोगिणी अपने नाक को फड़काती है।

एक बार उत्तरी भारत के अखबार बेचने वाले एक औरत को उठाकर मेरे दवाखाने में लाए जिसे दौरा पड़ा हुआ था। उस महिला को देखकर मैंने अपनी पत्नी से उसकी परीक्षा करने के लिए कहा। सभी पुरुषों को बाहर भेज कर मेरी पत्नी ने उससे आँखें खोलने के लिए कहा तो उसने आँखें खोल ली। उसके बाद उसने बताया कि लगभग एक वर्ष पहले उसका विवाह हुआ था, लेकिन उसके तुरन्त बाद उसका पति रोटी कमाने के लिए बम्बई चला गया। तभी से लगभग हर रोज दौरे पड़ने लगे हैं। वह चाहती थी कि वह मां बने और हमने उसके पति को समझाया जब वह गर्भिणी हुई तो दौरे अपने आप बन्द हो गए। आज वह दो बच्चों की मां है और उसे कोई कष्ट नहीं है।

मैंने देखा है कि इस रोग में **इग्नाशिया** सबसे अधिक उपयोगी है। इसकी कुछ खुराकें दे दी जाएँ तो रोगी आधे घण्टे में ठीक हो जाता है। अन्य दवाइयाँ हैं : **एसेफटिडा** (जब गले में कोई गोला सा फँसा मालूम होता हो); **काली फ़ॉस** (सभी प्रकार के स्नायु

विकारों में लाभकारी है); **मोसकस** (जहां बेहोशी के दौरे पड़ते हों); **टेरिनटूला हिस्पानिया** (यह औषधि एक विषैली मकड़ी से तैयार की जाती है; जिसके लक्षण हैं बेचैनी और हाथ-पैरों का कम्पन; रोगी लगातार चलना फिरना चाहता है और ऐसी बनावटी हँसी हँसता है मानो वह उसे रोक न पा रहा हो); **वेलीरियाना** (इसके टिंक्चर की कुछ बूदें पानी में डाल कर थोड़ी थोड़ी देर बाद पी जाएँ तो तुरंत आराम मिलता है)।

मुंह की बीमारियां

डाक्टर के पास जाएँ तो चाहे कोई भी रोग हो वह आपके मुंह की परीक्षा अवश्य करेगा। मुंह, जीभ और अन्दर की झिल्लियाँ शरीर के रोगों का पता देती हैं। चोट लगने, बहुत गर्म खाना खाने, दांतों को कुरेदने, सुपारी और शराब इन सब से मुंह के अन्दर की त्वचा को हानि पहुँचती है। जो लोग तेजाब या क्षार बनाने का काम करते हैं या जिनके काम में इन पदार्थों का प्रयोग होता है उन्हें भी मुंह के कई रोग हो जाते हैं।

कीटाणुओं, विषाणुओं, फफूंद और मुंह की सूजन आदि से भी कई रोग हो जाते हैं। सूजन से मुंह में अल्सर बन जाते हैं। भोजन में लोहे के तत्व की कमी हो तो मुंह के अन्दर पीलापन दिखाई देने लगता है। इसके लिए होम्योपैथी में **फ़ैरम फ़ास** और **फ़ैरम मैट** दी जाती है। विटामिन सी के अभाव से स्कर्वी नाम का रोग हो जाता है और मसूढ़ों से लहू निकलने लगता है।

जीभ देखने से क्या पता चलता है? यदि उस पर मैल जमी हुई हो, तो इसका मतलब है कि पेट ठीक नहीं है या कब्ज है। वह सूखी हो, तो यह ज्वर का लक्षण है और या इस बात का कि गुर्दे ठीक से काम नहीं कर रहे। यदि जीभ पर भूरे रंग के दाग हों, तो इसका

मतलब है कि कीटाणुओं या फफूंद का प्रकोप है। यदि जीभ दूध जैसी सफेद मल से भरी हुई हो, तो उसके लिए एंटीमनी क्रूड देनी चाहिए। जब जीभ पर दांतों के निशान पड़ जाएँ तो मर्क सोल ठीक रहती है। यदि जीभ पर पड़ी मैल में दरारें दिखाई दें तो नैट्रम म्योर और **नाइट्रिक एसिड** (जब जीभ कटी हुई हो) देनी चाहिए।

मुंह के कुछ और भी रोग हैं, जिनका होम्योपैथी में अच्छा इलाज है।

दुर्गन्धयुक्त सांस – इसके कारण व्यक्ति में हीन भावना उत्पन्न होती है और यदि कोई उससे कह दे कि तेरे मुंह से बदबू आ रही है तो वह बड़ी उलझन में पड़ जाता है। जब भी किसी रोगी को इस बात की अनुभूति कराई जाए कि उसकी सांस से दुर्गन्ध आ रही है तो वह बड़ा निराश हो जाता है। मुंह की बदबू का एक कारण बहुधा दांतों की गन्दगी है। कई बार दांतों में छिद्र हो जाते हैं जिनमें पड़े भोजन के कण सड़ा करते हैं। कई बार पाँयरिया या टॉंसिल में पड़ी पीप के कारण भी बदबू आती है। कई बार नासिकाओं में क।इं रोग हो जाए तो उससे भी मुंह में बदबू आने लगती है। जीभ की पिछली तरफ लगे भोजन के कणों में भी सड़ांध उत्पन्न हो जाती है। कई बार फेफड़े में फोड़ा हो जाए या श्वास नली में कोई फुन्सी आदि हो जाए तो उससे भी सांस में दुर्गन्ध आने लगती है। इसके लिए निम्न-लिखित औषधियां दी जाती हैं : **ओरम मेटेलीकम** (यौवनारंभ की अवस्था में लड़कियों के लिए); **बैप्टीशिया** (जब मुंह सूखा हो और उससे बदबू आती हो, विशेषकर बुखार या मोतीझारा में); **मर्क सोल** (जब सांस में दुर्गन्ध हो और मुंह में बहुत अधिक थूक बनता हो और जीभ गन्दी हो); **नाइट्रिक एसिड** (सांस में दुर्गन्ध और मसूढ़े फूले हुए और पिलपिले, जिनसे लहू निकलता हो)।

अन्य इलाज

(क) कीड़े मारने वाली दवाओं या नमकीन पानी से गरारे कीजिए।

(ख) खाना खाने के बाद नियमित रूप से दांतों को ब्रश से साफ कीजिए।

(ग) मुंह को सदा साफ सुथरा रखिए।

कई बार जीभ या मुंह के अन्य भागों पर सफेद रंग के चिकत्ते पड़ जाते हैं, जो सूजन के कारण होते हैं। इन्हें **ल्यूकोप्लाकिया** की संज्ञा दी जाती है। चालीस वर्ष से अधिक के पुरुषों में इसका प्रकोप दुगुने से भी अधिक होता है। बहुधा उन लोगों में यह रोग पाया जाता है जो बहुत सिगरेट बीड़ी पीते हों। धूम्रपान न करने वाले लोगों में यह रोग बहुत कम पाया जाता है। कई बार गन्दे दांतों या ठीक से न लगे नकली दांतों के कारण भी यह कष्ट हो जाता है। कुछ मामलों में उपदंश के कारण यह रोग होता है। सफेद रंग का कड़ा चिकत्ता जिसके कोने उभरे हुए होते हैं, यदि बिना इलाज के छोड़ दिया जाए, सूज सकता है और उसमें दरार भी पड़ सकती है। यह भी संभव है कि वह कैंसर का प्रारंभिक रूप हो। इसके लिए बड़ी सावधानीपूर्वक इलाज और परीक्षण की आवश्यकता है क्योंकि यह रोग कैंसर को जन्म दे सकता है। दांतों को ठीक-ठाक रखना चाहिए और तम्बाकू खाना बिल्कुल बन्द कर देना चाहिए। तम्बाकू पीने पर भी प्रतिबन्ध लगना चाहिए।

इस रोग में निम्नलिखित औषधियां लाभकारी होती हैं: **कांडुरेंगो** (इससे पाचन क्रिया सुधरती है, मुंह के कोनों में पड़ी दरारें जिनमें पीड़ा होती है, ठीक हो जाती हैं और उल्टी भी रुक जाती है, जिसमें लगातार जलन का अनुभव होता हो); **सैंपरवीवम टेक्टोरम** (जीभ का कैंसर या अल्सर; सारे मुंह में पीड़ा होती हो

और जीभ छिली हुई सी लगती हो उससे किसी भी समय लहू निकल सकता है; पीड़ा रात के समय बढ़ जाती हो)।

अत्यधिक थूक आने का कारण मुंह में ही छिपे तन्तुओं में निहित है। मुंह और उसके आस-पास के अंगों की सभी बीमारियों में जैसे सूजन, जीभ की सूजन, या कीड़ा लगे दांतों में थूक बहुत आता है। अत्यधिक सिगरेट पीने या पारे और आयोडीन जैसी कुछ दवाइयों, के प्रभाव से थूक अधिक आने लगता है। अधिक थूक के कारण आमाशय में अधिक हवा चली जाती है और पेट में वायू का विकार बढ़ जाती है या डकार आने लगती हैं।

इसकी दवाइयाँ हैं—**काली कार्ब** (लगातार मुंह में बहुत अधिक थूक का बनना, जिसके बाद स्वाद बिगड़ जाए; पायोरिया के लिए भी यह आदर्श दवाई है; मसूढ़े दाँतों से हट जाते हैं और पीप बहने लगती है) **मर्क सोल** (बहुत अधिक गाढ़ा और दुर्गन्धयुक्त थूक) रोगी का मुंह चाहे गीला रहता है, लेकिन उसे बहुत प्यास लगती है); **सिफ़लीनम** (अत्यधिक थूक; सोते में मुंह के कोनों से लार का टपकते रहना)।

पायरिया में दांतों में फँसे भोजन के कण उनके बीच पीप पैदा करने वाले कीटाणुओं से मिल जाते हैं तो मसूढ़ों के कोने सूज जाते हैं। मसूढ़े लाल हो जाते हैं और सूजन के बाद उनसे लहू बहने लगता है; अंततोगत्वा पीप आने लगती है। जब यह रोग पुराना पड़ जाए तो दांत हिल जाते हैं और गिर जाते हैं। इस रोग में भी अनायास ही थूक निकलता रहता है। मुंह में दुर्गन्ध होती है और स्वाद कड़वा, विशेष रूप से प्रातःकाल। इस रोग के लिए होम्योपैथी में निम्नलिखित दवाइयां हैं। **हेकला लावा** (ऐसी दशा के लिए सर्वोत्तम है जब गाढ़ी दुर्गन्धयुक्त पीप निकलती हो, मसूढ़े फूले हुए

और ढीले हों और मुंह में बहुत अधिक दुर्गन्ध हो) ; **मर्क सोल** (जब अत्यधिक दुर्गन्धयुक्त और लहू मिला थूक निकले; मसूढ़ों से लहू निकलने लगता है और वे पिलपिले हो जाते हैं। कारण यह भी हो सकता है कि पारे का विषैला प्रभाव हो या रोगी को कभी उपदंश हुआ हो; पीप गाढ़ी और पीली या हरी होती है) । औषधियों के अतिरिक्त निम्नलिखित उपाय करने चाहिए :

(क) नरम ब्रुश से दांत साफ कीजिए।

(ख) नमकीन पानी से गरारे कीजिए।

(ग) मुंह को सदा साफ रखिए।

(घ) भोजन भली भांति चबाइए।

(ड) यदि किसी दांत की आधी से अधिक जड़ नष्ट हो गई हो तो उसे अवश्य निकलवा दीजिए।

(च) उंगली से मसूढ़ों की मालिश कीजिए। उंगली को नीचे से ऊपर की ओर ले जाइए।

कई बार अपच हो जाने के कारण मुंह में छाले पड़ जाते हैं या **सूजन** हो जाती है। यह रोग विशेष रूप से बीस और पचास वर्ष के बीच की आयु की स्त्रियों को होता है। छाले अधिकतर होंठों के अन्दर और जीभ पर तथा मुंह की झिल्ली पर पड़ते हैं। छोटे छोटे छालों के आस-पास त्वचा का रंग लाल हो जाता है। सम्भव है भोजन चबाते समय पीड़ा होती हो, परन्तु थूक बहुत अधिक बनता है। इस रोग के कारण सामान्यतया भावनात्मक और पेट की खराबी होते हैं।

यदि क्रोध या शोक जैसे भावावेशों के कारण यह रोग हो जाए तो **इग्नीशिया** दी जाती है। (इसके लक्षण ये हैं कि घबड़ा जानेवाली नाजुक मिजाज और जल्दी गुस्सा करने वाली महिलाओं और हिस्टीरिया की रोगियों के लिए यह बड़ी अच्छी औषधि है, जिसमें चिन्ता और शोक लक्षण हों और जिन्हें खट्टे पदार्थ खाने की तीव्र

इच्छा होती हो। मुंह में खटास भी रहती हो, हर समय थूक भरा रहता हो और गालों के अन्दर दांतों से काटने के चिन्ह होते हों) यदि अपच के कारण ऐसे छाले हुए हों तो निम्नलिखित इलाज करना चाहिए। **बोरेक्स** (मुंह में फफूंद जैसी फुन्सियों या छालों का यही इलाज है; उन स्थानों को तनिक छू दिया जाय तो उनसे लहू निकलने लगता है या खाते समय रक्तस्राव होता है। मुंह में गर्मी और हाथ लगाने से पीड़ा का अनुभव होता है): **नक्स वॉमिका** (छोटे छोटे अल्सर जब थूक के साथ लहू मिला आता हो; जीभ का अगला भाग साफ होता है, लेकिन पिछले भाग पर पीले रंग की मैल जमी होती है। मसूढ़े सूजे होते हैं और उनसे लहू बहता है। जो लोग दिनभर बैठे रहते हैं और रात को देर तक जागते हैं, उन्हें कब्ज रहती है। रोगी को मतली आए या उल्टी हो जाए तो छालों से आराम मिलता है): **सल्फ्यूरिक एसिड** (मुंह में सूजन और जीभ पर मैल तथा उसका रंग लाल। भूख नहीं रहती और कब्ज दूर नहीं होती: सामान्यतया बहुत अधिक दुर्बलता का अनुभव होता है)।

छालों को देख कर यह पता चल जाता है कि कौनसी औषधि देनी चाहिए। जो छाले उभरे हुए हों और जिनके कोने उठे हुए तथा कठोर हों, उनके लिए **काली बाइक्रोम** देनी चाहिए। जिस छाले से लहू रिसता हो, उसके लिए **नाइट्रिक एसिड** उपयुक्त औषधि है।

जब बुखार हो तो रोगी का मुंह सूख जाता है। इसका कारण मुख्य रूप से यह है कि थूक पैदा करने वाली ग्रन्थियों में निष्क्रियता आ जाती है। अवसाद या थूक उत्पन्न करने वाले स्नायुओं के छोरों में निष्क्रयता आ जाए तो मुंह सूखने लगता है। कई बार बहुत अधिक दस्त लगने या मधु मेह के कारण मुंह सूखता है। कनपेड़ों या सोते समय मुंह खुला रखने से भी मुंह सूख जाता है।

यदि थूक की कमी हो, तो मुंह सूखा रहेगा और दांतोंके बीच

फँसे हुए भोजन के कणों में सड़ांध उत्पन्न हो जाएगी, जीभ पर मैल जम जाएगी और वह सूख जाएगी। इसके अतिरिक्त मुंह का स्वाद बहुत बिगड़ जाएगा । चबाने में कठिनाई के कारण भूख नहीं रहती और ठीक प्रकार से न चबाए गए भोजन के कारण अपच होने का भय रहता है। यदि यह रोग प्रचण्ड रूप धारण कर ले तो बोलने में कठिनाई होती है।

इसकी औषधियां हैं। **ब्रायोनिया** (मुंह का सूखा होना और अत्यधिक प्यास, जिसके लिए लम्बे अन्तराल पर बहुत अधिक पानी पीना पड़े और होंठ सूखे हुए तथा फटे हुए हों); **नैट्रम म्योर** (मुंह और होंठ सूखे, जीभ पर मैल और धारियां पड़ी हुई; जीभ का सुन्न हो जाना या उसमें सनसनाहट और यह अनुभूति कि जीभ पर कोई बाल अटक गया है ; निचले होंठ के बीच एक गहरी दरार); **नक्स मोस्काटा** (मुंह सूखा; जीभ तालु से चिपकी हुई; परन्तु पानी की प्यास नहीं लगती; थूक गाढ़ा और लसलसा जैसे रूई का बना हो; जीभ में शिथिलिता और रोगी को नींद-सी आना)।

नाक के विकार

यदि शरीर को एक कमरा मान लिया जाय तो नाक को उसका झरोखा कहेंगे । यह अंग जीवन को बनाए रखने के लिए अत्यधिक महत्वपूर्ण है और देखने में चाहे बहुत नर्म और थलथल लगे, यह वास्तव में काफी सशक्त अग होता है। इसे जरा ध्यान से देखिए तो इसका छोर नर्म है लेकिन ऊपर जाकर यह कठोर हो जाता है । यदि ऐसा न होता तो हल्कीसी चोट लगने से नाक टूट कर गिर सकता थी ।

नाक में सबसे भयंकर रोग यह हो सकता है कि यह बिल्कुल बन्द हो जाए और रोगी दम घुट कर मर जाए। लेकिन इसके अतिरिक्त और कई विकार हैं, जो अधिक प्रचण्ड तो नहीं, परन्तु कष्टप्रद अवश्य हैं ।

कई बार नाक की नौक पर फुन्सी हो जाती है। यदि उसमें कोई सुई चुभा दें तो कष्ट बढ़ जाता है। यदि फुन्सी लाल रंग की हो और हाथ लगाने से गर्म लगती हो, तो उसके लिए बैलाडोना और हैपर सल्फ़ अच्छी औषधियां हैं। बैलाडोना के लक्षणों में एक यह लक्षण भी है कि हल्का बुखार हो जाता है। हैपर सल्फ़र का लक्षण यह है कि रोगी नाजुक मिजाज होता है और इस बात को भी सहन नहीं कर सकता कि कोई उसे छुए। यदि फुन्सी बार बार निकलती हो तो पाइरोजेनियम देनी चाहिए।

कई बार बच्चे घर में किसी दरवाजे से टकरा जाए तो उनकी नाक को चोट पहुच जाती है और उससे लहू निकलने लगता है। सबसे पहली सावधानी तो यह बरतनी चाहिए कि एक्स-रे करवा कर यह पता चला लिया जाय कि कहीं हड्डी तो नहीं टूटी है। इस प्रकार की चोट के लिए आर्नीका सबसे अच्छी औषधि है, जो सभी प्रकार की चोटों और घावों में अच्छा काम करती है। जब चोट लगने के बाद नाक से लहू बहे तो हैमामैलिस देनी चाहिए और जब नाक की हड्डी को चोट पहुचे तो रूटा।

सामान्यतया यह माना जाता है कि शरीर में गर्मी का प्रकोप हो जाए तो नाक से नक्सीर फूट पड़ती है। वास्तव में ऐसी बात नहीं है। डिप्थीरिया, यक्षमा, उपदंश और कोढ़ जैसी बीमारियों और नाक में किसी चीज के घुसने से नक्सीर फूट सकती है। इसके अतिरिक्त गुर्दे की पुरानी सूजन, लहू की नाड़ियों के कड़ा हो जाने, अत्यधिक शारीरिक श्रम, बहुत गर्मी, तापमान में अचानक परिवर्तन, शरीर में लहू की कमी, खसरा और अन्य ज्वर, जिनमें दाने निकलते हों, सैलीसाइलेट और कुनीन जैसी दवाइयां अधिक मात्रा में लेने से भी नक्सीर फूटती है।

जब नक्सीर फूटे तो नाक पर ठण्डे पानी की पट्टी या बर्फ रख

दीजिए या पैराफीन में भिगोया कपड़ा। लेकिन जिन व्यक्तियों को ब्लड प्रेशर का रोग हो उन्हें तुरन्त नक्सीर बन्द नहीं करनी चाहिए, क्योंकि हो सकता है कि प्रकृति ने उनके ब्लड प्रेशर को कम करने के लिए नक्सीर का सहारा लिया हो। ऐसे रोगी को चाहिए कि मुंह से सांस ले और खून को थूकता रहे। नक्सीर के लिए होम्योपैथी में **फ़ेरम फ़ास–६ एक्स** और **फ़ास्फोरस** दी जाती है। अन्य औषधियां हैं–**अमोनिया कार्ब** (मुंह धोने के बाद); **कार्बो वेज** और **सिकेल कार** (शराबियों को होने वाली नक्सीर); **क्रोकस** और **लैकेसिस** (गर्मी के मौसम में); और **रस टॉक्स** (शारीरिक श्रम के बाद)।

कई लोगों की बन्द नाक को खोलने के लिए उसमें हर समय दवाई डालते रहने की आदत होती है। यद्यपि दवाई डालने से कुछ समय के लिए बन्द नाक खुल जाती है, लेकिन बीमारी जड़ से नहीं जाती। इसका कारण यह हो सकता है कि नासिका में कोई हड्डी बढ़ गई हो या रसौली हो गई हो। जब रोगी लेटता है तो उसे दम घुटता हुआ महसूस होता है। इसके लिए **अमोनियम कार्ब** उचित औषधि है (जब जुकाम के कारण नाक बन्द हुई हो; यह उन स्थूलकाय स्त्रियों के लिए अधिक उपयोगी है जो जल्दी ही थक जाती हैं); **कलकेरिया** और **थूजा** (इनका प्रयोग गांठों को पिघलाने में किया जाता है और इन्हीं के प्रयोग से नाक में हुई रसौली या बढ़ी हुई हड्डी ठीक हो जाती है); **सैम्ब्यूकस** तब देनी चाहिए जब लेटने पर कष्ट बढ़ जाय।

दांतों की बीमारियां

आमतौर पर जब तक दांत गिरने नहीं लगते, लोग उनकी ओर कोई ध्यान नहीं देते। तब जाकर आपको पता चलता है कि भोजन चबाने में कितना आनन्द आता था। जैसा कि आप समझते हैं, दांत कठोर हड्डियों जैसे नहीं हैं। उनके बीच गूदा-सा होता है और जब दांत में कोई छेद हो जाए तो बहुत बड़ी समस्या आ खड़ी होती है।

दांतों का महत्व इस कारण भी है कि डाक्टर उन्हें देख कर बहुत-से सामान्य विकारों का निदान कर सकता है। यदि दांत भिचे हुए हों तो डाक्टर यह सोचता है कि रोगी को या तो मिरगी का दौरा पड़ा है, टेटानस है या वह बहुत घबरा रहा है। यदि रोगी को दांत किटकिटाने की आदत है तो डाक्टर यह समझ लेता है कि उसके पेट में कीड़े हैं। यदि दांतों में दांते-से पड़े हों तो इसका मतलब यह है कि रोगी के माता-पिता में से किसी एक को उपदंश का रोग था। दांतों पर गन्दे धब्बे हों तो इसका मतलब है कि रोगी को पौष्टिक आहार नहीं मिलता ।

इनके अतिरिक्त दांतों के कुछ ऐसे विकार हैं जिनमें कोई पीड़ा या कष्ट नहीं होता, परन्तु उलझन अवश्य होती है। और यह भी हो सकता है कि रोगी में हीनभावना जागे। इस प्रकार का एक विकार दांतों का रंग मैला हो जाना है। इसके कई कारण हो सकते हैं, जैसे सफाई न होना, एण्टीबायटिक दवाओं का बहुत अधिक इस्तेमाल, पान खाने की आदत या लगातार सिगरेट पीते रहने की आदत, तम्बाकू खाना और विटामिन सी की कमी। होम्योपैथी में दातों के रंग के आधार पर दवाइया दी जाती हैं। उदाहरण के लिए यदि दात भूरे पड़ गए हों तो **क्लोरम** दी जाती है; यदि उनका रंग गहरा हो गया हो तो **फ्लोरिक एसिड** देनी चाहिए। दांत पीले हो जाएं तो उनके लिए **आयोडीन** और काले हों तो **थूजा** का प्रयोग करना चाहिए। लेकिन यदि दांत स्थायी रूप से पीले हो गए हों तो उसका होम्योपैथी में इलाज नहीं। ऐसे रोगियों के लिए सर्वोत्तम बात यही है कि समय समय पर दांतों के डाक्टरों से अपने दांत साफ कराते रहें ।

प्रसव पीड़ा के बाद सबसे उत्कट पीड़ा, यदि है तो वह है दांतों की। बच्चा हो या बूढ़ा, सभी को किसी न किसी समय दांत के दर्द का सामना करना पड़ता है। दांतों में पीड़ा के विभिन्न कारण हैं और

होम्योपैथ पीड़ा उत्पन्न करने वाले तत्वों का ध्यान रखते हुए दवाई देता है। साथ में इस बात का भी ध्यान रखना पड़ता है कि किस चीज से और किस समय पीड़ा बढ़ती है और कैसे और कब कम हो जाती है। उदाहरण के लिए, निम्नलिखित दवाइयां दांतों की पीड़ा के लिए दी जाती हैं : **एकोनाइट** (जहां ठण्डी चीज पीने से पीड़ा बढ़ती हो); **आर्नीका** (जब दांत कुरेदने से या नकली दांत ठीक फिट न होने के कारण पीड़ा हो); **काफ़िया** (जब उत्तेजना से पीड़ा बढ़े); **हाईपैरिकम** (जब दांत के नीचे का कोई स्नायु नंगा हो गया हो); **पलसाटिला** जब गर्म चीज पीने से पीड़ा बढ़े) यदि दांतों में कोई फोड़ा हो जाए तो लक्षणों के अनुसार **हैक्ला लावा, हैपर सल्फ़** और **सैलीशिया** दी जाती है।

दांत की पीड़ा का एक और कारण उनमें बना छेद होता है। दांतों के डाक्टर उस छेद में सीमेंट या चांदी भर देते हैं। परन्तु कई बार पीड़ा अत्यधिक होती है और उस समय दांतों का कोई डाक्टर आसपास नहीं होता। बड़ी-बूढ़ियां दुखते दांत में लौंग के तेल का फाहा लगा लिया करती थीं, लेकिन होम्योपैथी में इसके लिए **प्लांटागो—टिंक्चर** इस्तेमाल की जाती है। इसकी कुछ बूंदें रूई में भिगोकर वह फाहा दुखते दांत में लगा दिया जाता है तो उससे आराम मिलता है। यदि दांत में छेद बहुत बड़ा हो गया हो तो सम्भव है उसे निकलवाना पड़े। दांतों का डाक्टर ही बता सकता है कि उसे निकलवाया जाय या नहीं। दांत निकलवाने की बात है तो इस सन्दर्भ में एक और समस्या का ध्यान आ गया। कई बार दांत निकलवाने के बहुत समय बाद तक लहू रिसता रहता है और पीड़ा बनी रहती है। ऐसे मामलों में **आर्नीका** और **हाईपैरिकम** खाने को भी दी जाती है और दुखते दांत में लगाई भी जाती है।

दांतों की एक और समस्या का सामना बहुत से लोगों को करना पड़ता है और वह यह कि उनके दांत बड़े नाजुक होते हैं। कोई बीमारी

न होने पर भी उनमें हल्की हल्की पीड़ा होने लगती है, जो तनिक ठण्डा या गर्म पदार्थ खाने-पीने से शुरू हो जाती है। यह समस्या सामान्यतया उन लोगों को होती है जो बड़े जोर से ब्रुश से अपने दांत घिसते हैं। इससे दांतों के ऊपर की पालिश घिस जाती है और अन्दर का गूदा निकल आता है। यह कष्ट उन लोगों को भी होता है जो तम्बाकू खाते हैं या छिलकेदार पदार्थों का बना मंजन इस्तेमाल करते हैं। बाजार में बहुतसे ऐसे मंजन मिलते हैं जिनसे इस समस्या का समाधान हो सकता है। परन्तु होम्योपैथी रोग के लक्षणों के अनुसार इलाज करते हैं। उदाहरण के लिए, यदि हवा लगने से दांतों में पीड़ा हो तो **एकोनाइट** दी जाती है। ठण्डा पानी लगने से पीड़ा शुरू हो जाए तो **आर्सेनिक** और गर्मी से कष्ट बढ़ जाए तो **लैकेसिस**।)

बच्चों में दांत का दर्द बहुधा इस कारण होता है कि उनके दांत खुरने लगते हैं। यह समस्या इसलिए उत्पन्न होती है कि कीटाणु अपना कमाल दिखाते हैं और दांतों की पालिश छिल जाती है और नीचे का गूदा भी खुरने लगता है। जब कोई दांत खुर जाता है तो बच्चा उसका इस्तेमाल नहीं करता और इस कारण वहां पर भोजन के कारण और टारटार नामक पदार्थ जमा होने लगता है। दांतों की यह समस्या बोतल से दूध पीने वाले बच्चों में अधिक होती है, जिनकी माताएं रात को उन्हें दूध पिलाने के बाद उन्हें कुल्ला नहीं कराती। यदि माता या पिता में से किसी को उपदंश का रोग हुआ हो तो भी बच्चे के दांतों के खुरने की समस्या उत्पन्न हो जाती है।

इस अवस्था के लिए निम्नलिखित औषधियां दी जाती हैं: **फ़्लोरिक एसिड** (हड्डी का टूटना और दांतों का खुर जाना, विशेष रूप से ऊपरी जबड़े में); **क्रियोसोट** (बड़ी तेज़ी से दांतों का खुरना जब मसूढ़े फूल गए हों और उनसे लहू रिसता हो; इसका एक लक्षण यह भी है कि दांत निकलने में अत्यधिक पीड़ा का अनुभव होता है।

दांत निकलने के बाद से ही गलने शुरू हो जाते हैं। गहरे रंग के टूटते हुए दांत और मुह में कड़वा स्वाद भी एक प्रमुख लक्षण है)

कुछ निर्देश

(१) भोजन करने के बाद और अगले भोजन से पहले दांत बिल्कुल साफ रहने चाहिए।

(२) खाना खाने के बाद कुल्ला करना चाहिए और दांत साफ करने चाहिए।

(३) प्रातः और रात को सोते समय दांतों को ब्रुश से साफ करना चाहिए, लेकिन ब्रुश नीचे से ऊपर को फेरना चाहिए जिससे कि मसूढ़े न छिलें।

(४) मुँह से सांस नहीं लेना चाहिए।

(५) किसी सलाई, आलपीन या माचिस की तीली आदि से दांतों और मसूढ़ों को नहीं कुरेदना चाहिए।

(६) अत्यधिक गरम या बहुत ठण्डा पदार्थ नहीं खाना चाहिए।

उल्टी

एक बार एक मित्र अपनी पत्नी को इलाज के लिए लाया। उसके रोग का इतिहास बड़ा रोचक था – कुछ महीनों से उसे नियमित रूप से उल्टी होती थी। डाक्टरों ने यह सोचा कि शायद उसके पेट मे कीड़े हैं। कीड़े मारने की दवाई दी गई, लेकिन उससे कोई अन्तर नहीं पड़ा। फिर यह सन्देह हुआ कि कहीं उसे अपेंडीसाइटस तो नहीं। आपेरशन करके अपेंडिक्स निकाल दिया गया। लेकिन आपेरशन के दो दिन बाद ही उसे फिर उल्टी होने लगी। उसके लहू और मल मूत्र आदि की परीक्षा की गई तो किसी भी रोग के लक्षण दिखाई नहीं पड़े।

उसके बाद रोग के लक्षणों के अनुसार होम्योपैथिक औषधियां दी गई जिनसे उसका रोग कम तो हो गया लेकिन गया नहीं। एक

दिन वह अपने पति के बिना किसी अन्य व्यक्ति को लेकर आई जो उसके मायके का था। और उसके पास नियमित रूप से आया करता था। उसने यह बात अपने पति को कभी नहीं बताई और सम्भवतः अपने इस 'मित्र' के बारे में उसके मन में अपराध भावना थी। अपने पति को देखते ही उसे उल्टी होने लगती थी। यह भी पता चला कि उसके पति ने कम आयु में ही विवाह कर लिया था और पढ़ना लिखना छोड़ कर अपनी दुकान का काम देखने लगा था। उस पर काम का इतना बोझ था कि वह अपनी पत्नी और परिवार की उपेक्षा करने लगा था। सम्भवतः वह महिला अपने पति का ध्यान आकृष्ट करने के लिए और उसकी सहानुभूति पाने के लिए उल्टी करना शुरू कर देता थी। जब पति ने उसकी ओर अधिक ध्यान देना शुरू कर दिया तो उसके बाद से उल्टियां आनी बन्द हो गईं और फिर कभी नहीं आईं।

उल्टी के शारीरिक कारण तो होते हैं लेकिन कई बार, जब रोग का कोई और लक्षण न हो तो, मानसिक कारणों से भी उल्टी होने लगती है। बच्चे स्कूल नहीं जाना चाहते तो उल्टी करने लगते हैं और कई बार उन्हें ज़बरदस्ती दूध पिलाया जाए तो उसमें उल्टी करने लगते हैं या फटकारा जाए तब उन्हें कै होने लगती है।

इसकी औषधियां हैं : **एंटिम क्रूड** (जीभ पर सफेद रंग की मैल की तह : कुछ खाने या पीने के तुरन्त बाद या अधिक खा लेने के बाद कै और या गर्मी में अधिक गर्मी के कारण उल्टी); **कॉक्युलस** (जब विमान में यात्रा करते समय जी मचलाए); **इपीकाक** (कै होने से पहले जी बहुत खराब होता हो, लेकिन जीभ साफ होती हो); **नक्स वॉमिका** (अधिक खा लेने के बाद या बहुत शराब पीने के बाद वमन); **पेट्रोलियम** (विमान यात्रा में जी मिचलाना); **फ़ास्फ़ोरस** (ठण्डे पानी की अत्यधिक इच्छा लेकिन पानी पीने के बाद ज्यों ही वह पेट में

जाकर तनिक गर्म होता है, रोगी उल्टी कर देता है) ; **पलसाटिला** (प्यास बहुत कम, लेकिन उल्टी इतनी खट्टी कि दांत किटकिटाने लगते हैं(; **टबैकम** (समुद्री जहाज में यात्रा करते समय जी मतलाना) यदि बहुत अधिक उल्टियां आने लगें तो शरीर में पानी और विभिन्न प्रकार के क्षार तथा तमकीन तत्वों की कमी हो जाती है। इसके लिए पानी में थोड़ीसी चीनी घोल कर थोड़ी थोड़ी देर बाद लेनी चाहिए।

× × ×

घर में कई बार कोई ऐसी समस्या भी उत्पन्न हो सकती है जिसका समाधान इस अध्याय में नहीं बताया गया। यह बात ध्यान में रखनी चाहिए कि मानव का शरीर एक अत्यन्त जटिल यन्त्र के समान है जिसमें उत्पन्न होने वाले विकारों की संख्या अनगनित है। यदि कोई भी औषधि न ली जाए, तो भी शरीर स्वयं अपने को ठीक करने की क्षमता रखता है। यदि कोई रोग अचानक आ जाए और प्रचण्ड रूप धारण कर ले तो बहुत भारी दवाइयां देने से समस्या का समाधान नहीं होता, बल्कि वह और अधिक विकट हो सकती है। और इसी सन्दर्भ में होम्योपैथी सबसे अधिक अच्छी चिकित्सा पद्धति है। यद्यपि आप डाक्टर न हों, किसी हद तक आप स्वयं ही इसकी सहायता से कई रोगोंका उपचार कर सकते हैं। इस अध्याय में हमने बताया है कि कहां तक स्वयं उपचार करना सम्भव है। लेकिन यदि समस्या अधिक विकट हो जाए तो तुरन्त डाक्टर के पास जाइए।

होम्योपैथी में रोग निरोधक औषधियाँ



होम्योपैथी से अपना इलाज कीजिए
दुर्घटनाओं के लिए आवश्यक दवाइयां

औषधियां	मुख्य लक्षण	खुराक और पोटेंसी
१-आर्नीका	चोट और गुमटे और पीड़ा; विशेष रूप से शरीर में पीड़ा और नींद न आना, विशेष रूप से शारीरिक श्रम के बाद । आपरेशन से पहले और बाद में और प्रसव के बाद शीघ्र स्वास्थ्य लाभ के लिए। दुर्घटना में चोट लग जाए तो इसके लेने से गुमटे दूर हो जाते हैं।	२००, दिन में प्रति तीन घण्टे बाद कुछ दिनों तक
२-कैलेन्डूला	ऐसे घावों के लिए जहां किसी अंग की त्वचा साफ कट गई हो । आपरेशन और प्रसव के बाद पट्टी करने में भी इसका प्रयोग किया जा सकता है।	ऊपर लगाने के लिए, घाव के तुरन्त बाद । एक या दो दिन बाद पट्टी के साथ ।
३-कैंथारिस	जलने पर या कोई उबलता हुआ पदार्थ शरीर पर गिरने पर।	यदि इसका जलने के तुरन्त बाद लगा दिया जाय, तो छाले नहीं पड़ते यदि २००

		पोटेंसी में १५-१५ मिनट बाद चार-पांच खुराक दे दी जाएं तो जलन की पीड़ा घट जाती है और जले का घाव अधिक अच्छा होता है। जहां जलने पर छाले न पड़े हों, वहां अर्टीका यूरेन्स का प्रयोग करें।
४–फोरमाइका रूफा	चींटी के काटने से	३०, दिन में तीन बार।
५–हैमामैलिस	घाव के बाद रक्त स्राव होने पर	३०, प्रत्येक आधे घण्टे बाद।
६–हाइपेरिकम	स्नायुओं को पहुंची चोट के लिए	२००, चार-चार घंटे बाद कुछ दिनों तक।
७–लिडम पाल	किसी तीखी वस्तु की नोक आदि चुभने से हुआ घाव; टेटानिस को भी रोकती है और कीड़े मकोड़ों के काटने में भी दी जाती है।	२००, ३ घण्टे के अन्तराल से दो खुराकें।
८–रूटा ग्री.	मोच और आंखों में लगी चोट	३०, तीन-तीन घण्टे बाद कुछ दिनों तक।
९–स्टोफ़िसाग्रिया	मच्छरों के काटने से हुआ कष्ट	३०, प्रत्येक तीन घण्टे बाद।

१०—सिम्फाइटम	हड्डी का टूटना	३०, दस-पन्द्रह दिन तक प्रत्येक तीन घण्टे बाद । यदि हड्डियां जुड़ती न हों तो इसके साथ ही कलकेरिया फ़ास—६ एक्स और कलकेरिया फ़्लोर—६ एक्स भी देनी चाहिए।

रोगों के लिए औषधियां

१—एकोनाइट	जुकाम, खांसी और बुखार पसीना दबाने या ठण्डी हवा लगने से अचानक प्रारंभ हुआ हो तो शुरू में यह औषधि उत्तम है ।	३०, रोग दूर होन तक प्रत्येक तीन घण्टे बाद।
२—आर्सेनिक एल्ब	जब भोजन में कोई विषाक्त पदार्थ खा लिया गया हो; ऐसे बेचैन रोगियों के दस्तों या उल्टी में जिन्हें प्यास लगती हो और जो बराबर घूंट घूंट करके पानी पीते जाएं ।	३०, तीन-तीन घण्टे बाद जब तक आराम न आए ।
३—बैलाडोना	जब फोड़े प्रारम्भ हों या गला सूज जाए और उसका रग लाल और	३०, तीन-तोन घण्टे बाद जब तक आराम न आ जाए । इसके

	उसमें गर्मी का अनुभव हो। जब बुखार में नाड़ी के चलने के साथ सिर में पीड़ा होती हो और रोगी प्रकाश या शोर न सह सके तो यह उत्तम औषधि है।	साथ ही फ़ैरम फ़ास–६ एक्स भी देनी चाहिए।
४–ब्रायोनिया	खांसी, जुकाम और बुखार जिसमें कब्ज भी हो, रोगी ऊंघता रहे और प्यास बुझाने के लिए उसे बहुत अधिक पानी पीना पड़े।	३०, तीन-तीन घण्टे बाद जब तक आराम न आए।
५–कलकेरिया फ़ास	दांत निकालते समय होने वाली समस्याएं।	६–एक्स, तीन तीन गोलियां दिन में तीन बार। पांचवें महीने में दांत निकलने लगें उस समय; दिन में तीन गोलियां तीन बार एक वर्ष की आयु तक।
६–जेलसीमियम	जब जुकाम, खांसी और बुखार में रोगी बहुत ऊंघे और उसे प्यास न लगती हो।	३०, तीन-तीन घण्टे बाद जब तक आराम न आ जाए।
७–हैपर सल्फ़	बुखार जिसमें ठण्ड लगती हो; मवाद पड़ गया हो, विशेष रूप से	२००, तीन-तीन घण्टे बाद देने से फोड़ा पकने लगता है और १०००

	टॉंसिल में; गल्का और फोड़ों आदि के लिए गले में खुजली होती हो और रोगी हर समय खंखारता रहता है।	में देने से वह फूट जाता है। इसके साथ काली म्योर–८ एक्स भी देनी चाहिए।
८–मैग फ़ास	ऐंठन और रुक रुक कर होने वाली पीड़ा जैसे कई स्त्रियों को मासिक धर्म के दिनों में होती है।	६–एक्स। इसके पाउडर का एक चम्मच आधा प्याला पानी में घोल कर प्रति दस मिनट बाद एक घूंट पीजिए।
९–नैट्रम फ़ास	पेट में अम्लता और जिगर के विकार	६–एक्स, तीन-तीन घण्टे बाद जब तक आराम न आ जाए।
१०–नैट्रम सल्फ़	पेट में वायु	६–एक्स, तीन-तीन घण्टे बाद आराम आने तक
११–नक्स वामिका	अपच, कब्ज, पेट में वायु और अधिक खा लेने से आने वाले दस्त	३०, तीन-तीन घण्टे बाद आराम आने तक
१२–पलसोटिला	गरिष्ट और तले हुए पदार्थ खाने से अपच होने पर	३०, दो खुराकें तीन घण्टे के भीतर
१३–रस टॉक्स	जब शरीर और उसके जोड़ों में पीड़ा हो और भीगने के बाद जुकाम, खांसी या बुखार हो जाए।	२००, तीन-तीन घण्टे बाद आराम आने तक

अध्याय ८

वृद्धावस्था की बीमारियां

मानव शरीर ऐसा यंत्र है जिसका क्षय होता रहता है । ऐसा होना अनिवार्य ही है। आयु के बढ़ने के साथ-साथ शरीर की क्रियायें शिथिल पड़ जाती हैं, शरीर की क्षमता कम हो जाती है और कभी-कभी विकार उत्पन्न हो जाते हैं। वृद्धावस्था में शरीर के विकारों की प्रवृत्ति बढ़ जाती है और बहुत सी पुरानी बीमारियों के लक्षण उत्पन्न हो जाते हैं । इन सभी रोगों को हम वृद्धावस्था की बीमारियों के वर्ग में रखेंगे। इनसे बचना संभव नहीं है। इनमें सबसे साधारण बीमारी हृदय रोग है। जब हम कहते हैं कि कोई व्यक्ति प्राकृतिक मृत्यु को प्राप्त हुआ है तो हमारा तात्पर्य यह होता है कि उसका हृदय काम करते करते थक गया था और उसमें धड़कने की शक्ति क्षीण होते होते समाप्त हो गई।

लेकिन और भी कई प्रकार से शरीर का क्षय होता है। हड्डियों, गुर्दों, रक्त संचार, इन्द्रियों की शिथिलता, फेफड़ों के रोग और कई अन्य बीमारियां बूढ़ों को आ घेरती हैं। युवकों की समस्याओं के विपरीत, इनका अन्त तो जीवन के पटाक्षेप के साथ होता है । बहुत से व्यक्ति वृद्धावस्था को प्राप्त होने पर यह समझ लेते हैं कि कोई न कोई रोग होना तो अनिवार्य ही है और यह जानने का भी कष्ट नहीं करते कि उस रोग की कोई औषधि है या नहीं। वे सोचते हैं : 'अब मैं बूढ़ा हो गया हूं; जवान तो रहा नहीं। इस बीमारी का इलाज हो जाएगा तो कोई और लग जाएगी । और फिर अब मुझे जीना ही कितना है ?''

ऐसा सोचना गलत है । मानव की नियति कष्ट भोगते प्राण

त्यागना नहीं है और न यह है कि नाना प्रकार के रोग उसे घेर लें और वह उनका प्रतिरोध न कर सके। यदि किसी व्यक्ति ने अपने शरीर को संभाल कर रखा है तो वह स्वयं अपने अंत का निर्णायक बन सकता है। इस संदर्भ में होम्योपैथी मसीहा के समान है, विशेषकर वृद्धावस्था की बीमारियों में जो धीरे धीरे आती हैं, अधिक प्रचण्ड नहीं होती, लेकिन जिन्हें सहना भी आसान नहीं है। होम्योपैथी न केवल पीड़ा को दूर करती है, रोग को भी जड़ से उखाड़ फेंकती है और बूढ़ों के जीवन में आशा की किरण लाती है। इस अध्याय में हम उन दवाइयों की चर्चा करेंगे जो होम्मोपैथी में वृद्धावस्था के रोगों के लिए दी जाती हैं।

हृत्शूल

लातीनी भाषा में इसे एन्जाइना पैक्टोरिस की संज्ञा दी गई है जिसका अर्थ है: "मैं रोता हूं।" यह पीड़ा हृदय की मांस पेशी में उपयुक्त मात्रा में लहू न पहुंचने के कारण होती है। इसके लगभग तीन चौथाई रोगी पुरुष होते हैं। यह रोग सामान्यतया पचास और साठ साल की आयु के बीच होता है। पीड़ा छाती के बीचोंबीच होती है और श्रम करने या भावावेशों के कारण प्रारम्भ होती है और आराम करने से घटती है। इसलिए यह सम्भव है कि सम्भोग या कठोर शारीरिक श्रम के बाद इस पीड़ा का दौरा पड़ जाए। रोगी की परीक्षा करने से पता चल जाता है कि असली कारण क्या है।

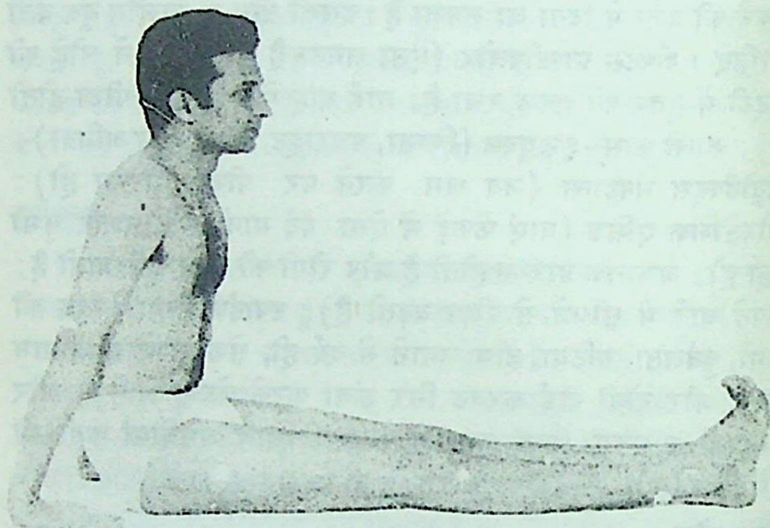
हृदय की यह पीड़ा कन्धों से लेकर कुहनियों तक, विशेष रूप से बाईं ओर अनुभव होती है। कई बार पीड़ा कलाई बल्कि उंगलियों तक जा पहुंचती है और कुछ मामलों में गर्दन, ऊपरी जबड़े और पीठ में भी अनुभव होती है, लेकिन पेट तक नहीं पहुंचती। जब दौरा पड़ा हो तो रोगी का चेहरा पीला पड़ जाता है। वह रुक जाता है और उसकी नाड़ी तथा रक्त चाप की ऊपरी सीमा बढ़ जाती है।

ऐसे रोगी के लिए जल्दबाजी और तनाव विष के समान हैं। उसे भोजन में घी आदि बिल्कुल बन्द कर देना चाहिए और भोजन करने के बाद कुछ समय तक आराम करना चाहिए। तम्बाकू का भी निषेध है। इसके लिए होम्योपैथी में निम्नलिखित औषधियां दी जाती हैं: **एमिल निट** का टिंक्चर हृदय की पीड़ा, दमा, और हृदय की गति रुकने की दशा में दिया जा सकता है। इसकी तीस से चालीस बूंदें देनी चाहिए। **कैक्टस ग्राण्डीफ़्लोर** (ऐसा लगता है जैसे किसी ने लोहे की मुट्ठी में हृदय को जकड़ रखा है; बाईं बांह में बहुत तीव्र पीड़ा होती है); **काली फ़ास–१२ एक्स** (चिन्ता, घबराहट, तनाव और अनिद्रा); **लैट्रोडैक्ट्स मैक्टान्स** (जब श्रम करने पर पीड़ा प्रारम्भ हो); **ओक्ज़ेलिक एसिड** (बाएं फेफड़े में ऐसा दर्द मानो कोई नश्तर चुभो रहा हो; अचानक प्रारम्भ होती है और रोगी की सांस फूल जाती है; अपने बारे में सोचने से पीड़ा बढ़ती है); **स्पाईजीलिया** (रक्त की कमी, दुर्बलता, गठिया, हाथ लगाने से दर्द हो, सेंक करने से आराम मिले, और रोगी दाईं करवट सिर ऊंचा करके लेटना चाहे); और **टबाकम–३** एक्स (जब हृदय में पीड़ा के साथ धमनियां कड़ी भी हो गई हों।)

संधि शोथ

गठिया जैसी यह बीमारी जोड़ों की हड्डियों में सूजन के कारण होती है और बूढ़ों में इस रोग के अनिवार्य रूप से होने की ऐसी धारणा प्रचलित है कि बहुतसे उपन्यासकार किसी व्यक्ति के बुढ़ापे के लक्षण के रूप में उसे इस रोग का रोगी बताना परम धर्म समझते हैं। इस रोग के बारे में बहुत सी किंवदंतियां और गलत धारणाएं प्रचलित हैं, जिसके कारण इसके स्वरूप को भलीभांति समझने में कठिनाई का अनुभव होता है। इन धारणाओं को जितनी जल्दी दूर कर दिया जाए उतना ही रोगी और डाक्टर दोनों के लिए अच्छा है।

घुटने के सन्धि शोथ के लिए व्यायाम



चित्र ८.१–घुटने की मांसपेशियों की सिकुड़न

पहली गलत धारणा तो यह है कि यह रोग केवल बूढ़ों को ही होता है। यह बात ठीक नहीं है क्योंकि यह रोग युवा लोगों को भी हो जाता है। ऐसे भी रोगी देखने में आए हैं, जो मां के पेट से निकलते ही इस रोग के लक्षणों से पीड़ित हैं। लेकिन गठिया जैसा वात के प्रकोप से उत्पन्न हुआ संधि शोथ सामान्यतया बीस और चालीस वर्ष की आयु के बीच होता है और इसमें सन्देह नहीं कि इसके रोगियों में अधिकतर बूढ़े होते हैं।

दूसरी गलत धारणा यह है कि यह असाध्य रोग है। यही कारण है कि इससे पीड़ित होने वाले पीड़ा प्रारम्भ होने या अन्य लक्षण दिखाई पड़ने से पहले डाक्टर के पास नहीं जाते। उसके बाद डाक्टर केवल पीड़ा हरने वाली दवाइयां देते हैं। अधिकतर लोगों को इस बात का ज्ञान नहीं है कि होम्योपैथी में इस रोग का इलाज है।

और फिर यह बात भी है कि यह धारणा बैठी हुई है कि इस रोग से आदमी चलने-फिरने योग्य नहीं रहता। इसमें सन्देह नहीं कि लगभग पच्चीस प्रतिशत रोगी नाकारा हो जाते हैं, लेकिन उनमें से अधिकतर ऐसे होते हैं जिन्होंने प्रारम्भ में चिकित्सा नहीं करवाई और रोग के बहुत बढ़ने के बाद ही डाक्टर के पास गए हों। उनमें से कुछ को तो इस बात का पता ही नहीं चला कि उन्हें रोग है, और जब यह बहुत बढ़ गया तो फिर उन्हें चिन्ता हुई। ऐसे लोगों के लिए—और अन्यों के लिए भी इस बीमारी के स्वरूप को समझ लेना लाभ-कारी होगा।

एक प्रकार का संधि शोथ वह है जो **वात के प्रकोप** से प्रारम्भ होता है। इसमें रोगी का वजन घटने लगता है और उसे मानसिक तथा शारीरिक थकान का अनुभव होता है। उसमें पहलकदमी का अभाव होता है और वह सारा दिन बैठे रहना चाहता है। यह भी हो सकता है कि कुछ महिलाओं को मासिक धर्म की अनियमितता हो जाए,

धड़कन बढ़ जाए, पसीना आए और पाण्डु रोग की दूसरी अवस्था प्रारम्भ हो जाए। इस रोग का सबसे पहला लक्षण यह होता है कि उंगलियों, विशेषकर मध्यमा और तृतीया के जोड़ों में सूजन आ जाती है। सम्भव है कि प्रारम्भ में पीड़ा न होती हो परन्तु कई बार पीड़ा इतनी प्रचण्ड होती है कि रोगी सो नहीं सकता। प्रारंभिक अवस्थाओं में रुक रुक कर हल्का बुखार भी रहने लगता है।

जोड़ों के आस-पास की झिल्लियां सनसे पहले प्रभावित होती हैं और उनमें सूजन आ जाती है। उसके बाद सूजन अन्दर की ओर पहुंचती है और मांस के विभिन्न अंग आपस में जुड़ जाते हैं और रोगी के लिए हिलना डुलना असम्भव हो जाता है।

जब रोग घर कर जाता है तो हाथ की छोटी मांस पेशियां सूखने लगती हैं और उनके सूखने के साथ उंगलियां विकृत हो जाती हैं। उसके बाद रोग भीतर से बाहर की ओर आता है और उंगलियों के जोड़ों से कलाइयों,·टखनों, कुहनियों, घुटनों और कन्धों तक पहुंचता है। उसके बाद इसका स्थान रीढ़ की हड्डी होती है। एक सामान्य लक्षण यह है कि कभी-कभी रोगी की हालत सुधर जाती है। उदाहरण के लिए, किसी महिला को पहले गर्भावस्था में रोग के लक्षण समाप्त हो गए हों, लेकिन प्रसूति के तुरन्त बाद फिर उभर आएं।

इस रोग का दूसरा मुख्य रूप हड्डियों की सूजन है जो सामान्यतया बड़े जोड़ों पर होती है और ह्रास होने लगता है। चोटों, पाचन-रोगों और स्नायु विकारों के कारण यह रोग हो सकता है और चुपके से रोगी को आ घेरता है। इसका सबसे पहला लक्षण यह होता है कि श्रम करने के बाद जोड़ कड़े हो जाते हैं और उनमें पीड़ा का अनुभव होता है। सबसे पहला प्रभाव उन जोड़ों पर पड़ता है, जिन पर दैनिक जीवन में अधिक बोझ पड़ता है। उसके बाद विभिन्न जोड़ों को नियंत्रित करने वाली मांस पेशियां सूखने लगती हैं। यह रोग मुख्यतया घुटनों,



चित्र ८.२
जंघाओं की मांसपेशियां सुदृढ़ करने के व्यायाम

नितम्ब के जोड़ों और कमर के निचले भाग में होता है। कहना न होगा कि यह रोग धीरे धीरे नाकारा कर देता है। पीड़ा भी बहुत होती है और कुछ समय बाद अंग भी विकृत हो जाते हैं।

अन्य पुराने रोगों के समान संधि शोथ में भोजन पर समुचित ध्यान देने की आवश्यकता है। ऐसे पदार्थ खाने चाहिए जिनमें विटामिन बी और सी. की पर्याप्त मात्रा हो और चावल, आलू, और तली हुई चीजें खानी बन्द कर देनी चाहिए जिससे कि वजन घट जाए। पीड़ा हरने वाली दवाइयां अधिक लम्बे समय तक नहीं लेनी चाहिए, क्योंकि उनसे लाभ की बजाय हानि भी हो सकती है। ऐलोपैथ कार्टीसोन देते हैं, जिससे पीड़ा दूर हो जाती है और सूजन रुक जाती है। परन्तु यदि लम्बे समय तक यह दवाई ली जाय तो मरीज का वजन बढ़ जाता है और उसकी समस्या अधिक जटिल हो जाती है। इस रोग को जड़ से उखाड़ फेंकने के लिए होम्योपैथी का सहारा लेना चाहिए, जिसमें रोगी के स्वभाव और शरीर के गठन के अनुसार दवाई का चुनाव किया जाता है। यदि सावधानीपूर्वक रोग के लक्षणों का अध्ययन किया जाय तो निश्चित रूप से लाभ होता है।

नीचे कुछ व्यायाम दिए जा रहे हैं जो इस रोग में विशेष रूप से लाभकारी हैं:

(१) पीठ के बल लेट जाइए और टांगें सीधी करके उन्हें बारी-बारी से ऊपर उठाइए।

(२) बैठे बैठे टांगें सीधी फैला लीजिए और अपने पैरों को दाएं से बाएं और बाएं से दाएं घुमाइए।

(३) घुटने सीधे करके बैठिए और पावों को अपनी ओर मोड़िए (चित्र ८.१)।

(४) चारपाई के कोने पर बैठ जाइए और अपनी टांगें सीधी करके फैला दीजिए (चित्र ८.२)।

इस रोग के इलाज के लिए आप घर में कुछ दवाइयां रख सकते हैं : **एप्सन फ़ास** (विशेष रूप से वात के प्रकोप से हुए संधि शोथ में लाभकारी है जिसमें उंगलियों के जोड़ सूज गए हों) ; **आरबूटस एंडियाक** में (जब कभी चमड़ी का रोग हो जाए और कभी जोड़ों में पीड़ा; बड़े जोड़ों में सूजन के लिए) ; **गेटिसबर्ग वाटर** (जोड़ों और मांस पेशियों का कड़ापन दूर करने के लिए कम पोटेंसी में) ; **ग्वायकम** (कन्धों, बाहों और हाथों में गठिया का दर्द जिसमें जोड़ कड़े हो गए हों और उनमें सूजन भी हो; दबाने और गर्मी से पीड़ा बढ़ती है) ; **लिडम पाल** (जोड़ों की पीड़ा नीचेसे प्रारम्भ होती है और ऊपर की ओर जाती है; गठिया में भी इसका प्रयोग किया जाता है) ; **स्टेलारिया** (पीठ में नीचे की ओर वात का दर्द : प्रातः काल अधिक कष्ट : साइनोवाइटस नामक रोग में भी लाभकारी है) ; **साइकॉटिक को** (यह अंतड़ियों की औषधि भी है और पुराने रोग में मध्यवर्ती औषधि के रूप में भी दी जाती है) ।

आर्नीका के तेल और जैतून के तेल में **गोल्थेरिया** का टिंक्चर मिला कर हल्की मालिश करने से भी लाभ होता है ।

श्वास नली की सूजन

श्वास नली की सूजन सामान्यतया बच्चों और बूढ़ों को हो जाती है। यह रोग प्रचण्ड रूप में सर्दी के मौसम में और वर्षा के दौरान प्रारम्भ होता है । जब नाक बन्द हो गयी हो और मुंह से सांस लेना पड़ रहा हो, तो इस रोग का दौरा पड़ने की अधिक आशंका होती है क्योंकि अशुद्ध और ठण्डी हवा सीधी श्वास नली में पहुंचती है ।

इस रोग का दौरा ठण्डी हवा लगने से अचानक हो जाता है । इसके साथ ही शरीर और विशेष रूप से छाती में पीड़ा और थकान का अनुभव होता है । बुखार सौ और एक सौ तीन डिग्री के बीच रहता

है । प्रारम्भ में खांसी सूखी होती है और ऐसा लगता है कि जैसे छाती अन्दर से छिल गई है, लेकिन बाद में बलगम निकलती है, जिसके साथ रक्त मिला हुआ भी हो सकता है। इस बीमारी का दौरा दस दिन तक रह सकता है और खांसी धीरे धीरे कम होती जाती है । प्रारम्भ में रोगी लगातार खांसता है, लेकिन बाद में रात के समय या प्रातःकाल खांसी आती है । यदि इस रोग को प्रचण्ड अवस्था में न रोका जाए तो यह पुराना बन जाता है । ऐसा पुराना श्वास नली का शोथ बूढ़ों में सामान्यतया देखा गया है जो तम्बाकू बहुत पीते हैं । यदि इसका इलाज न किया जाय तो निमोनिया या फेफड़ों का टी. बी. भी हो सकता है ।

होम्योपैथिक दवाइयों के साथ-साथ इस रोग से बचने के कुछ उपाय करने भी आवश्यक हैं । रोगी को ठण्डी हवा में नहीं जाना चाहिए और उसे नहाना नहीं चाहिए । जब उसे बुखार हो तो उसे गर्म पदार्थ जैसे, दूध, सूप और हल्की चाय पीने के लिए देनी चाहिए । उसे ठण्डी चीजें नहीं पीनी चाहिए, बल्कि पानी उबाल कर उसे कुनकुना करके पीना चाहिए । यदि उसकी नाक बन्द हो गयी हो तो उसे भाप लेनी चाहिए ।

होम्योपैथी में इस रोग के लिए निम्नलिखित दवाइयां दी जाती हैं : **एकोनाइट** (अचानक बड़े जोर की सूखी खांसी, जो ठण्डी हवा में जाने या पसीने के रुकने के कारण प्रारम्भ हुई हो । छाती में बराबर दबाव बना रहता है और बच्चा खांसते समय अपना गला पकड़ लेता है; यह दवा प्रारम्भ में देनी चाहिए जब खांसी शुरू ही हुई हो); **एण्टिम टार्ट** छाती में बलगम भरी हुई, लेकिन निकलती बहुत कम है; सांस लेने में कठिनाई और दम घुटता लगे; रोगी को खांसने और दाईं करवट लेटने से आराम मिलता है); **कॉस्टीकम** (खांसी जिसके साथ छाती में सूजन सी महसूस होती हो; बलगम बहुत कम निकलती हो और रोगी को उसे निगल जाना पड़ता है; खांसी शाम के

समय अधिक होती है); **काली बाइक्रोम** (ऐसी खांसी जिसमें धातु के दो टुकड़ों के टकराने जैसी आवाज़ होती हो; पीले रंग की बलगम, जो पतली और लम्बे धागों जैसी होती है); **र्‍यूमेक्स** (गले में चुनचुनाहट और इतनी भयंकर खांसी कि रोगी सो न सके। प्रारम्भ में पानी जैसी पतली और झाग वाली बलगम निकलती है, जो बाद में गाढ़ी और रस्सी जैसी हो जाती है); खांसी बोलने, ठण्डी हवा में सांस लेने और रात के समय बढ़ जाती है); **स्टिक्टा** (सूखी कर्कश आवाज़ वाली खांसी रात के समय और दिन में बलगम वाली खांसी; शाम के समय खांसी अधिक होती है और उस समय भी जब रोगी थका हुआ हो)।

कैंसर

१९ मई, १९७७ को एक महिला को खांसी और सांस फूलने की तकलीफ हुई। उसने घरेलू दवाएं लीं लेकिन खांसी बन्द नहीं हुई। दो महीने बाद उसने एक डाक्टर को दिखाया जिसने उसे यक्षमा रोकने वाली दवाइयां देनी शुरू की। लेकिन उस महिला का वजन घटता ही चला गया और किसी भी दवाई का कोई असर नहीं हुआ। सच तो यह है कि उसकी हालत बिगड़ गई और सांस फूलने का कष्ट इतना पड़ गया कि कुछ ही मिनट बोलने पर उसकी सांस फूल जाती थी और वह अत्यधिक थकान का अनुभव करती थी। बीस दिसम्बर, १९७७ को उस महिला की फेफड़े के कैंसर से मृत्यु हो गई और वह अपने पीछे दो क्वांरी लड़कियां छोड़ गई।

प्रत्येक देश में कैंसर का प्रकोप भिन्न-भिन्न मात्रा में है। भारत में प्रति वर्ष कैंसर के सात लाख रोगियों का पता चलता है। इसकी तुलना में अमरीका में १९७५ में तीन लाख ६५ हजार व्यक्ति कैंसर से मरे। अनुमान लगाया गया है कि अमरीका में प्रति दिन एक हजार

व्यक्ति कैंसर का शिकार होते हैं। दूसरे शब्दों में, प्रत्येक ९० सैकेंड बाद एक रोगी मरता है। आंकड़ों से पता चलता है कि आज जितने अमरीकन नागरिक जीवित हैं, उनमें से एक चौथाई, या प्रत्येक चौथे अमरीकन को, किसी न किसी प्रकार का कैंसर अवश्य होगा, और जिन लोगों को यह रोग होता है उनमें से प्रत्येक ६ में से एक मृत्यु को प्राप्त होता है।

आंकड़ों से पता चलता है कि कैंसर का इलाज ढूंढ़ने पर अपार धन के व्यय के बाद और तकनीकों में समुचित विकास के बाद भी कोई प्रगति नहीं हो पाई है। १९३६ में २५ प्रतिशत कैंसर के ऐसे रोगी थे जो रोग का निदान होने के बाद पांच वर्ष तक जीते थे। आज केवल इतना हुआ है कि उनका प्रतिशत बढ़कर पैंतीस हो गया है। इसका मतलब यह हुआ कि लगभग ४५ वर्ष में सिर्फ दस प्रतिशत की वृद्धि हो गई है, और यह भी मुख्य रूप से इस कारण हुई है कि अब इस रोग का प्रारंभिक अवस्था में पता लगा लिया जाता है और चीर-फाड़ या सर्जरी की क्रियाओं में अधिक सुधार आ गया है। इस कारण कैंसर के रोगियों के चीर-फाड़ करते समय मरने की आशंका पहले से कम हो गई है। कुछ प्रकार के कैंसर में, उदाहरण के लिए, ग्रन्थियों के कैंसर में, मरने वाले रोगियों की संख्या कम हो गई है। लेकिन अधिक गंभीर रूप में यह रोग हो जाए तो उसका इलाज आसान नहीं है। यही कारण है कि पिछले २५ वर्ष में फेफड़े और छातियों के कैंसर के रोगियों के पांच वर्ष से अधिक समय तक जीवित रहने के आंकड़ों में कोई परिवर्तन नहीं हुआ।

जब शरीर की कोशिकाएं या कोषाणु (सेल) अनियंत्रित रूप से बढ़ने लगते हैं तो कैंसर होता है। कोषाणुओं पर नियंत्रण रखने वाली प्रक्रिया के अवरुद्ध होने पर वे अंटसंट ढंग से बढ़ना शुरू कर देते हैं। उनकी वृद्धि की तुलना किसी उद्यान में उगने वाली खरपतवार से

की जा सकती है, जिसे समय समय पर उखाड़ा न जाए तो वह फैलने फूलने वाले पौधों को पनपने नहीं देगी और उन्हें खा जाएगी। यदि खरपतवार को हटाया न जाय तो सारा उद्यान ही नष्ट हो जाएगा।

कैंसर को कैसे पहचाना जा सकता है? इसके कई विशेष लक्षण हैं। लेकिन यह बात स्पष्ट रूपसे समझ लेनी चाहिए कि वे लक्षण खतरे की घण्टी नहीं हैं, बल्कि उन्हें पहचानने से रोग के निदान में सहायता मिलती है। कई बार मैं देखता हूं कि किसी रोगी को थोड़ा रक्त आ गया या खांसी पुरानी हो गई या कोई नया मस्सा अथवा मुहाँसा निकल आया तो वह चिंतित हो जाता है। अच्छा यही है कि चिन्ता न की जाय बल्कि किसी डाक्टर की सलाह ली जाय।

निम्नलिखित लक्षणों को विशेष रूप से ध्यान में रखना चाहिए: छातियां या शरीर के किसी अंग में बनने वाली गांठ जो बढ़ रही हो; लम्बे समय तक या असाधारण रूप से रक्त स्राव; कोई फोड़ा या अल्सर जो ठीक न हो; लगातार आवाज़ का बैठ जाना; लगातार खांसी जो दो सप्ताह से अधिक समय तक चले, विशेष रूप से तम्बाकू पीने वालों में; किसी मस्से या मुहासे के रूप में परिवर्तन। उसमें खुजली होने लगती है, लहू रिसने लगता है या वह फैलने लगता है और बड़ा हो जाता है। एक लक्षण यह भी है कि पाखाने की आदत बदल जाती है, विशेष रूप से कभी घोर कब्ज हो जाता है और कभी दस्त लग जाते हैं।

रोगी को लगातार सावधान रहना चाहिए क्योंकि यदि कैंसर का समय पर निदान हो जाए तो मरने वालों की संख्या में पचास प्रतिशत तक की कमी की जा सकती है। कैंसर क्यों होता है, इसके असंख्य कारण बताए जाते हैं। दिन-प्रति दिन नए नए सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया जाता है और पुरानों को तिलांजलि दे दी जाती है। लेकिन कैंसर के मुख्य और गौण कारणों में सभी सहमत हैं।

(१) **मुख्य कारण** – आजकल इस सिद्धान्त पर विश्वास किया जा रहा है कि कैंसर किसी वायरस या विषाणु के कारण होता है। विषाणु वही भूमिका निभाते हैं, जो तूफान के बाद लूट-पाट करने वाले। लोग तूफान की आशंका से अपने घर बार छोड़ कर भाग जाते हैं और पुलिस अभी आई नहीं होती। उसी समय ये लुटेरे अपना कमाल दिखाते हैं। कैंसर के विषाणु की भी यही भूमिका है। जब शरीर के ऊतक टूट जाते हैं तो रखवाला नहीं रहता और उसी समय वायरस का प्रकोप प्रारम्भ होता है। कुछ वैज्ञानिकों का विश्वास है कि कुछ गौण कारण ऐसे हैं जो इस विषाणु के लिए जमीन तैयार करते हैं।

गौण कारण – अनुमान लगाया गया है कि ९० प्रतिशत कैंसर के रोगियों को यह रोग गौण कारणों से होता है। और वे हैं कि हम क्या करते हैं, क्या खाते-पीते हैं, तम्बाकू पीते हैं या नहीं और हमारा रहन-सहन का ढंग क्या है।

(क) **तम्बाकू** –– यदि हम लोगों से सिगरेट छुड़ा सकें तो प्रति वर्ष ७० से ८० हजार व्यक्तियों की जान बचाई जा सकती है। सिगरेट पीने वालों को तम्बाकू न पीने वालों की तुलना में फेफड़े के कैंसर से मरने की ६ गुणा अधिक आशंका होती है। जो व्यक्ति एक दिन में बीस से अधिक सिगरेट पीता है, उसे फेफड़े का कैंसर होने की आशंका ९० गुना होती है। दो वर्ष पहले ९० हजार व्यक्तियों को फेफड़े का कैंसर हुआ और उनमें से ८० हजार मर गए। यह संख्या कैंसर से मरने वालों की कुल संख्या का २२ प्रतिशत है। जिन दस रोगियों को फेफड़े का कैंसर होता है उनमें से केवल एक पांच वर्ष तक जी सकता है। तम्बाकू पीने का प्रभाव केवल फेफड़ों पर ही नहीं पड़ता। सिगरेट के धुएँ में बारह प्रकार के हाइड्रो कार्बन अलग अलग मात्रा में होते हैं और यह खतरनाक सम्मिश्रण बड़ी आसानी से कैंसर को जन्म दे सकता है।

तम्बाकू न पीने वालों की तुलना में तम्बाकू पीने वालों को मुंह का कैंसर तीन से दस गुना तक होता है और मूत्राशय का कैंसर दो गुना। केवल इतना ही नहीं है, सिगरेट के धुएँ की कुछ रसायनों पर ऐसी प्रतिक्रिया होती है कि उसके परिणाम स्वरूप कैंसर उत्पन्न करने वाले तत्वों का अधिक प्रतिशत होता है। इसका मतलब यह है कि अलग अलग खतरों की बजाय मिला-जुला खतरा अधिक भीषण है। उदाहरण के लिए, यदि आप शराब भी डट कर पीते हैं तो न पीने वालों की तुलना में आपको मुंह का कैंसर होने की दो गुनी आशंका है। परन्तु यदि आप सिगरेट और शराब दोनों बहुत मात्रा में लेते हैं तो यह आशंका बढ़ कर पन्द्रह गुना हो जाती है।

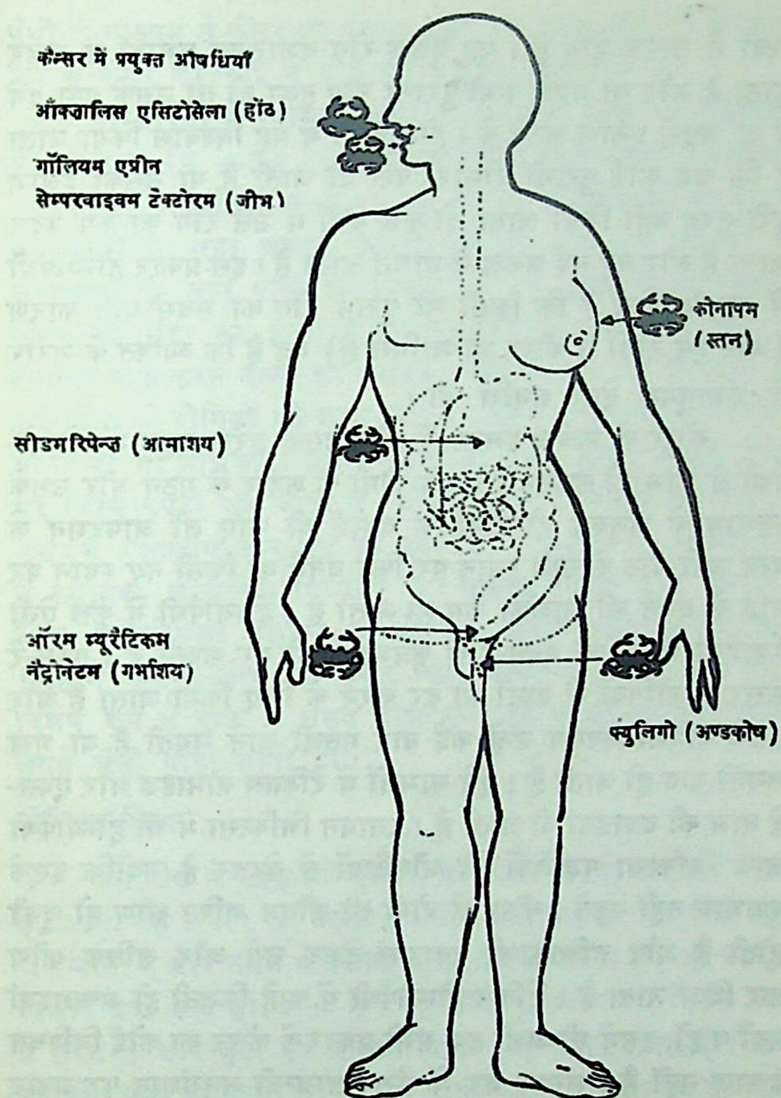
सीमेंट की चादरें बनाने के कारखानों में काम करने वाले व्यक्तियों को फेफड़े का कैंसर होने की अधिक आशंका होती है, परन्तु यदि कोई ऐसा व्यक्ति तम्बाकू भी बहुत पीता है तो यह आशंका बानवे गुना हो जाती है। सिगरेट बनाने वाले उनका विज्ञापन देने पर अपार धन व्यय करते हैं लेकिन लोगों को सिगरेट पीने के खतरों से अवगत कराने के लिए बहुत कम धन खर्च किया जाता है। सभी जानते हैं कि सिगरेट पीना खतरे से खाली नहीं, लेकिन सब पीते ही जाते हैं। एक व्यक्ति ने जो कभी सिगरेट बुझने नहीं देता था, कहा था; "पत्नी तो स्त्री मात्र है परन्तु सिगरेट के क्या कहने, पी कर मजा आ जाता है।"

(ख) **भोजन :** वैज्ञानिकों को विश्वास है कि कुछ प्रकार का कैंसर हमारे खाद्य पदार्थों के कारण होता है। चर्बी, चीनी, और बहुत साफ किए हुए खाद्य पदार्थ पेट और छातियों के कैंसर के लिए उत्तरदायी हैं। भारत में जिन पुरुषों को यह रोग होता है, उनमें से एक-तिहाई मुंह के कैंसर से पीड़ित होते हैं। जापान में आमाशय का कैंसर सबसे अधिक होता है और अमरीका में अंतड़ियों

का। इसलिए यह बात अवश्य समझ लेनी चाहिए कि मानव का शरीर कोई यंत्र नहीं है जो नष्ट न होने वाले पदार्थ से बना हो। यह बड़ा नाजुक यंत्र है और इसलिए इसको बनाए रखने के लिए उचित प्रकार का भोजन आवश्यक है। घी आदि कम खाइए, फल और सब्जियां अधिक, और बहुत साफ किए हुए महीन अनाज भी कम खाइए।

(ग) **बनावटी रसायन:** बनावटी रसायनों को भी ध्यान में रखना पड़ेगा। दिन प्रति दिन कोई न कोई ऐसा रसायन या तत्व होता है, जो खाद्य पदार्थों में मिलाया जाता है। कुछ दवाइयां और रसायन पदार्थ भी ऐसे हैं जिनसे कैंसर हो सकता है। कोई नई दवाई विज्ञान का नया आविष्कार समझ कर बाजार में बिकने लगती है और कुछ वर्षों बाद पता चलता है कि उससे कैंसर हो जाता है। इसके उदाहरण हैं, बनावटी चीनी, अर्थात सेक्रीन और गर्भनिरोधक गोलियां।

यह कहना तो अतिशयोक्ति होगी कि चिकित्सा की किसी एक प्रणाली में कैंसर का शत प्रति शत निश्चित इलाज है। लेकिन लोगों के दिमाग में यह बात बैठी हुई है कि कैंसर का कोई इलाज नहीं और इसलिए कभी किसी देसी चिकित्सा पद्धति से कैंसर का कोई रोगी स्वास्थ्य लाभ करता है, तो लोग उस पर भी विश्वास करने के लिए तैयार नहीं होते। होम्योपैथी की भी यही दशा है। यद्यपि होम्योपैथी में यह दावा कभी नहीं किया जाता कि यह सभी प्रकार के कैंसर का इलाज कर सकती है, यह बात निश्चित है कि कैंसर के इलाज में होम्योपैथी महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। सबसे पहले तो हम इस बात पर विचार करेंगे कि पुराने रोगों में होम्योपैथी का क्या दर्शन है, जिनमें कैंसर भी शामिल है। होम्योपैथी में यह विश्वास किया जाता है कि सभी पुराने रोग शरीर में छिपे हुए अस्वस्थ


कैन्सर में प्रयुक्त औषधियाँ
आँक्जालिस एसिटोसेला (होंठ)
गॉलियम एप्रीन
सेम्परवाइवम टेक्टोरम (जीभ)
कोनायम
(स्तन)
सीडमरिपेन्स (आमाशय)
ऑरम म्यूरैटिकम
नैट्रोनेटम (गर्भाशय)
फ्युलिगो (अण्डकोष)

चित्र ८·३

तत्वों से उत्पन्न होते हैं। यह प्रछन्न रोग वंशानुगत प्रभावों से बाहर आता है और या पहले कभी पुराना रोग हुआ हो तो उसके दबा देने से या अपूर्ण इलाज करने से। होम्योपैथी में यह विश्वास किया जाता है कि जब कोई पुरानी बीमारी दबा दी जाती है या उसका इलाज पूरी तरह नहीं किया जाता तो कुछ वर्षों में उस रोग का रूप बदल जाता है और वह नई शकल में सामने आता है। इस प्रकार होम्योपैथी में यह विश्वास है कि किसी भी पुराने रोग का सबसे बड़ा कारण (और इन रोगों में कैंसर भी शामिल है) यह है कि व्यक्ति के शरीर में वंशानुगत ऐसी प्रवृत्ति थी।

कैंसर के प्रत्येक इलाज में और उसके हरेक पहलू में होम्यो-पैथी से लाभ हो सकता है। यदि रोगी के शरीर के गठन और उसके स्वभाव के अनुरूप होम्योपैथिक दवाई दी जाए तो आपरेशन के बाद उसी गांठ के उसी स्थान पर फिर बनने या किसी नए स्थान पर गांठ के बनने की आशंका कम हो जाती है। होम्योपैथी में कुछ ऐसी दवाइयां भी हैं जो एक्स-रे के कुप्रभावों को दूर करती हैं। एक्स-रे कैंसर के रोगियों के कष्टों को दूर करने के लिए किया जाता है और इसके परिणामस्वरूप उन्हें कई बार मतली आने लगती है या भूख लगनी बन्द हो जाती है। ऐसे मामलों में रेडियम ब्रोमाइड और एक्स-रे नाम की दवाइयां दी जाती हैं। रसायन चिकित्सा में भी होम्योपैथी अन्य चिकित्सा पद्धतियों की औषधियों से बेहतर है, क्योंकि इसके कुप्रभाव नहीं पड़ते। कैंसर के रोगी की जीवन शक्ति क्षीण हो चुकी होती है और शक्तिशाली दवाइयां देकर उसे और अधिक क्षीण कर दिया जाता है। लेकिन होम्योपैथी में चाहे कितनी ही अच्छाइयां क्यों न हों, इसमें भी अभी तक सभी प्रकार के कैंसर का कोई निश्चित इलाज नहीं है। संसार भर में कैंसर सम्बन्धी अनुसंधान पर अपार धन का व्यय किया जा रहा है। यदि उसका अंश-मात्र भी होम्यो-

पैथी के माध्यम से कैंसर का इलाज ढूंढ़ने पर किया जाय तो निश्चित रूप से कैंसर का कोई न कोई इलाज मिल जाएगा।

होम्योपैथी में विभिन्न प्रकार के कैंसर के लिए कई दवाइयां हैं (देखिए चि ८.३) : **ओरम मूरेटिकम नेट्रोनाटकम** (गर्भाशय का कैंसर; **कार्सीनोसिन–३०** (यह कैंसरग्रस्त झिल्लियों से तैयार की जाती है, बड़ा अच्छा काम करती है और उन मामलों में लाभकारी है जहां कभी कैंसर हुआ हो); **यूफ़ोरबियम** (इससे कैंसर की पीड़ा कम होती है); **फ्यूलीगो** (अण्डकोष का कैंसर; चिमनी साफ करने वालों का कैंसर) ; **गेलियम एपारीन** के प्रयोग से कई कैंसर के रोगियों को लाभ हुआ है। इसका जीभ पर फोड़े जैसी गांठों पर भी लाभकारी प्रभाव पड़ता है; इससे अल्सर वाली त्वचा पर स्वस्थ पपड़ी जम जाती है। **होआंग नान** (ग्रन्थियों का कैंसर; कैंसर में रक्तस्राव और मुंह की बदबू को दूर करती है; स्वस्थ होने में सहायक, शारीरिक क्रियाओं को सशक्त बनाती है); **ओक्सालिस एसिटोसेला** (होंठों का कैंसर); **सेम्परवाइवियम टैक्टोरम** (मुंह में कैंसर; जीभ का कैंसर जहां अल्सर से लहू रिसता हो; विशेष रूप से रात के समय जीभ सूजी हुई लगती हो और चाकू लगने जैसी पीड़ा होती हो।)

मोतिया बिन्द

इस रोग में आंख की पुतली, जो साधारणतया पारदर्शी होती है, अपनी यह क्षमता खो बैठती है। धीरे धीरे उस पर मैल जैसी तह जम जाती है और उसमें से प्रकाश आना बन्द हो जाता है। उस कारण दिखाई देना बन्द हो जाता है। यह रोग वृद्धावस्था में विशेष रूप से होता है और बूढ़ों का मोतियाबिन्द बड़ा कठोर होता है। जब यह रोग युवा व्यक्तियों को हो, जो सामान्यतया यौवनारम्भ से पहले

होता है, तो मोतियाबिन्द नर्म होता है और वहुधा चोट लगने के कारण होता है। वृद्धावस्था में मोतियाबिन्द कोई जटिल समस्या नहीं। वंशानुगत तत्वों और पौष्टिक आहार के अभाव के कारण यह रोग होने की प्रवृत्ति होती है। यदि आपकी आयु अधिक हो गई है और धुंधला दिखाई देने लगा है या तेज रोशनी में किसी चीज को देखने के लिए आँखों पर हाथ रखना पड़ता है तो आँखों के डाक्टर को दिखाइए। हो सकता है मोतिया उतर रहा हो।

मोतियाबिन्द के इलाज की प्रभावोत्पादकता इस बात पर निर्भर करती है कि वह रोग किस प्रकार का है और किस समय उसका निदान हुआ। यदि किसी मधुमेह के रोगी को मोतिया उतर आए तो होम्योपैथी उसकी अधिक सहायता नहीं कर सकती परन्तु वृद्धावस्था के कारण उतरने वाले मोतिया बिन्द के लिए इसमें अच्छी अच्छी दवाइयां हैं। होम्योपैथी की औषधियों के साथ-साथ कई बार चश्मा लगवाना भी आवश्यक हो सकता है और यहां इस बात का उल्लेख भी अवश्य कर देना चाहिए कि इलाज में कुछ समय लगता है। होम्योपैथी में खाने की दवाइयां भी हैं और आँख में डालने की भी, जिससे मोतिया दूर हो जाता है।

निम्नलिखित औषधियां इस रोग में दी जाती हैं: **कास्टीकम** (ऐसे मोतियाबिन्द में लाभकारी है, जहां आँखों के सामने चिन्गारियां और काले धब्बे दिखाई देते हों। यह उन मामलों में भी उपयोगी है जहां ठण्ड लगने के बाद आँख की माँसपेशियाँ मारी गई हों); **फ़ास्फ़ोरस** (रोगीको ऐसा लगता है कि हर चीज पर कोई धुंध या धूल छाई हुई है, जिसके कारण धुंधला दिखाई दे रहा है। वह प्रकाश की ओर देख नहीं सकता और अपने हाथ आँख पर रख ले तो उसे अच्छा दिखाई देता है); **सैकारम ओफ़ीसियनेल** (यह दवाई गन्ने की चीनी से तैयार की जाती है, जिसमें मिलाकर होम्योपैथिक दवाई

दी जाती है। यह विश्वास किया जाता है कि चीनी रोगाणुओं को नष्ट करती है और इसी से घाव भली भाँति भर जाते हैं। यह औषधि बूढ़े लोगों के मोतियाविन्द में लाभकारी है।); **सिकेल कॉर** (बुढ़ापे में और विशेषरूप से दुबली पतली वृद्धाओं के लिए, जिनकी चमड़ी पर झुर्रियाँ पड़ी हुई हों, उस अवस्था में लाभकारी है जब मोतिया प्रारंभ हुआ हो। इसका एक लक्षण यह है कि रोगी को गर्मी से आराम मिलता है); **साइलीशिया** (जो लोग दफ्तरों में काम करते हैं, उनके मोतियाबिंद के लिए यह विशिष्ट दवाई है। रोगी बहुधा यह बताते हैं कि उन्हें टीके लगवाने से कोई कष्ट हुआ था)। बायोकेमिक दवाइयाँ हैं; **कलकेरिया फ़्लोर–६ एक्स** : इसे कुछ समय तक दिन में तीन बार लेना चाहिए। इसके इस्तेमाल से प्रारम्भ में ही मोतिया ठीक हो जाता है। एक और दवाई है **सनेरिया सुकस मैरीटीमा** जिसकी एक-एक बूंद दो बार दोनों आंखों में डाल लेनी चाहिए।

बहरापन

किसी बूढ़े को सुनाई न देता हो तो उसे देख कर किसी को आश्चर्य नहीं होता। हम सभी बहरेपन को वृद्धावस्था का एक प्राकृतिक अंग मानते हैं। लेकिन पूर्णतया बहरा होने से पहले इलाज करवा लिया जाय तो इस रोग को बढ़ने से रोका जा सकता है।

बहरापन तीन प्रकार का होता है : (१) अनुबोधात्मक; (२) संचलनशील; और (३) मिश्रित। सामान्यतया बातचीत करते लोगों की आवाज़ बीस से तीस फुट तक सुनी जा सकती है। यह इस बात पर निर्भर करता है कि कमरे में अधिक शोर तो नहीं हो रहा। पहले प्रकार का बहरापन चोट लगने, कोई फोड़ा-फुन्सी होने या पीप आदि पड़ने से हो सकता है। बहरापन मान-

सिक भी होता है अर्थात् जहाँ कोई व्यक्ति हिस्टीरिया स पीड़ित हो या न सुनने का नाटक करता हो। कई स्त्रियों में जिन्हें हिस्टीरिया हो, बहरापन आ जाता है, लेकिन उनका मुख्य उद्देश्य तो लोगों का ध्यान अपनी ओर खींचना होता है। न सुनने का नाटक करने वाले कई बूढ़े या बच्चे होते हैं जो जिस बात को पसन्द नहीं करते उसे सुनने से इन्कार कर देते हैं।

इसके लिए निम्नलिखित औषधियाँ दी जाती हैं: **चेनोपोडियम** (सुनने में कठिनाई; व्यक्तियों की आवाज़ न सुने, लेकिन दूसरी आवाज़ें तुरन्त सुन ले, जैसे दूर से निकलती हुई गाड़ियों की और अन्य आवाज़ें सुन सके); **काली म्योर** (जुकाम के कारण बहरापन); **मर्क डलकस** (ऐसा बहरापन जो कान की नली बन्द होने से हो); **नैट्रम सेलीसाइलिकम** (जब कान की हड्डी चेतनाशून्य हो जाए आवाज़ को भीतर तक न पहुँचा सके); **नाइट्रिक एसिड** (रोगी शोर शराबे में अधिक अच्छा सुन सकता हो)।

मधुमेह

वृद्धावस्था में एक सबसे कष्टप्रद रोग मधुमेह होता है। अधिकतर रोगियों को इतना अधिक कष्ट नहीं होता कि वे चल फिर न सकें लेकिन मधुमेह—और इस विषय पर बहुत सी पुस्तकें मिलेंगी—के इलाज के लिए नाना प्रकार की गोलियाँ खानी पड़ती हैं और इन्सुलीन के टीके लेने पड़ते हैं। कई लोग यह प्रश्न पूछते हैं कि क्या होम्योपैथी में मधुमेह का कोई इलाज है? (चित्र ८.४)

इसका उत्तर यह है कि यह इस बात पर निर्भर है कि रोग का स्वरूप क्या है। मधुमेह में कार्बोहाइड्रेट (अर्थात् चीनी वाले तत्व) और प्रोटीन तथा घी आदि पचाने में कठिनाई होती है। इसका सबसे बड़ा लक्षण यह होता है कि रक्त में चीनी मिलती है और उसके बाद

मूत्र के रास्ते निकलती है। और इसके साथ ही पेन्क्रियाज़ नाम की ग्रन्थि से निकलने वाले स्राव, अर्थात् इन्सुलीन, का अभाव हो जाता है।

एक स्वस्थ शरीर में कार्वोहाइड्रेट, चर्बी और प्रोटीन वाले खाद्य पदार्थ पच कर ग्लुकोज़ और आक्साइड्स का रूप धारण कर लेते हैं, जो शरीर की ऊर्जा की आवश्यकताएँ पूरी करते हैं। परन्तु जिस रोगी को मधुमेह हो, उसके शरीर में इन्सुलीन का अभाव होता है और भोजन पचने के बाद जो ग्लुकोज़ बनता है, वह जिगर में जाकर ग्लाइकोजिन में परिवर्तित नहीं होता। यह लहू में इकट्ठा होता रहता है और उसमें चीनी की मात्रा बढ़ जाती है। मधुमेह के रोगी के लहू में ४८० मिलिग्राम प्रतिशत ग्लूकोज़ तक होता है, जबकि साधारण व्यक्तियों के लहू में इसकी मात्रा ८० से १२० तक होती है। जब निहार मुंह लहू का परीक्षण करने पर यह पता चले कि ग्लूकोज़ १८० मिलिग्राम प्रतिशत से अधिक है तो मूत्र में भी चीनी का तत्व मिलेगा।

इस रोग के मुख्य लक्षण ये हैं – सबसे पहले बहुत अधिक प्यास लगने लगती है। बहुधा दुर्बलता और शक्ति का अभाव होता है और सारे शरीर पर अत्यधिक खुजली होती है। कई बार मानसिक दबाव या आघात के कारण मधुमेह प्रारम्भ हो सकता है। यदि किसी व्यक्ति का वज़न बहुत अधिक हो और वह और बढ़ जाए या कम हो जाए तो उसके बारे में मधुमेह का ही सन्देह करना चाहिए। उसके बाद दूसरे लक्षण हैं फोड़े होना, जो जल्दी ठीक नही होते, सुन्न हो जाना। और पिंडलियों में चुनचुनाहट या पीड़ा का अनुभव हो, तो तुरन्त चौकन्ने हो जाना चाहिए। निम्नलिखित लक्षण मधुमेह की चेतावनी हैं :

(१) टांगों म पीड़ा और पिंडलियों में ऐंठन।
(२) वजन में अचानक कमी।
(३) थोड़ा-सा श्रम करने पर थकावट।
(४) न मिटने वाली खुजली।
(५) घाव हो जाए तो जल्दी भरता नहीं।
(६) पैरों में जलन या चुनचुनाहट।
(७) पैरों में ठण्ड लगना या उनका सुन्न होना।
(८) पैरों की उंगलियों का अत्यधिक लाल या नीला पड़ जाना।

जब इस रोग का प्रकोप अधिक न हो, विशेष रूप से अधिक आयु के लोगों में, तो इसका पता संयोगवश ही लगता है। लेकिन इस रोग के रोगी के लिए सबसे बड़ा ख़तरा तब होता है जब यह बिगड़ जाए।

इस रोग के बिगड़ने से निम्नलिखित भयंकर रोग उत्पन्न हो जाते हैं :

(१) मूर्च्छा : एक समय था कि मधुमेह का रोगी मृत्यु के नकट पहुँच कर मूर्छित हो जाता था और फिर उसकी आंख नहीं खुलती थी। लेकिन आजकल जब इस रोग का रूप बहुत प्रचण्ड हो या उसका इलाज न किया गया हो तो रोगी को मूर्छा आ जाती है। इसका कारण या तो इन्सुलीन का अभाव है और या मधुमेह में किसी अन्य रोग के प्रकोप, अधिक खा लेने, दस्तों और उल्टी के कारण मूर्छा आती है। रोगी को सांस लेने में कठिनाई का अनुभव होता है और नींद सी आने लगती है और उसके बाद वह बेहोश हो जाता जाता है। इस मूर्छा को मधुमेह की मूर्छा कहा जाता है। इसके लिए तुरन्त आवश्यक उपचार करना पड़ता है।

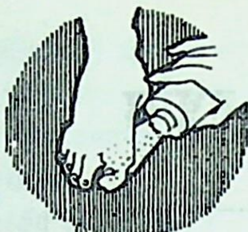
(२) रोगाणुओं का प्रभाव : जिन मधुमेह के रोगियों का

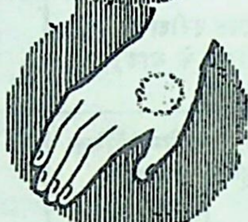
मधुमेह



रक्त परीक्षण (भोजन के बाद)			
होम्योपैथिक इलाज से पहले	होम्योपैथिक इलाज के बाद	भोजन पर नियंत्रण	इन्सुलिन या अन्य वैसी औषधियाँ
३०४	१३०	हां	नहीं
२००	१४०	नहीं	नहीं
१७५	१३५	,,	,,
२५०	१८०	,,	हां
३००	१६०	हां	नहीं
१५४	१३०	,,	,,
४४०	११६	,,	हां
५५३	१७५	नहीं	नहीं
३५०	१४०	हां	,,
१८०	१२०		,,

चित्र ८.४

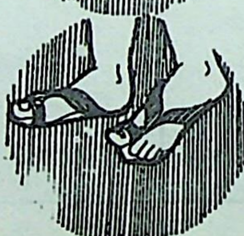





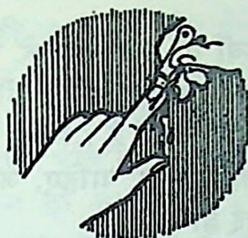


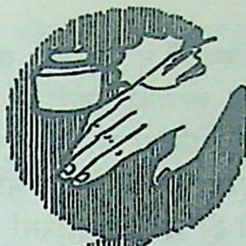
DO'S






अवश्य कीजिए

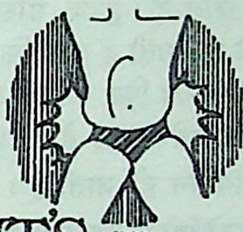




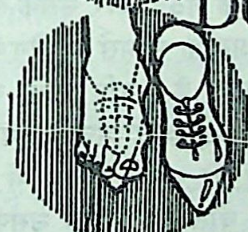


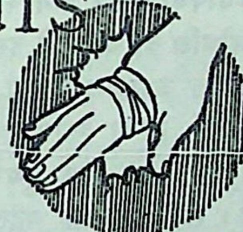


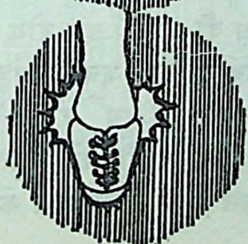




DONT'S









मत कीजिए

रोग नियंत्रण में न रहे उन्हें छाती, चर्बी या मूत्र नली के रोग होने की अधिक आशंका रहती है। यक्षमा साधारण लोगों की अपेक्षा मधुमेह के रोगियों में तीन गुना अधिक होता है। जिन लोगोंको मधुमेह हो उन्हें उस समय भीड़ में नहीं जाना चाहिए, जब जुकाम और वैसी ही अन्य बीमारियां फैली हुई हों।

(३) **आपरेशन :** किसी भी रोगी का आपरेशन करने से पहले इस बात की सावधानी बरतनी चाहिए कि उसके रक्त की जाँच करके यह पता लगा लिया जाए कि कहीं उसमें चीनी की मात्रा अधिक तो नहीं। जब वह कम हो जाए तभी आपरेशन करना चाहिए।

इसके अतिरिक्त मधुमेह के रोगियों की धमनियों में विकार उत्पन्न हो जाते हैं। हृदय, मस्तिष्क और आंखों को जाने वाली धमनियां कड़ी हो जाती हैं और फिर उन अंगों पर भी प्रभाव पड़ता है। मधुमेह के कारण दिल का दौरा पड़ सकता है, पक्षाघात हो सकता है, दिखाई कम देने लगता है, स्नायुओं में सूजन आ जाती है और कई बार तो गैंगरीन हो जाती हैं।

होम्योपैथी में हर रोगी के शरीर के गठन और उसके स्वभाव के अनुसार औषधि दी जाती है, इसलिए प्रत्येक मामले में रोग के लक्षणों का भलीभाँति अध्ययन करना आवश्यक है। यदि रोगी खाने-पीने में परहेज़ रखे, हल्का व्यायाम करता रहे और अपनी चमड़ी, दाँतों और पैरों आदि को साफ सुथरा रखे तो उसके इलाज में सहायता मिलती है। सबसे अधिक महत्व इस बात का है कि उसकी प्रकृति और शरीर के गठन के अनुसार औषधि दी जाय। इस रोग में निम्नलिखित औषधियाँ दी जाती हैं : **ऐसेटिक एसिड** (जब मधुमेह के रोगी का वजन घट गया हो); **हैलोनियास** (जब रोगी के ठण्डी लार टपकती हो); **लैक्टिक एसिड** (जब रोगी को बहुत अधिक भूख लगती हो); **पैन्क्रियाटिन—३ एक्स** (यह पेन्क्रियाज़ के स्राव से

तैयार की जाती है और ऐसे रोगी को दी जाती है जिसके रक्त में चीनी की मात्रा अत्यधिक अर्थात् खाने के बाद ३५० मिलिग्राम प्रतिशत हो।); **फ्लोरिडज़िन–६** (यह विशिष्ट दवाई है और यदि इसकी पांच बूदें दिन में तीन बार ले ली जाएँ तो चीनी की मात्रा कम हो जाती है); **स्ट्रिकनीन आर्स** (पैरों में पीड़ा जो दबाने से कम होती है); **साइज़िग्यिम जम्बोल** (मूत्र में चीनी की मात्रा को घटाने के लिए विशिष्ट दवाई है); **यूरेनियम नाइट्रिकम** (जब मधुमेह के रोगी के पेट में बहुत अधिक वायु बनती हो।) यदि बायोकेमिक दवाइयां, **कैल्शियम फ्लोर–६ एक्स** और **नैट्रम सल्फ़–६ एक्स** दिन में तीन बार कुछ महीने तक दी जाएँ तो इलाज में सहायता मिलती है।

उल्लेखनीय बात यह है कि आज मधुमेह के रोगियों के लिए इलाज की काफी संभावनाएँ हैं। उसके जीवन की प्रत्याशा पहले की अपेक्षा अधिक बढ़ गई है, क्योंकि वह सदा डाक्टर की देख-रेख में रहता है। उसे कोई और रोग हो जाए तो उसको रोकने में अधिक समय नहीं लगता।

काला मोतिया

जब यह रोग प्रचण्ड रूप में हो, तो आँख की पुतलियों में घोर पीड़ा होती है और कई बार ऐसा लगता है कि पुतली बाहर जा गिरेगी। ऐसे मामले में तुरन्त डाक्टर की सलाह लेनी चाहिए, क्योंकि देरी करने से अन्धापन हो सकता है। यदि यह रोग पुराना हो जाए तो बड़े प्रछन्न रूप में होता है और बहुधा बूढ़ों को ही होता है। होम्योपैथी में निम्नलिखित दवाइयां दी जाती हैं: **कोमोक्लाडिया** (नाड़ी के चलने के साथ घोर पीड़ा जो गर्मी से बढ़ जाती है; ऐसा लगता है कि आँख की पुतलियां बहुत बड़ी हो गई हैं); **प्रूनस** (आँख में अचानक उठने वाली घोर पीड़ा जिसमें ऐसा लगे कि आँख फट

जाएगी; आँखों से पानी निकल आए तो पीड़ा कम हो जाती है); और **स्पाइजीलिया** (करवट लेने पर या मुड़ने पर आँख की पुतलियों में पीड़ा)।

पक्षाघात

यदि शरीर के एक ओर के अंगों को लकवा मार जाए तो उसे अधरंग या पक्षाघात की संज्ञा दी जाती है। यदि पक्षाघात सम्पूर्ण हो तो चेहरा, बाहें ओर टांगें प्रभावित होती हैं, लेकिन शरीर के धड़ और सिर की माँस पेशियाँ उसके प्रभाव से बच जाती हैं। यदि यह रोग प्रचण्ड रूप में हो, तो प्रारम्भ में गहरी मूर्छा होती है, कोई अंग नहीं चलता, उसके बाद हाथ-पैरों में सिकुड़न हो जाती है, नसों की सहज क्रियाएँ बिगड़ जाती हैं, माँस पेशिया बारी-बारी से सिकुड़ने और फैलने लगती हैं और यह भी संभव है कि पेट की सहज क्रियाएँ समाप्त हो जाएँ।

यदि रोगी मूर्छित हो जाए तो यह बहुत आवश्यक है कि उसकी जीभ को आगे रखा जाए जिससे कि हवा उसके फेफड़ों तक पहुँचती रहे। पहले चौबीस घंटों तक तो उसे नली के माध्यम से केवल ग्लुकोज़ दिया जाता है और उसके बाद धीरे धीरे दूध और अण्डे। यदि रोगी को उल्टी न होती हो तो उसे प्रोटीन भी दी जा सकती है। रोगी को सीधे लिटा देना चाहिए और उसका सिर शरीर के बाकी अंगों से नीचे होना चाहिए। उसे हर दो घण्टे बाद करवट दिलानी चाहिए, जिससे कि शरीर पर फोड़े न हो जाएँ।

इसकी औषधियां हैं: **आर्नीका–३०** (प्रारंभिक अवस्था में वार बार देनी चाहिए जिससे कि यदि लहू में थक्के बन गए हों तो वे घुल जाएं) **कॉस्टीकम** (दायें अंग का पक्षाघात, जिसमें प्रभावित अंगों में ठण्ड महसूस हो; विशेष रूप से शरीर के अंगों को मोड़ने वाली माँस पेशियों के लिए लाभकारी है); **ओलिएंडर**

(बाईं ओर का पीड़ा रहित अधरंग, जिसमें सारा अंग सुन्न हो गया हो; जहां रोगी की स्मरण शक्ति कमज़ोर हो गई हो, बात को सुनने और समझने में देरी हो और उसे बोलने में भी कठिनाई का अनुभव हो); **प्लम्बम** (दाईं ओर का पक्षाघात जिसमें कब्ज इतनी भयंकर हो कि मल निकास होता ही न हो); **रस टॉक्स** (बाईं ओर का पक्षाघात, विशेष रूप से जब वह नहाने, अधिक श्रम करने या कोई भारी वस्तु उठाने के बाद हुआ हो।)

रजोनिवृत्ति

स्त्रियों की मुसीबत तो तब से शुरू हुई है जब बाबा आदम ने सेब खा लिया था। कहते हैं कि तभी से स्त्रियों को मासिक धर्म की मुसीबत प्रारंभ हुई। उन दिनों में वह हाय तोबा मचाती है, दर्द की शिकायत करती है और काम-धाम ठीक से नहीं कर पातीं। यह देख कर हैरानी होती है कि मासिक धर्म की अवधि समाप्त होते ही उसका अवसाद और निराश लुप्त हो जाते हैं। जब वह अधेड़-उम्र को पहुँचती है और मासिक धर्म बन्द हो जाता है—इसी को रजो निवृत्ति की संज्ञा दी गई है—तो बहुत-सो स्त्रियां किसी न किसी समस्या का शिकार हो जाती हैं। इसका कारण सम्भवतः यह है कि लोगों में यह गलत धारणा प्रचलित है कि रजोनिवृत्ति के बाद उसमें कामवासना कम हो जाती है। वास्तव में ऐसी बात नहीं। यह सोच कर कि उनकी कामेच्छा कम हो गई है, कुछ स्त्रियों में हीनभावना जन्म लेती है और उसके कारण उनमें सन्देह और ईर्श्या की भावनाएँ जन्म लेती हैं। ऐसी महिलाओं के लिए **लैकेसिस** सर्वोत्तम दवाई है, जो साँप के विष से तैयार की जाती है। **लैकेसिस** के रोगी दम्भी, ईर्ष्यालु और साँप जैसी प्रवृत्ति वाले होते हैं। **लैकेसिस** की रोगिणी जब कुछ सहेलियों को सिर जोड़ कर बातें करते देखती है तो यही सोचती है कि वे उसकी चुग़ली खा रही हैं। ऐसी स्त्री में सन्देह की

भावना इतनी अधिक होती है कि जब उसका पति काम से लौटता है तो वह उससे यह जानना चाहती है कि वह कहां गया था।

रजोनिवृत्ति वाली स्त्री का **लेकेसिस** व्यक्तित्व उसकी विशेषता मात्र है। रजोनिवृत्ति के साथ और भी कई कष्टों का सम्बन्ध है, जैसे सिर दर्द, चिन्ता, चेहरे का तमतमा उठना और हृदय की धड़कन का बढ़ जाना। इन रोगों के लिए होम्योपैथी में कई औषधियां निम्नलिखित शारीरिक कष्ट रजोनिवृत्ति के दिनों में बहुधा हो जाया करते हैं और उसके लिए उपयुक्त औषधियां हैं, जैसे चिन्ता के लिए **एमिल नाइट्रिकम**; अवसाद के लिए **सिमीसीफ्यूगा**; अत्यधिक पसीना आने के लिए **जेबोराण्डी**; बालों के गिरने के लिए **सीपिया**; सिर दर्द के लिए **ग्लोनोईन**; स्टिीरिया के लिए **इग्नाशिया**; और बढ़ी हुई कामेच्छा के लिए **म्यूरेक्स**।

अंगरेजी में कहावत है कि असली जीवन तो चालीस वर्ष की आयु से प्रारम्भ होता है। जिस स्त्री का मासिक धर्म बन्द हो गया हो वह रजोनिवृत्ति के बाद भी होम्योपैथी की सहायता से सुखमय जीवन व्यतीत कर सकती है।

वृद्धावस्था की मानसिक समस्याएं

अवसानोन्मुख व्यक्तियों में अपने जीवन की संख्या में होने वाले परिवर्तनों के बारे में चिंतित होने की प्रवृत्ति रहती है। कई बार यह चिन्ता और इससे उत्पन्न समस्याएँ शारीरिक कष्टों से भी अधिक बड़ी समस्या बन जाती है। पहली बात तो यह है कि जवानी के दिनों में यदि कोई मानसिक विकार था, तो वह वृद्धावस्था में भी बना रहता है या फिर हो जाता है। और फिर कई ऐसी समस्याएँ हैं, जैसे अवसाद से उत्पन्न मानसिक असंतुलन, किसी नशे की लत और शराब की लत। यदि कोई शारीरिक रोग हो—सम्भवतः ऐसा जिससे शरीर का क्षय हो रहा हो—तो रोगी अपनी मृत्यु के बारे में सोचता रहता

है और समझता है कि मैं अब बिल्कुल बेकार हो गया हूँ। उसका इस प्रकार सोचना ही मृत्यु को और निकट ला सकता है।

वृद्धावस्था के कुछ और लक्षण हैं: बेसहारा होने का भाव, भय और असुरक्षा की भावना। सेवा-निवृत्ति, लड़के लड़कियों के घर से चले जाने, सामाजिक प्रतिष्ठा में परिवर्तन, वित्तीय स्थिति में परिवर्तन आदि के कारण बड़े-बूढ़ों के लिए कई समस्याएँ उत्पन्न हो जाती हैं। यह भी संभव है कि वे अपने को बेकार और निकम्मा समझने लगें। उसके साथ ही कामेच्छा और सम्भोग की क्रियाएँ पहले की अपेक्षा कम हो जाती हैं, जिससे भीरु प्रवृत्ति के लोग तो बड़े प्रसन्न होते हैं, लेकिन जिन लोगों को आनन्द मनाने की आदत होती है, उन्हें इससे निराशा ही होती है।

इन सभी चिन्ताओं का एक परिणाम यह हो सकता है कि ऐसे व्यक्ति नींद लाने की गोलियों और शराब आदि पर आवश्यकता से अधिक निर्भर हो जाते हैं। जुनाथन स्विफ्ट् ने वृद्धावस्था का बड़ा सुन्दर वर्णन किया है:

"और फिर, उसकी स्मरणशक्ति जाती रहती है;
उसे याद नहीं रहता कि उसने क्या कहा है;
वह अपने मित्रों के नाम भी याद नहीं रख सकता;
उसे ध्यान नहीं रहता कि उसने कब खाना खाया था;
वह बार-बार वही कहानियाँ सुनाता है,
जो पचास बार पहले सुना चुका है।"

इस प्रकार की मानसिक समस्याओं के लिए निम्नलिखित औषधियां हैं: **एनाकार्डियम** (स्मरणशक्ति का ह्रास; कुछ विचार जो मन में बस जाते हैं: गाली गलौज करने की उत्कट इच्छा); **आर्सेनिक** (अत्यधिक चिन्ता, बेचैनी और दुर्बलता); **कोकेन** (लजालु और भीरू; चार लोगों में बैठे तो बेचैन रहे; अनिश्चित और निराश); **ओनान्था क्रोकाटा** (बिना रुके बोलता जाता है

लेकिन उसे पता नहीं होता कि क्या कह रहा है); **ओपण्टिया** (धार्मिक विचारों वाला लेकिन पूजा करने बैठता है तो उसका ध्यान कहीं और चला जाता है; मित्रों ने कभी कोई बुरी बात कही हो तो उसे भुला नहीं सकता); **फ़ास्फ़ोरिक एसिड** (मानसिक दुर्बलता, काम-काज की चिन्ताओं से थका हुआ; बहुधा यह कहेगा "भई बोलो मत मुझे अकेला छोड़ दो, मैं थका हुआ हूँ"); **राफानस** (स्त्रियों और बच्चों के प्रति घृणा; थकावट और कुण्ठा; अत्यधिक चिन्ता और मृत्यु का डर)।

दिल का दौरा

वृद्धावस्था में कई बार हृदय को रक्त पहुँचाने वाली धमनियां अचानक रुंध जाती हैं। उन्हें आक्सीजन नहीं पहुँचती और परिणाम यह होता है कि हृदय की मांस पेशी में दरार सी पड़ जाती है। इसका कारण बहुधा यह होता है कि हृदय की धमनी में लहू का थक्का बन जाता है। यह दौरा बड़े प्रचण्ड रूप में पड़ता है और रोगी की छाती में घोर पीड़ा होती है, जो **एन्जाइना पैक्टोरिस,** अर्थात् हृतशूल, के विपरीत आराम करने से कम नहीं होती और न धमनियों को फैलाने वाली औषधियों से ही कम होती है। यह वह अवस्था है जिसे जनभाषा में दिल का दौरा कहते हैं।

इसमें सांस फूल जाती है, खांसी आती है, थूक के साथ झाग मिली होती है और जी मिचलाता है। कई बार उल्टी भी हो जाती है। हाथ पैर ठण्डे पड़ जाते हैं, पसीना बहुत आता है, रोगी बहुत बेचैन होता है और उसे मतिभ्रम हो जाता है।

जब यह दौरा हृदय की माँस पेशियों के सूख जाने से हो तो २४ से ३६ घण्टे बाद ये लक्षण प्रारम्भ होते हैं और कई बार १०० से १०१ डिग्री तक बुखार हो जाता है। सम्भव है कि इस अवस्था में रक्त चाप कम हो जाए, नाड़ी अधिक हो जाए और रोगी जोर जोर

से साँस लेने लगे। धड़कन बहुत मद्धिम पड़ जाती है, लेकिन हृदय के ऊपर हाथ रख कर देखें तो नाड़ी दौड़ती हुई लगती है।

दिल का दौरा सामान्यतया रोगी के लिए इस बात की चेतावनी होती है कि उसे अपने जीवन की गति मद्धिम कर देनी चाहिए। यदि इसका इलाज ठीक प्रकार से न किया जाय तो मृत्यु हो सकती है और या रोगी नाकारा होकर रह जाता है। दौरे के बाद एक हफ्ते या उससे अधिक समय तक रोगी को बिल्कुल आराम करना चाहिए और इसके वाद धीरे-धीरे उठ कर घूमना फिरना चाहिए। उसके भोजन में कैलरी कम होनी चाहिए और उसके बाद धीरे धीरे उसे रोटी, चावल और मछली दी जा सकती है।)

इसकी औषधियाँ हैं : **अडोनिस वर्नालिस** (यह दिल की धड़कन को नियमित करती है और हृदय की माँस पेशी को सिकुड़ने की अधिक शक्ति प्रदान करती है। यह ऐसे रोगियों के लिए अधिक उपयोगी है, जिन्हें कभी वात के प्रकोप से गठिया हुआ हो या दमा हुआ हो। इसके लेने से मूत्र की मात्रा अधिक हो जाती है); **एड्रीनालिन** (इसका मुख्य प्रयोजन यह है कि यह धमनियों को सिकोड़ देती है। इसका प्रयोग रक्त संचार की मात्रा को नियमित करने के लिए किया जाता है। जब हृदय की माँसपेशी रक्त की कमी के कारण निष्क्रिय हो रही हो, छाती में घुटन होती हो और हृदय की गति रुकने को हो, तब इसका प्रयोग उत्तम है); **क्रेटागियस टिंक्चर** (दुर्बल हृदय के लिए शक्ति संचार का काम करती है; उन मामलों में उपयोगी है जब धमनियां चर्बी जम जाने के कारण कड़ी हो गई हों; यह धमनियों में जमा हुई चर्बी तथा अन्य पदार्थों को कम करती है); **जेलसीमियम** (इसका लक्षण यह है कि रोगी को ऐसा लगता है कि यदि वह चलना-फिरना बन्द कर देगा तो उसके हृदय की गति रुक जाएगी; वृद्धावस्था में दुर्बल और मध्यम नाड़ी के लिए उपयोगी); **डिजिटालिस**

(हृदय की माँस पेशियों के ऊतकों की दुर्बलता; यह अनुभूति कि यदि उसने जरा भी हरकत की तो दिल की धड़कन बन्द हो जाएगी; हृदय के ठीक से काम न कर सकने के कारण होने वाले जलन्धर में); **काल्मिया लेटीफोलिया** (वात रोग से उत्पन्न गठिया के बाद हृदय की माँस पेशी का सूखने लगना); **लारो सिरासस** (हृदय रोगियों की ऐसी खाँसी जो ऐंठन के साथ हो और जिसके साथ धमनियों में भी कोई रोग हो); **स्पार्टीन सल्फ़** (रजोनिवृत्ति के काल में शीघ्र घबड़ा जाने वाले और हिस्टीरिया से पीड़ित रोगियों के लिए उपयोगी जिनका हृदय दुर्बल हो, नाड़ी अनियमित और मध्यम हो और साथ में जलन्धर भी हो; अचानक दौरा पड़ने के साथ घोर पीड़ा इस बात का लक्षण हो सकती है कि स्पार्टीन नामक क्षार की अधिकता हो गई है; ऐसे मामलों में यह औषधि पीड़ा से आराम दिलाती है); **वनाडियम–६ एक्स** (जब जिगर और हृदय में अधिक चर्बी के कारण विकार आ गया हो तो हृदय को शक्ति प्रदान करती है)।

दांतों के रोग

जीवन के तीसरे दशक में जब मसूढ़ों की सूजन प्रारम्भ होती है तो वह धीरे धीरे दाँतों के नीचे की हड्डियों को प्रभावित करती है और जिन माँस पेशियों से दाँत जुड़े होते हैं उन पर भी प्रभाव पड़ता है। जिस दाँत की हड्डी बहुत खुर गई हो उसे तो निकलवाना ही पड़ेगा, यद्यपि पहले किसी होम्योपैथ को दिखा दिया जाता तो शायद वह दाँत बच जाता। इस रोग का मुख्य कारण साधारणतया यह होता है कि या तो रोगी अपने दाँतों को साफ नहीं रखता और या वह सदा दाँत किटकिटाता रहता है।

दाँतों के रोगों के कारण आँखों, कानों, अंतड़ियों और हृदय तक पर किसी न किसी रोग का प्रभाव पड़ सकता है। खराब दाँत का दर्द वहां से प्रारम्भ होकर शरीर के किसी भी अंग तक पहुँच सकता

है। औषधियां तभी तक काम करती हैं जब तक दाँत गलने से बचा रहे। यदि वह गल गया हो तो उसे निकलवाने के सिवा और कोई चारा नहीं होता।

प्रोस्टेट ग्रन्थि

प्रोस्टेट ग्रन्थि क्या है और इसका क्या काम है? यह उस स्राव को जन्म देती है, जिससे वीर्य का वह अंश बनता है जिसमें शुक्राण होते हैं। यह ग्रन्थि भयंकर रूप से सूज सकती है या सूजन पुरानी पड़ सकती है और या उसमें यक्षमा, पथरी या कैंसर तक हो सकता है।

ठण्ड में चट्टानों पर बैठने या गीली घास पर बैठने से यह ग्रन्थि घोर रूप से सूज सकती है। यदि उसमें पीप पड़ जाए तो फोड़ा बन जाता है। इसके मुख्य लक्षण हैं—तेज बुखार, पीठ में दर्द और बार बार मूत्र आना और मूत्र त्याग करते समय पीड़ा का अनुभव। बूढ़ों को इस ग्रन्थि का जो रोग बहुधा होता है, वह सूज कर इसका बढ़ जाना है। अभी तक यह पता नहीं चल पाया कि वृद्धास्था में कुछ पुरुषों की यह ग्रन्थि क्यों बढ़ जाती है। इसका बढ़ना चालीस से अधिक वर्ष की आयु में प्रारम्भ होता है। अपने आप में इस विकार का कोई महत्व नहीं। लेकिन यह ग्रन्थि मसाने के मुंह के पास होती है और यदि—यह बढ़ जाए तो मूत्र के मार्ग पर दवाव पड़ता है और उसमें अवरोध उत्पन्न हो जाता है।

प्रारम्भ में इस समस्या का एक ही समाधान होता है और वह है रोगी को मूत्र त्याग करते समय अधिक ज़ोर लगाना पड़ता है। परन्तु ज्यों ज्यों रोग बढ़ता है, मूत्र त्याग में अधिक कठिनाई होने लगती है। अन्ततोगत्वा यह हालत हो जाती है कि रोगी दिन में बार बार थोड़ा-सा मूत्र करने में सफल होता है। धीरे धीरे मूत्राशय मूत्र को बाहर निकालने की क्षमता खो बैठता है और बहुत सा मूत्र वहीं पड़ा रहता है जब उसकी मात्रा बढ़ जाती है तो उसका दबाव पीछे

की ओर पड़ता है और गुर्दों पर बुरा प्रभाव पड़ता है। यदि इस रोग का कोई इलाज न किया जाय तो गुर्दे खराब होने शुरू हो जाते हैं। यदि वे काम करना बन्द कर दें तो मूत्र के विषैले पदार्थ के कारण सारे शरीर में विष फैल सकता है।

यदि बढ़ी हुई प्रोस्टेट ग्रन्थि का इलाज न किया जाय तो अन्य रोग उत्पन्न हो जाते हैं, जैसे मूत्र नली के रोग, मूत्राशय में पथरी का बनना मूत्र के साथ लहू का आना और मूत्राशय का अपने स्थान से हिल जाना। इस अवधि में यह सम्भव है कि रोगी मूत्र करने की क्षमता से वंचित हो जाए और उसे तुरन्त डाक्टर के पास ले जाना पड़े।

इस ग्रन्थि का यक्षमा सामान्यतया अण्डकोषों के यक्षमा के परिणामस्वरूप होता है, परन्तु कई बार इसमें भी प्रत्यक्ष रूप से यह रोग हो जाता है। चाहे कैसे भी प्रारम्भ हुआ हो, वह रोग पहले मूत्राशय और उसके बाद गुर्दों तक पहुँच जाता है। सौभाग्यवश इस रोग में पथरी बहुधा नही होती वह तो इस ग्रन्थि के अन्य रोगों में होती है परन्तु यदि पथरी बड़ी हो तो मूत्राशय का मुंह अवरुद्ध हो जाता है और मूत्र में रुकावट होती है। एक्स-रे कराने पर पथरी साफ दिखाई देती है।

अनुमान लगाया गया है कि साठ वर्ष की आयु से अधिक के ७० से ८० प्रतिशत पुरुषों की यह ग्रन्थि बढ़ी हुई होती है, और यह संख्या कोई कम नहीं है। लेकिन इनमें से कुछ साठ प्रतिशत रोगियों को मूत्रावरोध का कष्ट होता है। यह बड़ी अच्छी बात है कि जिन पुरुषों की यह ग्रन्थि बढ़ी हुई होती है, उनमें से केवल बीस प्रतिशत ऐसे हैं, जिन्हें आपरेशन कराना पड़ता है। आपरेशन कराने के लिए निम्नलिखित बातों का होना आवश्यक है।

पहली बात तो यह है कि इस ग्रन्थि की अवस्था इतनी अच्छी

होनी चाहिए कि उसके निकाल फेंकने से रोगी पर कोई बुरा प्रभाव न पड़े। ऐसा रोगी ढूंढ़ने में कठिनाई होती है क्योंकि वृद्धावस्था में हृदय रोग, मधुमेह और ऊँचे रक्तचाप जैसी बीमारियाँ आमतौर पर हो जाती हैं।

दूसरे, यह देखना पड़ता है कि मसाने में कितना मूत्र रुका हुआ है। यदि उसकी मात्रा बहुत अधिक हो तो आपरेशन करवाना अत्यावश्यक है।

तीसरी बात यह देखनी पड़ती है कि विभिन्न लक्षणों का प्रकोप कितना अधिक है। मूत्र जितना अधिक रुकता हो, उतनी ही अधिक आवश्यकता आपरेशन की है। जब मूत्राशय में कोई रोग हो जाय या पथरी हो जाए तो भी आपरेशन अत्यावश्यक है। यह आपरेशन खतरे से खाली नहीं है, क्योंकि बाद में कई बार रक्तस्राव होने लगता है, मसाने का पक्षाघात हो सकता है या गुर्दों अथवा अण्ड कोषों में कोई रोग हो जाता है।

एक ७५ वर्षीय पुरुष की प्रोस्टेट ग्रन्थि आपरेशन द्वारा निकाल दी गई तो आपरेशन के बाद उसका मसाना किसी हद तक सुन्न हो गया। वह मूत्रत्याग नहीं कर सकता था और कई बार एक लिटर तक मूत्र उसके मसाने में पड़ा रहता था। उसे बार-बार अस्पताल जाकर नली की सहायता से मूत्र निकलवाना पड़ता था। उसे **कास्टीकम–२००** की दो खुराकें दी गईं। अब उसे धीरे धीरे मूत्र आने लगा और केवल एक तिहाई मूत्र ही मसाने में बाकी रहता है। अगले सप्ताह **कास्टीकम–१०००** की दो खुराकें फिर दी गईं और उससे उसे खुल कर मूत्र आने लगा।

उल्लेखनीय बात यह है कि यह औषधि रोगी के लक्षणों को सुन कर ही दी गई थी, क्योंकि वह नगर से बाहर था और उसने अपने एक सम्बन्धी को दवाई लाने के लिए भेजा था। यही विशेषता होम्यो-

पैथी की है कि बड़े जटिल रोगों में ऐसे रोगियों के लिए जो मीलों दूर बैठे हों साधारण सी औषधियां देकर उन्हें ठीक किया जा सकता है। हां, यह आवश्यक है कि रोग के लक्षण ठीक से बताए जाएँ और औषधि के लक्षणों के अनुरूप हों।

अन्य औषधियां हैं: **कलकेरिया फ्लोर** (पत्थर जैसी कठोर ग्रन्थियों के लिए एक सशक्त औषधि; दिन में चार बार १२ एक्स की पोटेंसी में दीजिए, जब प्रोस्टेट ग्रन्थि सूख गई हो); **किमाफिला यू–६** (जब इस ग्रन्थि की सूजन ठण्ड में फर्श पर बैठने से प्रारम्भ हुई हो और रोगी को उसे मूत्र त्याग करने में बहुत ज़ोर लगाना पड़ता हो); **फ़ैरम पिक्रीकम** (वृद्धावस्था में प्रोस्टेट ग्रन्थि का सूखना–रात में बार-बार पेशाब आना; पेट भरा लगना और गुदा में दबाव की अनुभूति); **पापुलस ट्रिमल** (जब यह ग्रन्थि बढ़ी हो और मूत्राशय में भी सूजन हो); **सबाल सैरयूलाटा–टिंक्चर** (आधा प्याला पानी में १५–१५ बूंदें दिन में तीन बार; इससे मूत्रत्याग करना आसान हो जाता है); **सिलेनियम** (बूढ़ों में प्रोस्टेट ग्रन्थि की सूजन जब उनमें कामेच्छा में वृद्धि हो जाए परन्तु सम्भोग की शक्ति कम हो जाए); **थूजा** (मूत्राशय के मुंह के आस-पास पीड़ा और जलन का अनुभव हो और बार-बार मूत्र त्याग करने की उत्कट इच्छा हो)।

वृद्धावस्था की मूढ़ता

बढ़ती आयु के साथ मस्तिष्क तनिक सिकुड़ जाता है। इसका परिणाम यह होता है कि रोगी में मूढ़ता आ जाती है। इस रोग का प्रकोप धीरे धीरे और प्रच्छन्न रूप से होता है। सबसे पहले तो चिन्ता सताती है और उसके बाद रोगी अप्रत्याशित रूप से अंटसंट काम करने लगता है। उसके बाद उसे सुनने या समझने या देखने में और दूरी का अनुमान लगाने में कठिनाई का अनुभव होता है। कई बार

ऐंठन के साथ बेहोशी के दौरे भी पड़ते हैं परन्तु ऐसा कम ही होता है। अधिकतर मामलों में ऐसे रोगियों को पागलखाने में भी रखना पड़ सकता है।

इसकी औषधियां हैं : **एनाकार्डियम** (स्मरणशक्ति का कम हो जाना; अवसाद और खीझ; सूंघने और सुनने की शक्ति का ह्रास, आत्मविश्वास की कमी और समझने में देरी और अनवधानता); **बेरैटा एसेटिका** (बात भूल जाए; बहुत समय तक सोचता रहे कि यह करूँ या वह; आत्म विश्वास का अभाव); **कनाबिस इण्डिका** (देखने या सुनने समझने का अभाव; समय बहुत धीमी गति से गुज़रता लगे, दूरियाँ बहुत लगें; बात भूल जाए और बराबर बोलता रहे); **कोनियम** (स्मरणशक्ति दुर्बल; जीवन में परिवर्तन की अवधि में कष्ट, शरीर की दुर्बलता, कम्पन और दिल का धड़कना; अवसादयुक्त भीरू, लोगों में बैठना न चाहे लेकिन अकेला भी डरे; कोई भी मानसिक श्रम न कर सके)।

कम्पन

हम कई बार देखते हैं कि कई बड़े बूढ़े अकेले ही पार्क की बेंच पर बैठे होते हैं और उनके हाथ-पैर कांप रहे होते हैं। कम्पन किसी विषैले पदार्थ का प्रभाव होने के परिणामस्वरूप हो सकता है। इसका पता लगाने के लिए कम्पन के रोगी से कहिए कि अपने हाथ सीधे फैला कर उंगलियों को भी फैला ले। यदि तब भी कम्पन दिखाई पड़े या छूने से पता चले तो उसका मतलब यह है कि थायराइड ग्रन्थि के अधिक सक्रिय होने, या मद्यपान, धूम्रपान या पारे के विष के कारण कम्पन है। इसमें सन्देह नहीं कि यदि कम्पन बहुत पुराना हो, तो उसका कारण कुछ गम्भीर रोग होते हैं, जैसे **पर्किन्सन रोग,** मस्तिष्क में रसौलियां आदि। पार्किन्सन रोग वृद्धावस्था के विकारों का बहुत अच्छा उदाहरण है और पचास या साठ वर्ष की आयु

के बाद होता है। इसके दो महत्वपूर्ण लक्षण ये हैं कि माँस पेशियां कठोर हो जाती हैं और कम्पन होने लगता है। कठोर माँस पेशियों के कारण रोगी टांगों को अधिक उठा कर चलता है और देखने से ऐसा लगता है कि वह बड़ी तीव्र गति से किसी दिशा में जा रहा है। और यदि उसे रोका न गया तो वह गिर पड़ेगा।

यदि चेहरे की माँस पेशियां कठोर हो जाएँ तो स्थिर हो जाती हैं। मुख पर ठहरी हुई मुद्रा होती है, वह आधा खुला होता है और लार टपक रही होती है। कम्पन सभी रोगियों में नहीं होता, परन्तु इसका सबसे पहला लक्षण यह होता है कि वह अंगूठे और उंगली को ऐसे हिलाता है मानो गोलियाँ बना रहा हो।

रोगी अधिक नाजुकमिज़ाज हो जाता है और लोगों से मिलना-जुलना पसन्द नहीं करता। उसके लिए यह आवश्यक है कि रोगी को अश्वस्त किया जाय और उसके साथ प्रोत्साहन और सहानुभूति का रवैया अपनाया जाय। प्रति दिन सेंक, मालिश आदि करने, व्यायाम करने और बोलने तथा काम-काज के प्रशिक्षण के माध्यम से चिकित्सा करने से लाभ होता है। कम्पन में निम्नलिखित औषधियां गुणकारी हैं : **अगारीकस** (कम्पन और हाथ-पैर का अनायास हिलना जो नींद में बन्द हो जाता है); **आरम सल्फ़** (सिर बार बार हिलता रहे और चलते लड़खड़ाहट हो); **अवेना सेटिवा** (बुढ़ापे के कम्पन के लिए गुणकारी है; इसकी १२–१३ बूंदें आधा प्याला पानी में दिन में दो बार देनी चाहिए); **कोकेन** (वृद्धों में मद्यपान के बाद होने वाला कम्पन, हाथों और कुहनियों से आगे बाहों में ऐसा लगे मानों चींटियाँ या और छोटे छोटे कीड़े त्वचा के नीचे चल रहे हैं); **हायोसीन हाइड्रोब्रोमाइड** (स्नायु विकार के कारण घबराहट; मद्यपान और अनिद्रा के कुप्रभाव; सारे शरीर में धमनियों के कड़ा हो जाने के कारण कम्पन); **मर्क सोल** (हाथों में कंपन और जीभ में जब थूक बहुत आए और जीभ पर दाँतों के निशान पड़ जाएँ); **फ़ास्फ़ो-**

रस (दुबले-पतले लम्बे और दुर्बल वृद्धों में शारीरिक श्रम के बाद होने वाला कम्पन); **जिंकम मैटेलिकम** (टांगें लगातार हिलती रहें; शारीरिक तथा मानसिक थकावट हो; स्मरणशक्ति कमज़ोर हो जाए और रोगी बार-बार एक ही बात को दोहराता रहे)।

× × × × ×

होम्योपैथी के दर्शन के अनुसार औषधि की न्यूनतम खुराक दी जाती है और यह मान्यता है कि जन्म तथा मृत्यु अनिवार्य है और जीवन चलता ही जाता है। इसमें यह विश्वास है कि यदि कुछ भी न किया जाय तो भी शरीर की रचना ईश्वर ने इस प्रकार की है कि वह अपने आप अपनी समस्याओं का समाधान कर लेगा। यदि शैशव और बचपन में रहन-सहन और भोजन स्वस्थ्यप्रद हो तो युवावस्था को पहुँचने पर शरीर में इतनी शक्ति होगी कि वह अपना बचाव स्वयं कर सकेगा। यदि किसी औषधि की आवश्यकता पड़े तो केवल इतनी होनी चाहिए कि शरीर की अन्तर्निहित शक्ति को तनिक प्रेरित कर सके। उसी प्रकार वृद्धावस्था में यद्यपि पहले जैसी शक्ति नहीं रहती फिर भी उसमें रोग से संघर्ष करने की सामर्थ्य होती है। उस समय युवावस्था की अपेक्षा सम्भवतः तनिक अधिक सहायता की आवश्यकता पड़ती है परन्तु वृद्धावस्था में भी बहुत सख्त दवाइयाँ देना ठीक नहीं है।

जीवन के समान मृत्यु तो अनिवार्य है परन्तु रोग नहीं। शरीर स्वयं रोग का सामना करता है और उसे ईश्वर ने इतनी सामर्थ्य दी है कि वह अपने बल-बूते पर ही इस संघर्ष में सफल हो। औषधियाँ ऐसी होनी चाहिए जो शरीर की इस सामर्थ्य में अकारण हस्तक्षेप न करें। औषधि का मुख्य प्रयोजन शरीर की सामर्थ्य को तनिक प्रेरित करना मात्र है। और यह भूमिका होम्योपैथी भली भाँति निभाती है।

———

अक्षरानुसार विषयानुक्रमणिका

'पुस्तक पठनीय होने के अलावा उपयोगी भी है। पाठक इसके सहारे अपने रोग के लक्षणों का मिलान पुस्तक में दिये गये लक्षणों से कर सकता है। निदानकारी तथा मार्ग-निर्देशन करने वाली लाभकारी पुस्तक।'

–सोसायटी

'गहरी शोध के बाद सरल-सुबोध भाषा में लिखी गयी होम्योपैथी-गाइड।'

–बाम्बे

'एवरीमेन्स गाइड' पुस्तक पढ़कर मुझे सुखद अनुभूति हुई; जैसे वह मेरे लिये ही लिखी गयी हो। होम्योपैथी पर छाये रहस्य के परदे को चीरकर यह उसे पाठक के लिए व्यावहारिक बनाती है।'

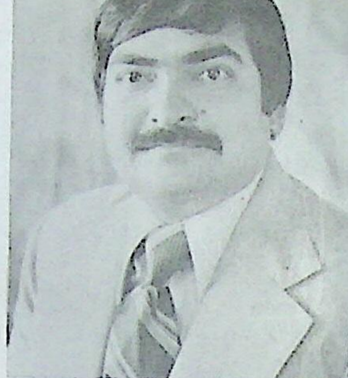
–मिरर

'इस पुस्तक में रोगों के इलाज बताने के साथ साथ इस बात पर भी जोर दिया गया है कि भारत जैसे निर्धन देश में विशेष रूप से गांवों के लोग खर्चीली एलोपैथिक दवाओं के स्थान पर होम्योपैथी की दवाओं से खुद अपना इलाज कर सकते हैं।'

–फेमिना

'पुस्तक की बातचीत की शैली इस बात का एक और प्रमाण प्रस्तुत करती है कि होम्योपैथी के डाक्टर के रूप में वे कितने विश्वासी और आश्वस्त हैं।'

–संडे आब्जरवर



जीवन परिचय

डॉक्टर मुकेश बत्रा एक सास्थानीय प्रशिक्षित होम्योपैथ हैं। इन्होंने १९७३ में एल. सी. आई. एच. की परीक्षा उत्तीर्ण की है। आज के युग में मन:शारीरिक रोगों तथा उनके उपचार के लिए होम्योपैथिक चिकित्सा की विधि के महत्व को ध्यान में रखते हुए डॉक्टर बत्रा ने मनोविज्ञान में भी स्नातक की डिग्री प्राप्तकी है।

डॉक्टर बत्रा एक धाराप्रवाह वक्ता तथा कुशल लेखक भी हैं और होम्योपैथी के विभिन्न पहलुओं पर उनके लेख भारत की प्रतिष्ठित पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित होते रहते हैं। वे 'दि रैशनल मेडिसिन' नामक अग्रणी चिकित्सा-पत्र के संपादकीय परामर्श समिति के सदस्य भी हैं। इसके अतिरिक्त उन्होंने विभिन्न सभाओं में वैज्ञानिक लेख भी पढे हैं। इन्होंने भारत तथा विदेश में होम्योपैथी पर कई उपयोगी टी. वी. कार्यक्रम दिये हैं।

डॉ. बत्रा, प्रशिक्षित होम्योपैथ चिकित्सकों की राष्ट्रीय संस्था–इण्डियन इंस्टीटयूट आफ होम्योपैथिक फिजिशियन्स के सचिव हैं। बंबईके अनेकहोम्योपैथिक तथा निदानकारी अस्पतालों से वे अवैतनिक रूप से संबद्ध हैं। वे भारत के अनेक विश्वविद्यालयों तथा शैक्षणिक समितियों के परीक्षक तथा पेपर-सेटर भी है। हाल ही में उन्हें एयरइंडिया ने होम्योपैथी का अपना मानद सलाहकार भी नियुक्त किया है। भारत सरकार ने इनको फिल्म सेंसर के केन्द्रीय बोर्ड के सलाहकार-पैनल पर भी नियुक्त किया है। वे 'भारत के असाधारण युवा' जैसे राष्ट्रीय "जैसी' पुरस्कार के लिए भी मनोनीत हुए हैं। बम्बई के सोफिया कालेज में वे होम्योपैथी में रुचिरखनेवालों के अतिरिक्त चिकित्सीय विशेषज्ञों के लिए प्रशिक्षण भी देते हैं।

वियेना में आयोजित होम्योपैथी चिकित्सा विधि की अन्तरराष्ट्रीय कांग्रेस में भाग लेने के लिए डाक्टर बत्रा को आमंत्रित किया गया था। वे हानेमन मेडिकल कालेज, लंदन के 'प्रोफेसर एमेरिटस' भी हैं। वे लंदन स्थित 'लेमनगोल्ड कैमिस्ट्स' के होम्योपैथी में मानद परामर्शदाता हैं वे पहले होमियोपैथ हैं जिन्होंने, भारत में पहली बार, होम्योपैथिक चिकित्सा में कम्प्यूटर का प्रयोग किया है।

KHEMRAJ SHRIKRISHNADASS

